कामरेड एलेन राय

की सेवा में—

जो वर्षों से क्रान्तिवादी आन्दोलनों

में भाग ले रहीं हैं और जिन्होंने

अपना जीवन कामरेड राय के

साथ हिन्दोस्तानी क्रान्ति

के लिये उत्सर्ग

कर दिया

है ।

विषय-सूची

लेखक



त्रिवेदी परमानन्द

भू
मि
का

"श्रीमानवेन्द्रनाथ राय" पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "वर्तमान युग में हिन्दोस्तान के सब से बड़े साहसी और योग्य सपूतों में हैं"। यूरोप और अमेरिका के शोषित वर्गों ने उन्हें इस ज़माने का सर्वश्रेष्ठ क्रान्तिवादी कबूल किया है, जिसके इनकलाबी कार्यों का दायरा सिर्फ हिन्दोस्तान में ही सीमित न रहा। वह तीन तीन महाप्रदेशों—एशिया, यूरोप और अमेरिका में फैला हुआ है। मैक्सिको, रूस और चीन की जन-क्रान्ति में श्री राय का कितना महत्वपूर्ण हाथ रहा है, यह प्रत्येक राजनीति के विद्यार्थी को मालूम है। क्रान्ति के आचार्य लेनिन के साथ कंधा में कंधा मिला कर रूसी-क्रान्ति को सफल बनाने में उनका महत्वपूर्ण हाथ था। संसार के कम्यूनिस्ट-आन्दोलन को ज़ोरदार बनाने में उन्होंने प्रमुख भाग लिया। लेनिन, ट्राट्स्की और स्टालिन के साथ उन्होंने कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल की नींव डाली। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि आधुनिक समय तो क्या, पिछले तवारीखों को देखने से भी कोई ऐसा महापुरुष नज़र नहीं आता जिसे कामरेड राय के समान तीन-तीन क्रान्तियों का व्यक्तिगत अनुभव हो। इस ख़याल से इनक़लाबी तजरुबे में वे आज एकता हैं। यह उनके दुश्मनों ने भी स्वीकार किया है और वे मानते हैं कि कामरेड राय आज संसार के कुछ इने-गिने विद्वानों में एक हैं। ऐसे महापुरुष की जीवनी का हिन्दी में न होना एक बड़ी कमी थी।

यह कितने खेद का विषय है कि हमें प्रगतिशील राजनैतिक विषयों के लिये अङ्गरेजी भाषा की शरण लेनी होती है। क्रान्तिकारी आन्दोलन के समर्थकों को इस ओर भी ध्यान देना होगा। जनता को उसकी भाषा में हमें राजनैतिक-साहित्य देना है। जन-आन्दोलन की स्वस्थ प्रगति के लिये यह सवाल इतना महत्वपूर्ण है कि उसकी ओर हम आंख मूंद नहीं सकते।

यह पुस्तक कोई साहित्य की वस्तु नहीं। मैं साहित्यिक हूं भी नहीं। यह पुस्तक उनके लिये लिखी गई है जिन्हें साहित्य के विषय में कुछ सोचने की फुर्सत भी नहीं है। ऐसे समय में जब हमारा देश एक भयानक इनक़लाबी, कश्मकश के बीच गुज़र रहा है, क्रान्तिकारी महापुरुषों की जीवनियां हम में साहस का संचार करती हैं, हमें ठीक राह दिखाती हैं। आवश्यक है कि ऐसी पुस्तकें जनता तक पहुंच सकें।

फलतः पुस्तक बिलकुल चलती-फिरती भाषा में लिखी गई है। जहां तक भी हो सका है सरल शब्दों का उपयोग किया गया है। हां, यह ज़रूर है कि जहां-तहां अङ्गरेजी के शब्द—जैसे 'कम्यूनिस्ट ईन्टरनैशनल' 'बुर्जुआ', वगैरह—ज्यों के त्यों रख दिये गये हैं। मेरी समझ में ऐसे शब्द इतने प्रचलित हो गये हैं कि उनके लिये हिन्दी के नये शब्द बनाना शायद और भी कठोर हो जायेगा।

यह सच है कि कामरेड राय की यह जीवनी संक्षिप्त ही नहीं, अधूरी है। उनके क्रान्तिवादी कार्य्यों का ब्योरा भिन्न-भिन्न महाप्रदेशों में इस कदर फैला हुआ है कि इस छोटी पुस्तक में उसे समोड़ कर नहीं रक्खा जा सकता। और तो और उनके कार्य्यों का बड़ा हिस्सा पोशीदे ढंग से चुपचाप क्रान्तिकारी आन्दोलन को तीव्र करने में बीता है जो जनता के सामने आ न सका और न अभी आना युक्ति-संगत ही होगा।

शुरू में इरादा यह था कि राय के सिद्धान्त तथा अन्य राजनैतिक संस्थाओं से उनके सम्बन्ध के बारे में तफसील से लिखा जाय। किन्तु जगह की कमी के कारण यह नहीं हो सका।

कितनों का ऐसा मत है कि हिन्दोस्तान की मुक्ति का राह राइस्ट नीति में है। इस पर मैं अभी बहस नहीं करूंगा। किन्तु इतना तो कहूंगा अवश्य कि यदि कामरेड राय के क्रान्तिकारी तजहबों से हिन्दोस्तान ने फायदा नहीं उठाया तो वह अभागा है। हमें इस महान व्यक्ति के जीवन के उथल-पुथल को गौर से देखना है। इस ओर यदि मेरी पुस्तक ने पाठकों का कुछ भी ध्यान आकृष्ट किया उनमें कुछ और अधिक जानने की दिलचस्पी पैदा की, तो मैं अपने को सफल समझूंगा।

पुस्तक में कई जगह भयानक अशुद्धियां रह गई हैं। इसका कारण प्रकाशन की जल्दीबाज़ी है। मुझे इसका अफ़सोस है।

चन्द्रभवन,
पटोरी, दरभंगा
नवम्बर, १९३८

त्रिवेदी परमानन्द

बालक नरेन्द्र—

सन् १८५७ में हिन्दोस्तान सामन्तशाही ने ब्रिटिश साम्राज्य-वाद क विरुद्ध ज़बरदस्त लोहा लिया था। क़ौमियत के नाम पर वे हिन्दोस्तान से विदेशी हुकूमत का अन्त कर देना चाहते थे। ऐसा नहीं हो सका। अङ्गरेज़ी साम्राज्यशाही ने उस प्रसिद्ध "सिपाही विद्रोह" को कुचल डाला। उस समय से आजतक यह अभागा देश पराधीन है।

साम्राज्यशाही ने इस स्वर्ण-भूमि को अपने अधिकार में रखने में, इसके धन को चूस कर इसे कंगाल बनाने में, इसे हर प्रकार से लाचार और कमज़ोर बना देने में जिन तरीक़ों को अख्तियार किया है, वैसी बर्बर, नृशंस और ज़ालिम नीति का नमूना इतिहास में कम मिलता है। धीरे धीरे जनता संभलने लगी। उसमें जागृति के भाव उदय होने लगे। पिछली शताब्दी के अन्त में तो हिन्दोस्तानी राष्ट्रीयता और अङ्गरेज़ी साम्राज्यशाही के बीच संघर्ष का धुंधला चित्र प्रकट होने लगा। विदेशी हुकूमत के ख़िलाफ़ क्रान्ति की चिनगारियां इकट्ठी होने लगीं।

नरेन्द्र उन्हीं चिनगारियों में से एक था। उसका जन्म उन्हीं संघर्ष के दिनों में हुआ था।

कौन जानता था कि यही नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य्य आगे चलकर विश्व-क्रान्ति के सब से बड़े नेता लेनिन और ट्राट्सकी और स्टालिन के साथी एम. एन. राय. के नाम से प्रसिद्ध होगा, जिसकी आवाज़ हिन्दोस्तान तक ही सीमित नहीं रहेगी। और, वह मैक्सिको, रूस, जर्मनी, चीन इत्यादि देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों के मुख्य कर्णधारों में गिना जायगा ?

× × ×

नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य्य उच्च बंगाली-ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। उनका जन्म कलकत्ते के निकट २४-परगना जिले में, सन् १८६२ ई० में, हुआ था। इनके पिता तथा पूर्वजों का मकान मिदनापुर जिले में था। इनके परिवार-वाले बहुत बड़े धार्मिक थे और एक प्रसिद्ध मन्दिर के पुजारी थे।

आस-पास के गांवों में वह मन्दिर बहुत ही पुराना और प्रसिद्ध था। प्रचलित कथा यों है कि उस देवी की मूर्ति को, जो आज भी मन्दिर में मौजूद है, श्रीहनुमान जी लंका से वहां लाये थे। उस मूर्ति की पूजा खुद रामचन्द्र जी ने रावण पर विजय पाने के पश्चात की थी। फिर वह मन्दिर मशहूर क्यों न हो ?

मन्दिर की कुछ ज़मीन थी जिससे इनके परिवार वाले अपना भरण-पोषण करते थे। परिवार के लिये उतनी ज़मीन यथेष्ट न थी। वे निर्धनता की ज़िन्दगी व्यतीत कर रहे थे। इन्हीं सब कारणों से

नरेन्द्र के पिता अपना पैतृक स्थान छोड़कर २४-परगना के एक गांव में जा बसे। और वहीं पर हाई-स्कूल में संस्कृत के अध्यापक के पद पर बहुत दिनों तक रहे।

नरेन्द्र उन दिनों अपने गांव के स्कूल में पढ़ते थे। अपने सह-पाठियों में वे बड़े तेज़ थे और ख़ासियत यह थी कि वे किसी भी विषय पर अच्छे प्रकार तर्क कर सकते थे। बचपन में ही उन्हें धर्म-सुधार आन्दोलनों से दिलचस्पी हुई। वे उसी समय से धर्म के रूढ़ि-वादी भावों से चिढ़े रहते थे। वे पुराने धार्मिक ख़यालों में परिवर्तन चाहते थे।

उन दिनों बंगाल में धर्म-सुधार आन्दोलन जारी था। स्वामी रामतीर्थ और दयानन्द हो चुके थे। विवेकानन्द ने सबों में एक नई जान फूंक दी थी। इन आन्दोलनों का नरेन्द्र पर कुछ ऐसा असर हुआ कि वे मूर्ति-पूजा से घृणा करने लगे। किन्तु घृणा कर के ही वे चुपचाप बैठ जाने वाले नहीं थे। रात में अपने साथियों की टोली बनाकर वे मन्दिरों में जाते और चुपचाप मूर्तियों को ग़ायब करके फेंक देते। उन दिनों उनका यही काम था।

नरेन्द्र के दिल में जो बात बैठ जाती उसे बिना पूरा किये उन्हें चैन नहीं मिलता। मूर्ति में यदि उन्हें विश्वास नहीं तो वे उसे रहने नहीं देंगे। अपने सुनिश्चित मत पर औरों की परवा न करके भी क़ायम रहने की उन्हें ज़िद थी। यह क्रान्तिकारी प्रवृति उनमें बचपन से ही मौजूद थी।

उन्हीं दिनों का एक बड़ा दिलचस्प किस्सा है। एक दिन अपने

एक साथी से मूर्ति तोड़ने के विषय में उनको बहुत तर्क हुआ। मन्दिर में एक मिट्टी का कलश रक्खा था। उनके साथी ने नरेन्द्र को चुनौती दी कि यदि उन्हें मूर्तियों के प्रभाव में विश्वास न हो, तो वे अपने पैरों से उस पवित्र कलश को तोड़ तो दें। उस साथी का विश्वास था कि ऐसा करने से ईश्वर की ओर से नरेन्द्र को दण्ड मिलेगा।

नरेन्द्र को अपने तर्क पर यक़ीन था। अपने साथी की चुनौती उन्होंने क़बूल की और उस कलश को तोड़ दिया। उस दिन वे नये जूते पहने हुए थे, जिससे उनका पैर कट गया। पैर का वह छोटा फोड़ा बड़ा-सा घाव हो गया। उनके साथियों ने उसे ही ईश्वर का दण्ड समझा। नरेन्द्र के जीवन में यह पहला Spiritual Crisis (धार्मिक-संकट) था। इस विषय पर उन्होंने खूब सोचा और अन्त में इस नतीजे पर पहुंचे कि घाव का कारण नया जूता था—ईश्वरीय कोप नहीं।

इस छोटी सी घटना में हम नरेन्द्र का भविष्य पढ़ सकते हैं। बचपन से ही वे तर्क को धार्मिक ख़यालों से ऊँचा स्थान देते थे। जिस चीज़ को ठीक समझ लेते, उसके लिये वे सब कुछ करने को तैयार रहते। वे बाग़ी बन सकते थे और षड़यन्त्रकारी भी। आराम से बैठना उनके स्वभाव के विपरीत था। सचमुच वे बचपन से क्रान्तिकारी थे।

स्कूल की पूरी पढ़ाई ख़त्म भी न होने पाई थी कि वे राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने लगे। बंग-भंग और स्वदेशी आन्दोलन ने उनकी पढ़ाई में हस्तक्षेप किया। अपना स्कूल छोड़कर वे प्रसिद्ध नेता श्री अरविन्द घोष के राष्ट्रीय-विश्वविद्यालय (National

University) में शामिल हुए और वहीं ऑनर्स के साथ ग्रैजुएट भी हुए।

राजनैतिक कार्य्यों में लग जाने के कारण उनका अध्ययन आगे जारी न रह सका। शीघ्र ही अपने कई साथियों के साथ 'युगान्तर दल' नामक एक प्रसिद्ध विप्लववादी संस्था में, अपने अनेक साथियों के साथ वे शामिल हो गये। उनके प्रत्येक साथीने आगे चल कर कांग्रेस आन्दोलन में बहुत बड़ा भाग लिया। उसी गांव के उनके एक अन्तरंग मित्र तथा सम्बन्धी, श्री हरिकुमार चक्रवर्ती सन् १९३०-३१ के सत्याग्रह-युद्ध के समय बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी के सेक्रेटरी थे। आज कई साल से वे बंगाल आर्डिनेन्स के काले क़ानून के शिकार बन कर, बिना किसी क़सूर और मुक़द्दमे के, नज़र-बन्द हैं। *

* श्री हरिकुमार चक्रवर्ती पिछले आन्दोलन के समय बंगाल-आर्डिनेन्स में गिरफ्तार किये गये थे। अभी अप्रेल (१९३८) महीने में वे मुक्त किये गये हैं। कामरेड राय उसी महीने में कलकत्ता गये हुए थे और श्री चक्रवर्ती से करीब २९ साल के बाद वे इस मौके पर अपने गांव में मिले थे।

बंग-भंग—

उस समय बंगाल में ही नहीं बल्कि सारे हिन्दोस्तान में, विदेशी हुकूमत के विरुद्ध असन्तोष की आग फैल रही थी। इसका कारण था विदेशी पूंजीवाद और उसके फलस्वरूप जनता की बढ़ती हुई ग़रीबी। गुलामी के विषैले नतीजों से लोग वाक़िफ़ हो रहे थे। उनमें जागृति फैल रही थी। यह सच है कि इस बढ़ती हुई जागृति के घेरे में सिर्फ मध्यम श्रेणी के लोग ही थे किन्तु इसी राष्ट्रीय जागृति के गर्भ में आने-वाली भारतीय राष्ट्रीय-क्रान्ति की बुनियाद थी। यह साम्राज्य-शाही के लिये ख़तरे की घंटी थी। हुकूमत ने इस जागृति को कुचलना चाहा। लार्ड कर्जन ने इसका बीड़ा उठाया।

अनेकों ऐसे कानून बनाये गये जो हिन्दोस्तानियों के आत्मसम्मान के सर्वथा विपरीत थे और जिनमें गोरे-काले के भेद और व्यापार नीति की विषमता को महत्व दिया गया था। खुद वायसराय ने कई बार एलान किया कि "हिन्दोस्तानी आदमी किसी भी ऊँचे ओहदे के योग्य नहीं हो सकता।" इसके अलावा यूनिवर्सिटी एक्ट बना कर

लोगों के दिल पर और चोट पहुँचाई गई। विश्वविद्यालयों की शिक्षा का बागडोर हुकूमत ने अपने हाथ में ले लिया। विद्यार्थियों को राजनीति से कतई अलग रखने की कोशिश होने लगी। यहां तक कि जुलूसों और सभाओं में भाग लेने वाले विद्यार्थी निकाल दिये जाने लगे।

इस प्रकार से बंगालियों की जागृति को कुचलने का प्रयत्न होने लगा। किन्तु 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।' जनता में और भी असन्तोष बढ़ा। कर्जन हिन्दोस्तानियों की महत्वा-कांक्षाओं को जितना ही अधिक दबाना चाहता था, आन्दोलन उतना ही आगे बढ़ रहा था।

१९०५ में कर्जन ने सार्वजनिक मत के प्रतिकूल बंगाल प्रान्त को दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया। इसके ख़िलाफ़ सारे प्रान्त में शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा हो गया। इस बंग-भंग ने बंगाल के कोने कोने में आग लगा दी। चोट खाई हुई सर्पिणी के समान बंग-भूमि फन काढ़ कर खड़ी हो गई। बड़े जोरों का स्वदेशी आन्दोलन चल पड़ा। घर घर वन्देमातरम् का गाना होने लगा। ऐसी लपट उठी कि मालूम होने लगा कि अङ्गरेज़ी राज उस आग में भस्म हो जायगा। सारे प्रान्त में हड़ताल, प्रदर्शन और प्रचार का वेग था।

आन्दोलन का प्रोग्राम था—(१) स्वदेशी का प्रचार, (२) विलायती वस्तु का बायकाट तथा (३) राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार। आन्दोलन का असर प्रान्त तक ही सीमित न रहा। सारे देश में इसकी चिनगारियां उड़ीं। अखिल भारतीय कांग्रेस के बनारस वाले अधिवेशन ने

बंग-भंग का सख्त विरोध किया। नतीजा यह हुआ कि हर प्रान्त में हुकूमत के विरुद्ध किसी न किसी रूप में आन्दोलन खड़ा होगया।

इधर गवर्नमेन्ट साम्राज्यशाही अपनी पूरी शक्ति से आन्दोलन का अन्त कर देने पर आमादा थी। तरह तरह के काले क़ानून जारी किये गये। हर प्रकार के आन्दोलन पर रोक लगा दी गई। News Papers Act (अख़बार-क़ानून) Seditious Meeting सम्बन्धी Act (राजद्रोहात्मक सभाओं का कानून), Press Act (प्रेस-एक्ट), Criminal Law Amendment Act (क्रिमिनल-ला-एमेण्डमेन्ट एक्ट) आदि बना कर जनता की आवाज़ बन्द की गई। उभड़ती हुई बंगाल की जागृति का बल तोड़ने के लिये प्राण-पण से चेष्टा होने लगी। लोकप्रिय आन्दोलन को मिटाने के लिये चारो ओर से क़ानूनी दीवारें खड़ी की गई। फल यह हुआ कि आन्दोलन ने पोशीदा रूप अख्तियार कर लिया। साम्राज्यशाही का अन्त करने के लिये नौजवानों ने कमर बांध ली। वे सशस्त्र-क्रान्ति की तैयारियां करने लगे। जगह जगह विप्लववादी गुप्त समितियां क़ायम होने लगीं। आतङ्कवाद तथा राजनैतिक डकैतियों का बाज़ार गर्म हो गया। कई स्थान पर भीषण बमकाण्ड हुए। खुदीराम बोस दो अङ्गरेज़ों को मारने के अभियोग में पकड़ा गया। उसे फांसी की सज़ा हुई। जनता ने उसे शहीद समझा। इस प्रकार बड़े बड़े अफ़सर बम और पिस्तौल के घाट उतार दिये गये। राजनैतिक परिस्थिति गम्भीर हो चली। गुप्त-समितियों का ज़ोर बढ़ा।

उन्हीं गुप्त विप्लववादी संस्थाओं में 'युगान्तर' भी एक था जिसके नरेन्द्र एक ज़िम्मेदार सदस्य थे। अपनी संस्था में नरेन्द्र बड़े तेजस्वी और लगन के नवयुवक थे। कहते हैं कि बड़े से बड़े विकट और ख़तरनाक कार्य्य भी नरेन्द्र आसानी से कर लेते।

हां, यह मौजूदा देश की गर्म आबोहवा बंगाल तक ही सीमित न रही। सारे भारतवर्ष में बेचैनी और असन्तोष की ज्वाला धधक रही थी। नरम-दल के नेताओं के पैर उखड़ रहे थे। नौजवान उग्रवादी विचारों की ओर अग्रसर हो रहे थे। माण्डले जेल में बन्द लोकमान्य तिलक और सावरकर अधिक लोकप्रिय थे। महाराष्ट्र, पंजाब, युक्त-प्रान्त इत्यादि में भी विप्लववादी गुप्त समितियां संगठित होने लगी थीं।

युगान्तर —

'युगान्तर' विप्लववादियों का मुख्य पत्र था। अरविन्द घोष के भाई श्री वारीन्द्र इसे निकालते थे। इसकी लोक-प्रियता इतनी अधिक बढ़ी कि इसकी खपत ५६,००० प्रतियों से भी अधिक हो गई थी। यह खुलेआम क्रान्ति का प्रचार कर रहा था। नये बनाये गये काले क़ानूनों की चोट से उसे १६०८ में बन्द हो जाना पड़ा।

'युगान्तर' बंगाल के एक गुप्त विप्लववादी संस्था का भी नाम था। यह संस्था बड़ी ताक़तवर और सुसंगठित थी। प्रान्त भर में जगह जगह इसकी शाखाएं थीं। उसके नेता वीरवर यतीन्द्रनाथ मुखर्जी थे जो अङ्गरेज़ सिपाहियों के साथ खुली लड़ाई में गोलियों के शिकार हुए। नरेन्द्र इसी संस्था के सदस्य थे। कुछ लोगों का कहना है कि वे अनुशीलन-समिति के सदस्य थे। किन्तु यह बात ग़लत है।

कहते हैं कि जिस दम वे युगान्तर में शामिल हुए थे, उनकी उम्र मुश्किल से १४ साल की थी। फिर भी उनका उत्साह और

लगन देखकर हर कोई दंग था। युगान्तर के एक प्रसिद्ध नेता ने नरेन्द्र के सम्बन्ध में नीची लिखी बातें एक बार कही थीं:—

"नरेन्द्र से हमलोगों की कुछ राजनैतिक विषयों पर बातें हुई। इसके बाद ही उसने अपने को देश की आज़ादी के लिये सौंप दिया और क़सम खाकर एलान किया कि हिन्दोस्तान को स्वतंत्र बनाने में मैं अपना सब कुछ न्योछावर कर दूंगा और असम्भव को भी सम्भव बना दूंगा। नरेन्द्र हमलोगों के दल में शामिल हुआ और हमारे आन्दोलन के लिये बहुत ही योग्य साबित हुआ। उसमें ऐसे ऐसे अद्भुद गुण वर्तमान थे जो बिरले ही किसी बड़े नेता में भी होते हैं।"

पहली बार १९०७ ई० में नरेन्द्र अपने गांव के रेलवे स्टेशन को लूटने के जुर्म में गिरफ्तार हुए। उनके ऊपर दोष यह लगाया गया था कि "अपनी क्रान्तिवादी योजनाओं को आगे बढ़ाने के लिये उन्होंने रेलवे-स्टेशन के रुपये लूटे।" लोकमान्य तिलक के उस मशहूर मुक़द्दमे के बाद हिन्दोस्तान में यह राजद्रोह का पहला मुक़द्दमा था। बालक को इतने भीषण अपराध में पाकर लोग सन्नाटे में थे। किन्तु नरेन्द्र बेदाग़ छूट गये। कारण यह था कि मैजिस्ट्रेट को यह विश्वास नहीं हो सका कि वैसी कच्ची उम्र (१४ साल) में भी कोई ऐसा कर सकेगा।

मुक़द्दमे से रिहाई के बाद भी उन्हें चैन न मिला। पुलिस हर समय उनके पीछे लगी रहती। किसी भी राजनैतिक जुर्म में सन्देह होने पर उनकी गिरफ्तारी हो जाती। फल यह हुआ कि उन्हें सदा के

लिये अपना घर छोड़ देना पड़ा। आज यहां, कल वहां—इस ख़ाना-बदोशी की हालत में वे कई बार क्रान्तिकारी जुर्मों में गिरफ्तार हुए और सबूत की कमी के कारण बार बार छूटते भी गये। फिर भी वे हर समय अपने काम में मशगूल रहते। रात-दिन अपने क्रान्तिवादी प्रोग्राम को कार्य्यान्वित करने की फ़िक्र रहती। "हिन्दोस्तान कैसे आज़ाद होगा ?"—एक ही प्रश्न उनके सन्मुख था। इसके लिये नरेन्द्र ने पिता-माता का दुलार, बन्धु-बान्धवों की मुहब्बत तथा घर की सुख-शान्ति को सदा के लिये तिलाञ्जली दे दी।

सन् १६१० में सरकार की ओर से "हवड़ा षड़यन्त्र केस" चलाया गया जिसमें ५० चुने चुने नवयुवक गिरफ्तार किये गये थे। उन सबों पर राजद्रोह (१२४ ए – To wage war against the King) का मुक़द्दमा चला। अभियोग यह था कि भारतवर्ष में विप्लव-सम्बन्धी प्लैन कार्य्यान्वित करने तथा उसके लिये आवश्यक फण्ड इकट्ठा करने के लिये इन लोगों ने कलकत्ते के आसपास विघाटी, रायता, मोरेहाल, नेतरा और हुलुदवारी नामक स्थानों में डकैतियां डाली हैं। मुक़द्दमा १६०८ के क्रिमिनल-ला-अमेण्डमेन्ट एक्ट १४ (Criminal Law Amendment Act XIV) के अनुसार स्पेशल बेंच के मातहत चल रहा था। इस मुक़द्दमे में श्री सुरेशचन्द्र 'युगान्तर' के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री यतीन्द्रनाथ मुखर्जी तथा श्री मजुमदार भी अभियुक्त थे। मुक़द्दमे का फैसला १६११ के अप्रेल में हुआ जिसमें सिर्फ छः क़सूरवार समझे गये। नरेन्द्र २० महीने जेल में under trial कैदी की हालत में रहकर रिहा हुए।

उन दिनों का जेल आज से बिलकुल भिन्न था। आज तो कुछ थोड़ी थोड़ी सुविधायें प्राप्त भी हैं। वीर शहीद श्री यतीन्द्रनाथ दास की कुरबानी तथा बढ़ते हुए जन-आन्दोलन का फल है कि आज राज-नैतिक कैदियों के साथ व्यवहार में कुछ अन्तर आया है। आज वे कुछ स्वतंत्रता से सांस ले सकते हैं। किन्तु उन दिनों तो जेल ख़ासा नरक था। कैदियों के साथ जानवरों से भी बदतर सलूक होता था। राजनैतिक कैदियों पर तो इतनी भीषण सख्तियां होती थीं कि सोचने से भी दिल घबड़ा उठता है। कितने तो इन सख्तियों से ऊब कर आत्महत्या कर बैठते थे और कितने जेल की यातनाओं से पागल हो जाते थे। स्वदेशी आन्दोलन के समय के राजनैतिक कैदियों की लिखी कतिपय पुस्तकों में उस समय की भयानक स्थिति का चित्रण मिलता है कहने का तात्पर्य्य यह है कि उस समय की जेल-यात्रा आज की भांति आसान न थी। इसी हवड़ा षड़यन्त्र केस के तीन कैदी जेल के जुल्मों से घबड़ाकर पागल हो गये थे।

नरेन्द्र भी इन भीषण सख्तियों के शिकार थे। बीस महीनों में ६ माह तो उन्हें solitary confinement (जेल की एकान्त काल-कोठरी) में बिताने पड़े। इन्हीं दिनों न मालूम क्यों, उनके हृदय में धार्मिक और mystic (रहस्यवादी) प्रवृतियां जाग उठीं। उस ज़माने के क्रान्तिकारियों में यह एक ख़ास बात थी। सर्वश्री अरविन्द घोष, रास विहारी, राजा महेन्द्र प्रताप, पुलिन विहारी, यतीन्द्रनाथ मुखर्जी, अवध विहारी, सावरकर बन्धु इत्यादि सभी बड़े बड़े विप्लववादी नेताओं पर, जिनकी कुरबानियों ने हिन्दोस्तान को गहरी नींद से

जगा दिया था, धर्म का गहरा छाप था। मालूम होता है कि धार्मिक शिक्षाओं से ही उन्हें अपने राजनैतिक विचारों में उत्साह मिला था, किन्तु उनमें से बहुतों ने पीछे राजनीति को बिलकुल किनारे कर दिया। आज यदि कुछ थोड़े से नेता राजनीति में भाग ले भी रहे हैं तो उनकी राजनीति मज़हबी ख्यालों से रंगी रहती है। इस विषय में हम आज खुशकिस्मत हैं कि हमारे राजनैतिक आन्दोलनों से धर्म का पचड़ा दिनदिन अलग होता जा रहा है। राजनैतिक स्वतंत्रता की दीवार किसी एक ख़ास मज़हबी बुनियाद पर नहीं खड़ी हो सकती।

नरेन्द्र जेल में धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन करने लगे थे। धर्म की बड़ी बड़ी पुस्तकें उन्होंने पढ़ डाली थीं। साथ साथ योगाभ्यास भी करने लगे थे। जेल से छूटते ही उन्होंने संन्यासी बनने का निश्चय किया। भिन्न भिन्न मत के साधु-महात्माओं से वे मिले और अन्त में रामकृष्ण-मिशन में शामिल हो गये। कुछ दिनों के बाद वे मुर्शिदाबाद के अनाथालय में काम करने के लिये, मिशन की ओर से भेज दिये गये।

वहां उन्हें शान्ति न मिल सकी। वे सदा किसी वस्तु के चिन्तन में डूबे रहते। वहां का समाज उनके अनुकूल नहीं था। आश्रम के दान-पुण्य के ढकोसलों के वायुमण्डल में (hypocritical atmosphere of charity) वे ऊब-से गये। ज्यादा दिन ठहरना उनके लिये सर्वथा असम्भव हो गया। एकदिन वे एकाएक उठे और पैदल ही कलकत्ते के लिये रवाना हो गये।

रास्ते में उन्हें सैकड़ों गांवों से गुज़रना पड़ा। पहली बार उन्होंने गांवों की ग़रीबी देखी। किसानों की दर्दनाक निर्धनता से वाक़िफ़ हुए। कहते हैं कि किसानों की इस भीषण दुरवस्था का उनपर गहरा असर पड़ा और वे फिर से राजनीति में आने की बात सोचने लगे।

धर्म या देश की स्वतंत्रता ?—उनके सामने यही प्रश्न था। उनके दिल में इन दो विचार धाराओं के बीच भयानक संघर्ष चल रहा था। वे कौन सा रास्ता अख्तियार करें, इसी सवाल से वे परेशान थे। बड़े बड़े धार्मिक पुरुषों और संस्थाओं से जान-पहचान तथा निकट सम्बन्ध होने के कारण उनमें Scepticism (युक्तिवाद) * जग पड़ी थी। इधर मातृभूमि की पराधीनता और जनता की निर्धनता खटकती थी। घर-द्वार और भाई-बहिन का मोह तो वह छोड़ ही चुके थे।

अपने सन्मुख उपस्थित इन परस्पर-विरोधी विचारों को सुलझाने का प्रयत्न वे कर रहे थे। इसके विषय में उन्होंने बहुतों से बहसें कीं। एक दिन वे अपने एक साथी से जो पहले विप्लववादी थे और इधर संन्यासी हो चुके थे, इसी विषय पर बातें कर रहे थे। उनके साथी की दलील थी कि "बिना 'आत्म-दर्शन' के कोई कुछ कर ही नहीं सकता।" संन्यासी का यह तर्क नरेन्द्र को तत्वहीन

---

* Scepticism (युक्तिवाद) उस विचार प्रणाली को कहते हैं जो किसी भी धार्मिक-बन्धन को उस समय तक ग्रहण नहीं करती जबतक तर्क की कसौटी पर ठीक न उतरे।

मालूम हुआ। वे सोचने लगे कि "यदि बिना आत्म-ज्ञान और आध्यात्मिक उच्चता प्राप्त किये देश की आज़ादी के लिये लड़ने योग्य कोई बन ही नहीं सकता तो हिन्दोस्तान को स्वाधीनता कभी हासिल ही नहीं हो सकती। न उतने मनुष्य वह ख़याली उच्चता प्राप्त कर सकेंगे और न स्वराज्य होगा। इस पराधीन अवस्था में क्या जनता कोई भी उच्चता प्राप्त कर सकेगी?"

नरेन्द्र ने संन्यास-व्रत छोड़ दिया। देश को आज़ाद बनाने का व्रत उन्होंने लिया जिसके लिये वे आज भी उसी दीवानेपनी के साथ संलग्न हैं। मातृ-भूमि के प्रति कर्तव्य के तकाज़े ने उनके धार्मिक झुकावों को पराजित कर दिया। वे फिर से विप्लववादी बन गये।

सशस्त्र क्रान्ति की तैयारियां—

नरेन्द्र दूने जोश से अपने कार्य्य में आ जुटे। थोड़े ही समय में युगान्तर के नेता श्री यतीन्द्रनाथ मुखर्जी के वे बड़े विश्वास-पात्र साथियों में गिने जाने लगे। उनकी विशेषताएं इतनी चमकीं, उनकी अलौकिक संगठन-शक्ति और कार्य्य-कुशलता से लोग इतने प्रभावित हुए कि वे पार्टी के आधार-स्तम्भ बन गये। उनकी ख्याति सारे देश के विप्लववादियों में फैल गई। अभी उस दिन उनकी खूबियों की चर्चा करते समय उनके एक पुराने साथी कह रहे थे कि जब एकबार दल को रुपयों की आवश्यकता हुई तो नरेन्द्र को ही यह भार सौंपा गया। पार्टी की आज्ञा पाते ही नरेन्द्र निकल पड़े। काम आसान न था। एक निश्चित समय के अन्दर ही उन्हें रुपये लाने थे। पार्टी की ओर से उनके खर्चे के लिये एक चेक मिला था किन्तु वह भी 'कैश' नहीं हो सका। इतना होने पर भी उसी निश्चित समय के अन्दर नरेन्द्र ने एक लाख रुपया इकट्ठा कर के अपनी पार्टी को दिया। यह काम उन्हें अकेले ही करना पड़ा था।

अपने काम में नरेन्द्र बड़े कुशल थे कठिन से कठिन काम भी उनके लिये आसान था। खुफिया विभाग के बड़े बड़े अफसरों को धोखा देकर अपना काम निकाल लेना इनके बांये हाथ का खेल था। एकबार तो खुद चार्ल्स टेगार्ट—प्रसिद्ध अङ्गरेज़ जासूस, इनके कमरे में आ घुसा। पिस्तौल के सन्देह में उसे कमरे की तलाशी लेनी थी। दरवाजे पर धक्का लगते ही नरेन्द्र ने अपनी पिस्तौल और पार्टी के जरूरी कागजात को सामने टेबिल पर रख, उसे अखबार से ढक दिया। और, टेगार्ट के अन्दर घुसते ही बिना किसी घबड़ाहट के इस क़दर अपनी बातों में उसे उलझा दिया कि टेगार्ट के सारे सन्देह मिट गये। वह नरेन्द्र से सन्तुष्ट होकर लौट गया।

अपने इन गुणों के लिये नरेन्द्र बड़े प्रसिद्ध थे। बड़ा से बड़ा सी. आई. डी. भी उन्हें अपने पंजे में नहीं ला सका। अपने दल में वे इसी कारण बहुत प्रिय थे।

धीरे धीरे 'युगान्तर' के बड़े नेताओं में उनकी गिनती होने लगी। वे दिन-रात दल के कार्य्यों में ही संलग्न रहते। उनके सामने और कोई काम था ही नहीं। अपने साथियों सहित उन्हें सदा पार्टी के काम में लगा रहना पड़ता—कभी रुपये तथा हथियार इकट्ठा करने में और कभी सैनिकों, विद्यार्थियों तथा नौजवानों के बीच, प्रान्त और प्रान्त के बाहर, प्रचार करने में। 'युगान्तर' के विप्लवमन्त्र का प्रचार चारों ओर जारी था। इस सम्बन्ध में नरेन्द्र को उत्तर-भारत में कई जगह भिन्न भिन्न रूप और अवस्था में जाना पड़ा। उन्हीं दिनों वे पटने भी आये थे। वहां राजनैतिक संन्यासियों का

एक दल तैयार हो रहा था। पटना भी उस समय विप्लववादियों का एक छोटा अड्डा था। उस दल को युगान्तर में मिला लेने के उद्देश्य से वे पटने भेजे गये थे। नरेन्द्र उस समय एक भीषण राजनैतिक जुर्म में फरार थे। पटना पहुंचते ही उन्होंने अपना नाम बदल कर मदरलैण्ड प्रेस में कम्पोजिटर की नौकरी कर ली। मदरलैण्ड प्रेस पटना कालिज के निकट था और किसी राष्ट्र-कर्म्मी द्वारा संचालित हो रहा था। इसी प्रेस-मजदूर के रूप में कई महीने रहकर उन्होंने अपना काम खूबी से सम्पन्न किया। मदरलैण्ड प्रेस में काम करनेवाले आज कई व्यक्ति मौजूद हैं जिन्होंने उन्हें कम्पोजिटर की शकल में देखा था। आज यह जान कर कि वह कम्पोजिटर एम. एन. राय. ही थे उनके आश्चर्य की सीमा नहीं है।

इधर देश की स्थिति बड़ी नाजुक हो रही थी। यूरोप में महायुद्ध छिड़ चुका था। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति डांवाडोल थी। उसका असर हिन्दोस्तान की राजनीति पर भी था। यहां भी उस समय भिन्न भिन्न राजनैतिक विचार-धारायें बह रही थीं। नरम और गरम दल वालों के बीच भयानक संघर्ष चल रहा था।

नरम-दल के श्री गोखले, फिरोज शा मेहता, एनी वेसेन्ट प्रभृत्ति नेताओं की नीति सहयोग की थी। ब्रिटिश सरकार को वे नाखुश करना नहीं चाहते थे। वे चाहते थे कि शान्तिपूर्ण वैधानिक उपायों से हिन्दोस्तानियों के लिये 'सुधार' प्राप्त किये जायें। फलतः वे महायुद्ध के उस मौके पर हुकूमत की मदद करना चाहते थे। खुद

महात्मा गांधी ने भी उस अवसर पर सरकार की मदद करके अपनी राजभक्ति का नमूना पेश किया था।

उग्रवादी नेता श्री बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल (लाल-बाल-पाल) आदि नरम दल वालों के सहयोग और प्रार्थना-नीति को पसन्द नहीं करते थे। महायुद्ध के मौके पर, वे ब्रिटिश-सरकार पर दबाव देकर, अपनी मांग पूरी करवाना चाहते थे। यही कारण था कि श्री तिलक नौजवानों में बहुत ही लोकप्रिय थे। राजद्रोह के जुर्म में जब उन्हें छः साल की कैद हुई, तो उग्रवादी नौजवानों के एक-मात्र नेता समझे जाने लगे।

नौजवानों में देश को आजाद करने की उत्कट इच्छा तथा उग्रनीति की ओर झुकाव के कारण विप्लववादी आन्दोलन का पैदा होना अस्वाभाविक न था। बंगाल तथा अन्य प्रान्तों के क्रान्तिकारी नवयुवकों ने महायुद्ध के ही अवसर पर ब्रिटिश-हुकूमत के खिलाफ प्रहार करना उपयुक्त समझा, जिससे उन्हें आसानी से सफलता मिल सके। वे सशस्त्र-क्रान्ति की बातें सोचने लगे। जगह जगह गुप्त-षड्‌यन्त्रकारी समितियां स्थापित होने लगीं। समितियों का मक़सद था 'हिन्दोस्तान से फिरङ्गी राज का अन्त करने के लिये सारे देश में विप्लव की तैयारी करना।'

बंगाल, युक्तप्रान्त, पंजाब और महाराष्ट्र में इन षड्‌यन्त्रकारी अड्डों के जाल फैले हुए थे। देश में हलचल थी। गोरों के विरुद्ध भयानक घृणा और रोष फैला हुआ था। हुकूमत के बड़े-बड़े अफसर मारे जाने लगे थे। खुद लार्ड हार्डिञ्ज पर दिल्ली दरबार के अवसर

पर बम का आक्रमण हुआ जिससे वह घायल हो गये थे। विप्लववादी नवयुवकों ने गोरों के साम्राज्यशाही-आतङ्क का जवाब क्रान्तिकारी 'आतङ्क' से देना आरम्भ किया। देश में एक बार हिंसात्मक क्रान्ति की लहर फैल गई।

बंगाल में इन विप्लववादियों का अच्छा संगठन था। विप्लव की तैयारियां वहां ज़ोरों से चल रही थीं। स्कूल, कालेज, पुलिस, मिलिटरी—हर स्थान पर उनका प्रचार कार्य्य जारी था। बड़े पैमाने पर शस्त्रास्त्र इकट्ठे हो रहे थे। ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध दूसरे मुल्कों से सम्बन्ध जोड़ने की कोशिशें चल रही थीं। विप्लव को सफल बनाने के लिये हर मुमकिन उपाय को काम में लाया जा रहा था। सेडीशन-कमिटी-रिपोर्ट से पता चलता है कि नरेन्द्र उस समय बंगाल के कुछ इने-गिने विप्लववादी-नेताओं में से थे। उस षड़यन्त्रकारी-आन्दोलन में उनका प्रमुख स्थान था।

नरेन्द्र 'माडरेट' नेताओं की अक्सर खिल्लियां उड़ाया करते थे। उनकी भिखमंगी नीति को वे फिजूल और सम्मान-रहित समझते थे। उनकी राय में हिन्दोस्तान के सारे प्रश्नों का हल पूर्ण स्वराज्य से ही हो सकता था। हिन्दोस्तानियों के इस जन्म-सिद्ध अधिकार को गोरे, दया या उदारता से प्रेरित होकर, मंजूर नहीं कर सकते थे। यह उनके स्वार्थों के प्रतिकूल था। अतएव हिन्दुस्तानियों को स्वराज्य के लिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही के खिलाफ लड़ना होगा। और, उसका एकमात्र तरीका है—"हिंसात्मक क्रान्ति।" नरेन्द्र

इसी उद्देश्य से, अपने नेता श्री यतीन्द्रनाथ मुखर्जी की रहनुमाई में, अनवरत कोशिशें कर रहे थे।

यतीन्द्रनाथ मुखर्जी उस समय बंगाल के विप्लववादियों के सर्व-मान्य नेता थे। उनकी बहादुरी का वर्णन खुद चार्ल्स टेगार्ट ने किया है। सेडीशन-कमेटी-रिपोर्ट से पता चलता है कि उनका युगान्तर-दल बंगाल का सबसे ज्यादा संगठित और मजबूत दल था। सरकार की ओर से उसे तोड़ देने की बहुत कोशिश हुई, किन्तु यह गुप्त-समिति अपना कार्य्य सतर्कता से आगे बढ़ा रही थी।

यह सच है कि विप्लववादी दलों की बुनियाद जनता की राज-नैतिक चेतना में नहीं थी और न उनके खयाल किसी खास प्रगतिशील राजनैतिक सिद्धान्त पर ही स्थित थे। इन दलों में सिर्फ मध्यम श्रेणी के नौजवान शामिल थे जिन्हें विदेशी हुकूमत बर्दाश्त न थी। उनके सामने सिर्फ एक ही उद्देश्य था—भारत से विदेशी-राज का अन्त! यही उनकी एक खास फिलासफी थी जिसके लिये वे सब कुछ करने पर तैयार थे। कोई उनका साथ दे, न दे—इसकी उन्हें परवा नहीं थी। बहुत से नौजवानों ने हँसते हुए फांसी के तख्ते से यह एलान किया था—"हम जानते थे कि हम हिन्दोस्तान को स्वाधीन नहीं देख सकेंगे। फिर भी हमने अपने सोते हुए भाइयों तथा आने वाली पीढ़ी को जगाने के लिये बग़ावत का बिगुल फूँका था। हिन्दोस्तान की हस्ती कायम रखने के लिये किसी न किसी को यह पहला प्रयत्न करना ही पड़ता। हमारी सफलता इसी में है कि देश गफलत की नींद से जगे।"

इसमें सन्देह नहीं कि विप्लववादी आन्दोलन वैज्ञानिक ढंगों पर संचालित नहीं था। किन्तु यह सभी मानते हैं कि वे नौजवान राष्ट्रीयता के भावों से ओत-प्रोत थे और देशकी आजादी और इनक़लाब के लिये, बड़ी से बड़ी कुरबानियां भी,—कालापानी, फांसी— भी उनके लिये आसान थीं। "फिरङ्गी-राज को हिन्दोस्तानी बर्दाश्त नहीं करेंगे"—की पहली आवाज उन्होंने बुलन्द की।

महायुद्ध छिड़ जाने के कारण सरकार बड़ी सतर्क थी क्योंकि इसी अवसर से यहां के विप्लववादी फायदा उठाना चाहते थे। इस भीषण सतर्कता और सख्ती के भीतर सशस्त्र विप्लव की तैयारियों का काम आसान न था। फिर भी यतीन्द्र, नरेन्द्र, यदुगोपाल, विपिन गांगुली प्रभृत्ति नेता बंगाल में अपना काम आगे बढ़ाने में बेतरह व्यस्त थे। आज भी वे सब बातें, कई कारणों से, तफसील में नहीं लिखी जा सकतीं। संक्षेप में उन घटनाओं का पता हमलोगों को रौलट-कमेटी की रिपोर्ट के ज़रिये मिलता है। नरेन्द्र के क्रान्तिकारी उद्योगों का थोड़ा हाल भी हमें वहां मिलता है—

विप्लव की सफलता के लिये प्रचार तथा अन्य प्रोग्राम के अलावा बड़े पैमाने पर अस्त्र इकट्ठा करना निहायत आवश्यक था। १९१४ के अन्त में 'श्रमजीवी समवाय' नामक एक स्वदेशी कपड़े की दूकान में सर्व श्री यतीन्द्रनाथ मुखर्जी, नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य्य तथा अतुल घोष की देखरेख में, बड़े पैमाने पर अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा करने का प्लैन होने लगा। १९१५ के आरम्भ में इन विप्लववादियों की एक महत्वपूर्ण सभा में

यह तय हुआ कि 'हिन्दोस्तान में सशस्त्र क्रान्ति को सफल बनाने के लिये जर्मन-सरकार की मदद प्राप्त की जाय तथा स्याम, चीन, जावा इत्यादि देशों के विप्लववादियों से सम्बन्ध जोड़ लिया जाय।' यह भी तय हुआ कि 'स्वदेश के इस महान कार्य्य में यदि रुपयों की कमी हो, तो उसकी पूर्ति डकैतियों के जरिये की जाय। देश को स्वाधीन बनाने के लिये किसी भी साधन का प्रयोग अधर्म नहीं है।'

इस निश्चय के अनुकूल गार्डेन रीच की डकैती हुई। 'वर्ड एण्ड कम्पनी'—एक मशहूर अङ्गरेज़ी कम्पनी—के १८, ००० रु० लूट लिये गये। कहा जाता है कि नरेन्द्र का इसमें प्रमुख हाथ था। इसके बाद ही बेलिया घाट की डकैती हुई जिससे कुल ४०, ००० रुपये पार्टी को मिले। अब क्या था ? उन लोगों का कार्य्य तेजी से शुरू हुआ। अस्त्र-शस्त्र खरीदे जाने लगे। जगह-जगह संगठन कायम होने लगे। ब्रिटिश सरकार से मोर्चा लेने के लिये विप्लववादी संस्थायें तैयार होने लगीं।

अन्य देशों से सम्बन्ध स्थापित करने का निश्चय पहले हो चुका था। इसी निश्चयानुसार भिन्न भिन्न देशों में विप्लववादियों की ओर से उनके अनेक एजेण्ट भेजे गये जिनका काम था विदेशों से हिन्दोस्तान के विप्लव-सम्बन्धी प्लैन में मदद हासिल करना। श्री भोलानाथ चटर्जी को स्याम के विप्लववादियों से सम्बन्ध जोड़ने के लिये बैंगकाक भेजा गया। सब से महत्वपूर्ण प्रश्न पार्टी के सम्मुख यह था कि अङ्गरेज़ों के खिलाफ जर्मनों की सहायता कैसे प्राप्त की जाय ?

इसी अरसे में जितेन्द्रनाथ लहेड़ी, जो अभी यूरोप से लौटा था, द्वारा यह संबाद मिला कि हिन्दोस्तानी विप्लववादियों को जर्मनों की सहायता मिल सकती है। इस पर विचार करने के लिये यतीन्द्र-नाथ मुखर्जी के नेतृत्व में बंगाली विप्लववादियों की एक महत्वपूर्ण सभा हुई। अङ्गरेज़ी शासन के ख़िलाफ़ सशस्त्र-विप्लव के आयोजन में जर्मन-सरकार की सहायता प्राप्त करने का प्लैन, युक्ति-संगत समझा गया। सभा की ओर से नरेन्द्र के सर पर इस बात की ज़िम्मेदारी सौंपी गई कि वे जर्मनों से मिल कर विप्लव का सारा प्लैन निश्चित करें।

निसन्देह यह ज़िम्मेदारी बहुत ही महत्वपूर्ण किन्तु ख़तरे से भरी हुई थी—जर्मन सरकार से मिलकर भारतीय विप्लव के लिये सहायता प्राप्त करना, जर्मन सरकार और भारतीय विप्लववादियों के बीच समझौते का आधार तय करना तथा विप्लव-सम्बन्धी सारा प्लैन ठीक करना। महायुद्ध के उन गर्म दिनों में ऐसे अपराधों के लिये मुकदमें की ज़रूरत न थी। Summary Trial के बाद अपराधियों को गोलियां मार दी जाती थीं वा फांसी लटका दिया जाता था। ब्रिटिश अधिकारियों को यदि ऐसा कुछ भी सन्देह होता कि उक्त व्यक्ति जर्मनों से मिलकर ब्रिटिश-सरकार के विरुद्ध षडयन्त्रकारी कार्यों में लगा है, तो उसके प्राण की खैरियत न थी। सैकड़ों आदमी इस अपराध में गोलियों से उड़ा दिये गये थे। कहने का तात्पर्य्य कि नरेन्द्र की ज़िम्मेदारी बड़ी भीषण थी। किन्तु उन का जीवन ही ख़तरों से भरा पड़ा है। इन्हीं ख़तरों को फ़तह करके ही तो वे आज राजनैतिक जगत में इतना चमक सके हैं।

सन् १९१५ के अप्रेल महीने में नरेन्द्र विदेश-यात्रा के लिये तैयार हो गये। किसी प्रकार ब्रिटिश-अधिकारियों को इसका पता चल गया कि उस जहाज से कोई विप्लववादी सफ़र कर रहा है। जहाज की ख़ानातलाशी हुई। नरेन्द्र के कमरे में भी पुलिस-अफ़सर पहुंचा। किन्तु जिस खूबी से चतुर नरेन्द्र ने अफसरों को चकमा दिया वह एक रोमांचकारी और दिलचस्प घटना है।

नरेन्द्र ने अपना नाम बदल कर 'सी-मार्टिन' रख लिया था। आवश्यक कागजातों तथा नक्शों के साथ वे पहले निर्विघ्न 'डच-इण्डिज़' तक पहुँचे। अन्त में 'वटाविया' पहुंच कर जर्मन राजदूत से मुलाकात की तथा उसके जरिये जर्मन-सरकार के एक विशेष एजेंट 'थिओडोर हेलिफेरिच' से मिल कर हिन्दोस्तान के विप्लव और उसकी सफलता के लिये जर्मनों की सहायता के सम्बन्ध में सारी बातें तय की।

हिन्दोस्तान के विप्लववादियों के सहायतार्थ 'मवेरिक' जहाज द्वारा उस समय तक ३०, ००० राइफल, प्रत्येक राइफल के लिये ४०० राउण्ड गोलियाँ तथा दो लाख रुपये भेजने का प्रबन्ध हो चुका था। 'मार्टिन' के कहने पर शंघाई के जर्मन-राजदूत तथा अन्य अफ़सरों की सलाह से यह निश्चय हुआ कि 'मवेरिक' करांची की ओर न जाकर बंगाल पहुंचे क्योंकि वहां अन्य प्रान्तों की अपेक्षा विप्लव की तैयारियां अधिक हो चुकी हैं। 'मवेरिक' के सम्बन्ध में और बातें आगे लिखी जायेंगी।

अपनी सफलता की सूचना अपने साथियों को देने के अभिप्राय से 'मार्टिन' ने एक सांकेतिक तार—"कारोबार अच्छा है"—हैरी एण्ड सन्स (Harry & Sons) नामक कलकत्ते के एक फर्म को, जिसे विप्लववादियों ने सिर्फ अपने मसरफ के लिये ही खड़ा कर रक्खा था, भेजा। 'मार्टिन' ने बटाविया से रुपये भी भेजने शुरू किये। सिर्फ जून और अगस्त के महीनों में बंगाल के विप्लववादियों को उन्होंने ४३,००० रु० भेजा। यह सच है कि पीछे, ब्रिटिश अधिकारियों को इसकी ख़बर लग गई जिसके फलस्वरूप क़रीब १० हज़ार रुपये सरकार ने बीच ही में ज़प्त कर लिया।

'मार्टिन' जून में बंगाल लौट आये और यतीन्द्र मुखर्जी तथा यदुगोपाल मुखर्जी के साथ 'मवेरिक' का इन्तज़ार करने लगे। सारे प्रान्त पर एकाएक अधिकार जमा लेने का एक ख़ास प्लैन तय हो चुका था। 'मवेरिक' से आने वाले बन्दूक, राइफल इत्यादि आवश्यक अस्त्रों की देर थी। उन हथियारों का अधिक से अधिक उपयोग हो सके, यही हर किसी का प्रयत्न था।

प्लैन का संक्षिप्त विवरण यों है—

'मवेरिक' से आने वाले हथियारों को तुरन्त ही तीन हिस्सों में बांट दिया जावे—

(१) हतिया (पूर्व बंगाल)
(२) बालासोर
(३) कलकत्ता

विप्लववादियों का अनुमान था कि वे सारे बंगाल पर अपना अधिकार जमा लेने के लिये काफी शक्तिशाली हैं। उन्हें सिर्फ अन्य प्रान्तों से आने वाले फ़ौजों के आक्रमण का भय था। इसलिये निश्चय यह हुआ कि बंगाल में आनेवाली तीनों रेलवे लाइनों तथा उनके पुलों को डिनामाइट और बम के ज़रिये उड़ा दिया जाय और वहाँ सख्त पहरा बैठा दिया जाये। जिससे किसी प्रकार भी बाहर से वहां फ़ौज घुस न सके। यतीन्द्र ने बालासोर के निकट मद्रास-रेलवे को रोकने का ज़िम्मा लिया। बंगाल-नागपुर तथा इस्ट-इण्डियन रेलवे (B. N. R. & E. I. R.) के ऊपर भी लोगों को तैनात कर दिया गया। बंगाल-नागपुर रेलवे के लिये विशेष तौर-पर चक्रधरपुर में एक दल भेजा जा चुका था।

'हतिया वाले दल' का काम यह था कि वह जल्द से जल्द राष्ट्र-वादी युवकों की एक सेना तैयार करे। उस राष्ट्रीय सेना के जिम्मे यह काम सौंपा गया कि पहले पूर्व-बंगाल के जिलों पर अपना अधिकार जमा कर वे कलकत्ते के विप्लववादियों की सहायता के लिये आगे बढ़ें।

'कलकत्ते की पार्टी' का काम सब से कठिन था। कलकत्ता उस समय भारतवर्ष की राजधानी थी और साम्राज्यवाद का सब से मज़बूत क़िला। वहां पर विप्लव की आग लगा देना कुछ आसान न था। वहां के दल के नेता नरेन्द्र ही बनाये गये। उनका पहला काम था फोर्ट-विलियम के क़िले पर कब्ज़ा जमा लेना और उसके पश्चात् सारे शहर को अपने अधिकार में ले आना।

इस प्रकार बंगाल प्रान्त को विदेशी बन्धनों से मुक्त करके वे पूर्व-बंगाल में राष्ट्रीय फ़ौज तैयार करने वाले थे। आधुनिक ढंग पर फ़ौजी शिक्षा देने के लिये जर्मन अफ़सर नियुक्त किये जा चुके थे। किन्तु इन सारे षड़यन्त्रों की सफलता 'मवेरिक' के पहुंचने पर ही निर्भर करती थी।

मवेरिक रात को सुन्दरवन में रायमंगल के निकट एक ख़ास दिन को पहुंचने वाला था। उसके हथियारों को उतरवाकर सुरक्षित स्थानों में रखवा देने का बड़ा उत्तम प्रबन्ध हुआ था। 'मवेरिक' को पहचानने के लिये सांकेतिक रोशनियों की क़तारें निश्चित हुई थीं। किन्तु 'मवेरिक' आया नहीं और न उसके सम्बन्ध में कोई संबाद ही मिला। इधर सरकार को भी इसकी गंध मिल गयी।

नरेन्द्र फिर से 'मार्टिन' बनकर जर्मन-राजदूत से मिलने 'जावा' की ओर १५ अगस्त १९१५ को रवाना हुए। 'मार्टिन' का यह स्वदेश से लम्बी विदाई थी। इसके बाद १९३१ के पहले वह हिन्दोस्तान के किनारे पैर न रख सके। १६ वर्षों के बाद ही हम उन्हें विश्व-विख्यात एम. एन. राय. के रूप में अपने देश में देख सके।

'वटाविया' पहुंचने पर 'मार्टिन' को 'मवेरिक' का सारा क़िस्सा मालूम हुआ। 'एस. एस. मवेरिक.' तेल ढोने का जहाज था जिस पर हिन्दोस्तान के लिये कुल हथियार भेजा जाने वाला था। मवेरिक २८ अप्रेल, १९१५ को कैलिफोर्नियां के सान-पेड्रो नामक बन्दर से रवाना हुआ। उस पर उस समय तक गदर पार्टी के क्रान्तिकारी

साहित्यों के अलावा कुछ भी नहीं था। जहाज पहले जावा पहुंचा और वहां से 'सोकोरो' नामक द्वीप—मैक्सिको से ६०० मील पच्छिम—की ओर चल पड़ा। ऐसा प्रबन्ध था कि वहां 'ऐनी लार्सन' नामक दूसरा जहाज बन्दूक, राइफल इत्यादि हथियार लेकर तैयार रहेगा जो 'मवेरिक' पर लाद दिया जायेगा। 'मवेरिक' हथियार लेकर वहाँ से बंगाल की ओर रवाना हो जायेगा। किन्तु 'ऐनी-लार्सन' ने सारा काम चौपट कर दिया। उसके वहां नियत समय पर नहीं पहुंच सकने के कारण 'मवेरिक' को होनूलूलू होकर जावा लौट आना पड़ा। उधर 'ऐनी-लार्सन' पर लदे सारे हथियार वाशिंगटन में अमेरिकन सरकार द्वारा पकड़ लिये गये और ज़प्त भी कर लिये गये।

'मवेरिक' वाला प्रबन्ध असफल हो जाने के कारण मार्टिन को बड़ा दुःख हुआ। इसलिये ही तो वे फिर से जावा पहुंचे हुए थे। अब एक दूसरे प्लैन की आवश्यकता थी। मार्टिन के इच्छानुकूल जर्मन-अधिकारियों ने इस बार दो जहाजों के भेजने का निश्चय किया—एक हतिया की ओर और दूसरा बालासोर की ओर, क्योंकि रायमंगल तो अब सुरक्षित स्थान था नहीं हतिया वाले जहाज पर २०,००० राइफल, ८,०००,००० गोलियां २,००० पिस्तौल तथा बम इत्यादि भेजने के प्रबन्ध हुआ तथा बालासोर वाले जहाज पर १०,००० राइफल और दस लाख गोलियां। इन दोनों जहाजों के अलावा एक तीसरे जहाज का भी प्रबन्ध हुआ जो एक छोटे फौज के साथ 'अन्डमन टापू' पर आक्रमण कर के वहां के जेल से राजनैतिक कैदियों को रिहा कर उनके साथ सिंगापुर पहुंचता। वहां के

हिन्दोस्तानी विप्लववादियों का सहयोग प्राप्त करके रंगून पर आक्रमण करने का निश्चय हुआ था। रंगून के बाद वे बंगाल की ओर रवाना होने वाले थे।

'मार्टिन' ने इन सारे षड़यन्त्रों का प्लैन सावधानी से तय किया था। उसी समय बंगाल की परिस्थिति बहुत ख़राब हो गई। सरकार को इस भयानक षड़यन्त्र का पता लग चुका था। बहुत से ऐसे आदमी पकड़ गये थे जिनके कागजातों से इस सारे जर्मन-षड़यन्त्र का भण्डाफोड़ हो गया। 'हेलिफेरिच' ने एक चीना-मैन के साथ बंगाली-विप्लववादियों की सहायता के लिये ६६००० Guilders भेजा था तथा उसी के साथ पेनांग और कलकत्ता के दोस्तों के पास कई आवश्यक पत्र भी भेजे गये थे। चीना-मैन सिंगापुर में ही गिरफ्तार हो गया। ऐसे कई और आदमी भी गिरफ्तार हो गये जिनके कागजातों से सरकार को सारी बातें मालूम हो गईं। फलतः ज़ोरों की गिरफ्तारी आरम्भ हुई। सरकार हर प्रकार से इस षड़यन्त्र का अन्त करने पर तुल गई।

उधर विप्लववादियों के नेता श्री यतीन्द्र मुखर्जी बालासोर के निकट एक जंगल में छिपे थे। उन पर एक भीषण राजनैतिक डकैती के जुर्म के लिये वारंट जारी था। हथियारबन्द सरकारी सेना ने उनका पीछा किया। कहते हैं कि जिस बहादुरी के साथ श्री यतीन्द्र ने अपने साथियों के साथ सरकारी-सेना का सामना किया उसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। उन्होंने घण्टों तक खुली लड़ाई जारी रक्खी। उस लड़ाई का रोमांचकारी वर्णन खुद चार्ल्स-टेगार्ट ने किया है। यतीन्द्र और उनके बहादुर साथी अन्त में गोलियों के शिकार

हुए। इस प्रकार उस वीर बंगाली नेता का अन्त हुआ। उनकी मृत्यु के बाद संगठन टूट-सा गया। सारे विप्लववादी छिपकर चन्दरनगर तथा इधर-उधर रहने लगे। शंघाई, रंगून इत्यादि देशों में भी हिन्दोस्तानी विप्लववादियों की ऐसे जोरों की गिरफ्तारी आरम्भ हुई कि सारा प्रोग्राम ठण्ढा पड़ गया।

इस प्रकार 'मार्टिन' तथा उसके साथियों के उस बृहत जर्मन-प्लैन का अन्त हो गया। इसका विस्तृत वर्णन शायद युगान्तर के सद-स्यों को छुड़ा कर बहुत कम लोगों को मालूम है। इन थोड़ी सी घटानाओं का वर्णन तो सेडीशन-कमेटी रिपोर्ट तथा अन्य सरकारी डाकूमेन्ट वगैरह से प्राप्त हो सका है। कौन जानता है कि उस प्लैन की सफलता के बाद आज हिन्दोस्तान का नक्शा कैसा होता ?

सूदूर पूर्वीय देशों में—

'मार्टिन' के लिये अब कोई और उपाय न था। उनके लिये चारों ओर ख़तरा था। हिन्दोस्तान तो वे लौट सकते नहीं थे। साम्राज्यशाही-भेड़िया उन्हें निगल जाने की ताक में बैठा था। राजद्रोह (Sedition) कमेटी की रिपोर्ट में तो यह लिखा है कि 'वटाविया' से जब 'मवेरिक' अमेरिका लौटाया जा रहा था, तो 'हेलिफरिच' ने बड़ी सावधानी से उस जहाज में 'हरी सिंह' के बदले 'मार्टिन' को बैठा दिया। इस प्रकार मार्टिन अमेरिका निकल भागे।

यह सच है कि मार्टिन अमेरिका चले गये। किन्तु तफसील में बात यों है कि अमेरिका जाने के पहले वे जावा, सुमात्रा, डच-इन्डीज इन्डोचाइना, फिलिफाइन्स, जापान, चीन इत्यादि पूर्वीय देशों की ख़ाक छानते रहे। जावा, सुमात्रा के बाद वे 'डच-इन्डीज' गये। वहां के राष्ट्रीय-आन्दोलन से थोड़े अरसे में ही उनका बहुत घना सम्बन्ध हो गया। लेकिन वहां वे ज्यादा दिन रुक नहीं सके। वहां

से उन्हें तुरन्त ही भागना पड़ा। वहां की हुकूमत ब्रिटिश सरकार के एक विद्रोही को अपने यहां ठहराने को तैयार न हुई।

जिस जहाज से 'मार्टिन' को 'डच-इन्डीज' छोड़ना पड़ा, वह पहले 'सैगोन' (इन्डो-चाइना) में रुका। वहां के फ्रेञ्च-अधिकारियों को इसका पता चल गया था कि उस जहाज से एक ख़तरनाक क्रान्तिकारी सफर कर रहा है। अधिकारियों को 'मार्टिन' से बड़ा ख़ौफ था। वे उसे वहां उतरने की अनुमति हरगिज़ देने को राज़ी न थे। अतएव जहाज के बन्दर पर रुकते ही उस पर कड़ा पहरा बैठा दिया गया जिससे 'मार्टिन' को जहाज से उतरने का भी मौका न मिले। पूरे एक सप्ताह तक जहाज वहां रुका रहा, किन्तु 'मार्टिन' को ज़मीन पर पैर रखने की भी इजाज़त नहीं मिली।

जहाज वहां से हांगकांग की ओर बढ़ रहा था। हांगकांग में 'मार्टिन' की गिरफ्तारी निश्चित थी। वहां के ब्रिटिश-अधिकारियों को 'मार्टिन' के उस जहाज से हांगकांग जाने की ख़बर कर दी गई थी। उन्हें गिरफ्तार करने के लिये पहले ही से पूरा प्रबन्ध हो चुका था। जहाज को हांगकांग पहुंचने की ही देर थी। 'मार्टिन' इस ख़तरे को समझ चुके थे।

इस बार बचना एक विकट प्रश्न था। फिर भी 'मार्टिन' हताश नहीं हुए। जब जहाज हांगकांग के नजदीक पहुंचा तो वे जहाज पर से ही चकमा देकर निकल भागे। हांगकांग के ब्रिटिश-अधिकारी हैरान थे। 'मार्टिन' को गिरफ्तार करके वे ब्रिटिश-साम्राज्यशाही के एक बड़े दुश्मन का अन्त कर देना चाहते थे, किन्तु उन्हें शिकस्त

खाना पड़ा। भागने का काम लेकिन आसान न था। 'मार्टिन' ने जहाज के कप्तान से दोस्ती कर ली थी। उसे रुपये का लालच देकर वे बीच समुद्र में ही एक दूसरे जहाज पर सवार हो गये। यह जहाज अन्य दिशा में जा रहा था। 'मार्टिन' उसी से सकुशल फिलिपाइन पहुंच गये। किन्तु उनकी क्रान्तिकारी मनोवृत्ति उन्हें यहां भी चुप कैसे बैठने देती ? कुछ ही दिनों में वहां के क्रान्तिकारी आन्दोलन से, जो अमेरिका के साम्राज्यवाद के ख़िलाफ जारी था, उनका गहरा सम्बन्ध हो गया। उन्होंने इन सभी पूर्वीय देशों तथा भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी समानता देखी। एशिया के इन तमाम पराधीन देशों में, विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय-क्रान्ति की ज्वाला धधक रही थी। 'मार्टिन' ने उन आन्दोलनों के निकट सम्पर्क में आकर, नीजी अनुभव प्राप्त किया। उन्होंने फिलिपाइन के कौमी जंग को यथाशक्ति मदद की। थोड़े ही दिनों में वहां की जनता और बड़े बड़े नेता नरेन्द्र की बड़ी क़दर करने लग गये। आज भी उनमें से कितने उन्हें बड़ी इज्ज़त और स्नेह से याद करते हैं।

फिलिपाइन के आन्दोलन में ज्यादा समय बिताने का उनके पास वक्त न था। उन्हें हिन्दोस्तान के लिये बेचैनी थी। जिस काम के लिये उनके साथियों ने उन्हें विदेश भेजा था, उसे वे कैसे भूल सकते थे ? जर्मन-प्लैन के भण्डाफोड़ हो जाने से वे हताश नहीं हुए थे। उन्हें अब भी उम्मीद थी कि हिन्दोस्तान का विप्लव सफल बनाया जा सकता है। रासबिहारी बोस से मिलकर वे विप्लव की नई

तैयारी करने के लिये उत्सुक थे। इसलिये ही उन्हें फिलिपाइन से विदा लेनी पड़ी।

वे जापान की ओर बढ़े। उत्तर भारत के प्रसिद्ध विप्लवी नेता श्री रासविहारी बोस, उन दिनों वहीं थे। उन्हें भी कई विषम परिस्थितियों के कारण स्वदेश छोड़ देना पड़ा था। कहते हैं कि उन्होंने ही दिल्ली-दरबार के समय लार्ड हार्डिञ्ज को बम से आहत कर दिया था। ब्रिटिश सरकार इनके प्राणों की भूखी थी। वे जापान भाग आये थे और वहीं छिप कर दिन बिता रहे थे। आज की भांति उन दिनों वे जापानी नागरिक नहीं थे। उन्हें जापान से निकल जाने का हुक्म हो चुका था। एक एक घंटा वे मुश्किलों से व्यतीत कर रहे थे। उस समय के बीसियों क्रान्तिकारी नेता आज विदेशों की धूल फांक रहे हैं, जिन्हें अपने स्वदेश में लौटने तक की इजाजत नहीं है।

नरेन्द्र मुश्किलों से जापान पहुंचे। उसका फल यह हुआ कि जापानी-पुलिस उनके पीछे लग गई। रास विहारी से मिलना बिलकुल आसान न था। किन्तु उन्हें तो रासविहारी से मिलकर भारतीय विप्लव के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण बातें तय करनी थीं। बड़ी कठिनाइयों के बाद उन्होंने रासविहारी से मुलाकात की। परन्तु इस मुलाकात का गहरा दाम उन्हें चुकाना पड़ा। जापानी सरकार की आखें उन पर बहुत कड़ी हो गई। उन्हें गिरफ्तार कर तुरन्त ही बाहर निकाल देने की बातें सोची जाने लगीं। निकाले जाने का मतलब था कि वे ब्रिटिश-अधिकारियों के हाथों में पड़ते जहां से छुटकारा मिलना असम्भव था। अतएव नरेन्द्र वहां से छिप कर निकल भागे।

बीहड़ रास्तों को तय करते हुए वे कोरिया आये। वहां से मंचूरिया पार करते हुए टिन्टसिन (Tientsin) पहुंचे। जापानी गुप्तचर-पुलिस उनके पीछे लग चुकी थी। इसकी उन्हें खबर न थी। जापानी पुलिस ने टिन्टसिन के अङ्गरेज अधिकारियों को नरेन्द्र के सफर की सूचना, पहले ही से दे रखी थी। ट्रेन में पहरा था। रेलवे-स्टेशन पर अङ्गरेज-पुलिस का इन्तज़ाम था। गाड़ी से उतरते ही नरेन्द्र गिरफ्तार कर लिये गये।

रात भर हिरासत में रहने के बाद दूसरे ही दिन सबेरे वे ब्रिटिश राजदूत (Consular Court) के सामने पेश किये गये। इस बार नरेन्द्र बड़े भाग्य से छूटे। राजदूत बूढ़ा था और उस समय शराब के नशे में चूर था। नरेन्द्र इसको भांप गये। उस समय वह एक दूसरे नाम से सफर कर रहे थे। उन्होंने बड़ी निर्भीकता से राजदूत को यह विश्वास दिलाया कि वे 'नरेन्द्र' नहीं हैं और न उन्हें किसी प्रकार के राजद्रोह से मतलब ही है। बड़े निर्दोष भाव से उन्होंने कहा—"मैं तो एक राजभक्त नागरिक हूं। अपना स्वदेश छोड़कर मैंने बड़ी ग़लती की है। आज मुझे उसी का दण्ड मिल रहा है। यहां से अब मैं सीधा हिन्दोस्तान लौट जाऊँगा।"

राजदूत ने उन्हें रिहा कर दिया और शराब की मस्ती में बोला—"Keep clear of the bloody sedition" (राजद्रोह से बिलकुल अलग रहना)।

जापान में नरेन्द्र ने चीन के विश्व-विख्यात क्रान्तिकारी नेता श्री सन-यात-सेन से भी मुलाकात की। शायद उस समय वे

'यूनानशी-काई' नामक क्रान्ति-विरोधी नेता के बढ़ते हुए प्रभाव से तंग आकर जापान में ठहरे थे। जो भी हो, चीन के इस राष्ट्रीय नेता से मिलकर नरेन्द्र को बड़ी खुशी हासिल हुई। क्रान्तिकारी आन्दोलनों के वैज्ञानिक संगठन के विषय में, उन्होंने बड़ी जानकारी प्राप्त की। हिन्दोस्तान के विषय पर दोनों में बड़ी बातें हुईं। श्री सन-यात-सेन को हिन्दोस्तान की समस्याओं से विशेष दिलचस्पी थी और वे उसके स्वाधीनता-आन्दोलन से बड़ी हमदर्दी रखते थे।

टिन्टसिन से रिहा होने के बाद नरेन्द्र चीन में ही कुछ समय तक रहे। किन्तु वहां उन्हें, Extra-territorial right* के कारण, हर समय छिप कर रहना पड़ता था। बड़ी मुश्किल और ख़तरे की ज़िन्दगी थी। इसकी कुछ भी परवा न कर उन्होंने श्री सन-यात-सेन के साथियों से सम्पर्क स्थापित किया और चीन के इन राष्ट्रवादियों के सहारे हिन्दोस्तान में फिर से अस्त्र भेजवाने का प्रयत्न आरम्भ किया।

नरेन्द्र के इस प्रयत्न से सन-यात-सेन बिलकुल सहमत थे। किन्तु इस योजना में बहुत रूपयों की आवश्यकता थी। नरेन्द्र ने

* चीन में ब्रिटिश सरकार का 'इक्सट्रा-टेरिटोरियल-राइट' है। इसका अर्थ यह है कि यदि चीन में किसी अपराध से कोई ब्रिटिश-प्रजा की गिरफ्तारी हो, तो वह चीनस्थित ब्रिटिश-राजदूत के हवाले कर दिया जायगा। उसका मुकद्दमा चीन-सरकार नहीं देखेगी। फलतः यदि राय के सम्बन्ध में लोग सच्ची बातें जान जाते, तो उन्हें ब्रिटिश-अधिकारियों के हाथ गिरफ्तार हो जाना पड़ता।

इसके लिये पेकिंग के जर्मन-मिनिस्टर से भेंट की। मिनिस्टर ने इतना अधिक रुपया देने से इन्कार कर दिया। नरेन्द्र को इससे बड़ा क्षोभ हुआ। वे गंभीर विचारों में डूब गये। पहली बार उन्होंने जर्मन-साम्राज्यवाद की चालों को पहचाना। अपने विप्लववादी साथियों में वे पहले व्यक्ति थे जो हिन्दोस्तान-सम्बन्धी योजनाओं की आड़ में, जर्मनों की छिपी हुई टेढ़ी चालों से परिचित हुए।

जर्मन-सरकार ने इसलिये हिन्दोस्तानी विप्लववादियों की मदद नहीं करनी चाही थी कि वह उनकी महत्वाकांक्षाओं और उनकी आज़ादी की लड़ाई से सहानुभूति करती थी। जर्मन हुकूमत भी उसी प्रकार साम्राज्यवादी थी जैसी कि ब्रिटिश। उसके भी साम्राज्यशाही चंगुल में बहुत से देश पराधीन थे। साम्राज्यशाही सब समान हैं—वह चाहे ब्रिटिश हो या जर्मन। सब अपने स्वार्थों को हर मुमकिन उपायों से बढ़ाना चाहते हैं। महायुद्ध इसलिये नहीं लड़ी जा रही थी कि उसमें प्रजातन्त्र की रक्षा का प्रश्न था। वह तो साम्राज्यवादी शक्तियों की आपस की लड़ाई थी जिसके पीछे पराधीन मुल्कों तथा उपनिवेशों के बंटवारे का सवाल था। जर्मनी अपने साम्राज्यशाही-स्वार्थों को बढ़ाने के लिये ही भारतीय विप्लववादियों की मदद कर रहा था।

जर्मन-षड़यन्त्र की सफलता का अर्थ था कि हिन्दोस्तान अङ्गरेज़ों की गुलामी से हट कर जर्मनों की गुलामी में जा फंसे। नरेन्द्र को यह क़बूल न था। वे अपने देश को बेचना नहीं चाहते थे। जर्मन राजदूत की बातों से जब उन्हें सच्ची बातों की भनक मालूम

हुई तो उन्होंने कहा—"हम हिन्दोस्तानी किसी के भी गुलाम होकर रहना नहीं चाहते। हमने अभी तक समझा था कि जर्मन-सहायता हमलोगों को इसलिये मिल रही है कि अङ्गरेज हम दोनों के शत्रु हैं। हमारा यह ख़याल ग़लत निकला। जर्मनों के हाथ अपने देश को बेचना हम नहीं चाहते। हमें मालूम हो गया कि यदि भारत आज़ाद होना चाहता है तो उसे अपने पैरों पर खड़ा होना होगा। उसे अपनी ही ताकत और क्रान्तिकारी-संगठन पर भरोसा करना होगा।"

—राजदूत हक्का-बक्का रह गया। उसने दूसरे किसी हिन्दोस्तानी विप्लववादी से ऐसी कटु बातें नहीं सुनी थीं।

नरेन्द्र किन्तु अब भी हिन्दोस्तान हथियार भेजवाने की बात सोच रहे थे। उनके साथियों ने उन्हें इसलिये ही विदेश भेजा था। सशस्त्र-क्रान्ति के लिये इसकी नेहायत जरूरत थी। मौका भी बहुत अच्छा था। उस वक्त जब ब्रिटिश साम्राज्यवाद महायुद्ध में परेशान था, उसके ख़िलाफ सफल धक्का लगाया जा सकता था। इन सब बातों को सोचते हुए नरेन्द्र ने अपना प्रयत्न ज़ारी रक्खा।

उन्होंने खुद जर्मनी जाने का निश्चय किया। पेकिंग के जर्मन मिनिस्टर ने भी इस ओर इशारा किया था। सम्भव है, वे जर्मनी जाकर हथियारों का प्रबन्ध कर सकें। किन्तु जर्मनी सीधा जाना आसान न था और ख़ास कर उनके लिये। अतएव उन्होंने अमेरिका होकर जर्मनी जाने का तय किया।

एक दिन कैथोलिक पादरी (Catholic monk) के वेश में पैसीफिक-समुद्र के पार, अमेरिका की ओर वे रवाना हो गये।

अमेरिका की ओर—

नरेन्द्र छिपकर अमेरिका तो पहुंचे किन्तु वहां भी उनके लिये कुशल न था। अमेरिका की भूमि पर पैर रक्खे अभी दो दिन भी नहीं हुए थे कि उनके सम्बन्ध में सारे अमेरिका के मुख्य मुख्य अखबारों में सनसनी खेज खबरें, बड़े बड़े अक्षरों में, निकलीं—"A dangerous German Spy or a famous Brahmin revolutionary has entered the country in-Cognito"—(एक खतरनाक जर्मन जासूस अथवा एक प्रसिद्ध ब्राह्मण क्रान्तिकारी इस देश में छद्म वेश में दाखिल हुआ है)। यह खबर सारे अमेरिका में फैल गई। वहां की सरकार सतर्क हो गई। न मालूम, नरेन्द्र के आने का पता लोगों को किस प्रकार लगा। ऐसी हालत में नरेन्द्र को शीघ्र ही पच्छिम-अमेरिका से हट जाना पड़ा।

उन्हीं दिनों उन्होंने अपना नाम बदल दिया। क्रान्तिकारियों के जीवन में ऐसे मौके कई बार आते हैं, जब भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में उन्हें भिन्न भिन्न नाम और वेश अख्तियार करना होता है। खुद

यूलियोनाव-इलिच को अपना नाम 'लेनिन' रखना पड़ा था। नरेन्द्र को भी कई कारणों से विवश होकर अपना नाम बदल कर मानवेन्द्र नाथ राय (एम० एन० राय) रखना पड़ा।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता तथा नरेन्द्र के मित्र श्री यदुगोपाल मुखर्जी* के सहोदर, स्व० श्री ननुगोपाल मुखर्जी, जो साहित्यिक-जगत के एक जगमगाते नक्षत्र थे, उन दिनों अमेरिका में ही थे। नरेन्द्र के लिये नया नाम उन्होंने ही चुना था। 'नरेन्द्र नाथ' बदल कर 'मानवेन्द्र नाथ' नाम रखने में खास तात्पर्य्य यह था कि नाम बदलने पर भी अर्थ ज्यों का त्यों रहे। 'मानवेन्द्र नाथ' तथा 'नरेन्द्रनाथ' (नर=मानव) का अर्थ बिलकुल एक ही है। आज वे इसी नाम से संसार में मशहूर हैं। उनका पहला नाम इस प्रकार ढक गया है कि उस नाम को आज बहुत कम लोग जानते हैं।

अमेरिका पहुंचते ही राय का पहला काम वहां के हिन्दोस्तानी विप्लववादियों से मिलना था। हिन्दोस्तानी गदर-पार्टी के बहुत से कार्य्यकर्ता अमेरिका में थे। सबों से मिलकर राय ने हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में बातें कीं तथा शीघ्र ही शस्त्रास्त्र भेजवाने की आवश्यकता बतलाई। उन्होंने सबों को जर्मन-साम्राज्यवाद की कुटिल चालों से आगाह किया और बतलाया कि "हमलोगों के वतन-फरोशी का

---

* यदुगोपाल मुखर्जी युगान्तर के बड़े जिम्मेदार नेताओं में से थे। सेडिशन कमिटी के रिपोर्ट में इनके सम्बन्ध में काफी चर्चा आई है। इन दिनों वे रांची (बिहार) में डाक्टरी करते हैं। १९३७ के अन्त में कलकत्ते से लौटते समय राय उनसे मिले थे।

फायदा जर्मन-सरकार अपने स्वार्थ के लिये उठाना चाहती है। अतएव हमलोगों को होशियारी से आगे बढ़ना है। ऐसा न हो कि हम एक के बन्धन से मुक्त होकर दूसरे के फन्दे में जा फंसे।"

गदर पार्टी तथा अन्य विप्लववादियों की अवस्था उस समय बड़ी शोचनीय थी। न्यू-यार्क में पहुंच कर राय ने देखा कि हिन्दोस्तानी विप्लववादियों का बहुत बड़ा Demoralisation (पतन) हो चुका है। वे ही लोग जिनके बल पर हिन्दोस्तान के विप्लववादियों ने बड़ी बड़ी उम्मीदें बांध रक्खी थीं, आपस के फूट से कमजोर और पतित हो चुके थे। छोटी-मोटी बातों के लिये उन लोगों में घोर कलह था। उनमें से बहुतेरे German Secret Service (जर्मन जासूस विभाग) के हाथों के कठपुतले हो चुके थे और बहुत से रुपये बनाने की फिक्र में लगे थे। उन लोगों की गिरी अवस्था देखकर राय बहुत दुखित हुए। वे लोग अपने लक्ष्य से इतने गिर गये थे कि जब राय ने जर्मनी जाकर हिन्दोस्तान के विप्लव की सहायता के लिये बड़े पैमाने पर शस्त्रास्त्र तथा अन्य उपयुक्त मददों के प्राप्त करने का प्रस्ताव किया तो उनलोगों ने इसकी परवा तक न की। राय को जर्मनी पहुंचने तक के भी खर्चे से मदद करना उनलोगों ने अस्वीकार कर दिया। बहुत प्रयत्न करने पर भी, रुपयों की कमी के कारण, राय जर्मनी नहीं पहुंच सके। यह इरादा उन्हें अन्त में छोड़ देना पड़ा।

उसी समय उन्हें दुनिया के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों और आन्दोलनों के अध्ययन का अवसर मिला। समाजवाद, अराजकतावाद

इत्यादि संसार के सारे सामाजिक आन्दोलनों तथा राजनैतिक सिद्धान्तों का उन्होंने गहन अध्ययन प्रारम्भ किया। मार्क्सिज्म और समाजवादी आन्दोलन में उनकी ख़ास रुचि हुई। उन्हीं दिनों राय ने अन्य प्राकृतिक विज्ञानों का भी अध्ययन किया। भौतिक शास्त्र, भूगर्भ विद्या तथा अन्य विषयों (Physics, Geology and other allied scientific subjects) में उन्होंने विद्वत्ता प्राप्त की। वे भिन्न भिन्न राजनैतिक तथा ट्रेड-यूनियन संस्थाओं के सम्पर्क में भी आये और उनके नेताओं से जान-पहचान की। 'जे-लवस्टोन' से, जो आज अमेरिका के प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट नेता हैं, उनका उन्हीं दिनों परिचय हुआ था। राय इन सुविधाओं से फायदा उठाना चाहते थे। वे क्रान्तिकारी आन्दोलनों की फिलासफी और उसके तर्जे-अमल से पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहते थे। यही कारण था कि वे अध्ययन के साथ वहां के जन-आन्दोलनों में भी हिस्सा लेने लगे।

हिन्दोस्तानी विप्लव-आन्दोलन के विषय पर पूरी तरह विचार करने का अवसर उन्हें उन्हीं दिनों मिला। उनकी विप्लववादी धारणाओं में परिवर्तन होने लगा। वे इस निश्चय पर पहुंचे कि "हिन्दोस्तान के आजादी-आन्दोलन की सफलता विदेशी ताकत की मदद पर ही मुनहसर नहीं है। कुछ थोड़े से मध्यम-वर्ग के उतावले नवयुवकों के षड़यन्त्रों से भी अङ्गरेज़ यहां से भगाये नहीं जा सकते।" राय के दिल में यह बात बैठ गई कि, "ब्रिटिश-सरकार का महायुद्ध में व्यस्त रहना ही भारत के लिये स्वराज्य प्राप्त करने का

कोई खास कारण नहीं हो सकता, यदि देश में शक्तिशाली जन-आन्दोलन की अनुपस्थिति हो। शक्तिशाली जन-आन्दोलन के लिये जनता में राजनैतिक-चेतना की आवश्यकता है। यदि देश में राजनैतिक जागृति हो, जनता गुलामी के बन्धनों और उसके भयंकर परिणामों को समझ जाय, तो आज़ादी का आन्दोलन मजबूत नींव पर खड़ा हो सकता है और उसकी सफलता की आशा की जा सकती है।"

उस समय के षड़यन्त्रकारी विप्लववादियों ने जन-आन्दोलन की कतई परवा नहीं की थी। उसकी विफलता का ख़ास कारण यही था। राय को यह साफ झलकने लगा कि हिन्दोस्तान की स्वतंत्रता के लिये देश में क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन की आवश्यकता है और साम्राज्यवाद के विरुद्ध, उन तमाम शोषित वर्गों—किसान, मजदूर, निम्न मध्यम वर्ग वगैरह—के संयुक्त मोर्चे की जरूरत है, जो पराधीनता के कारण सबसे अधिक परेशान हैं। इस शक्तिशाली मोर्चे को तैयार करने के लिये षड़यन्त्र की नहीं, एक ख़ास कार्य्यक्रम, प्रोग्राम, की आवश्यकता है जिसकी बुनियाद पर शोषित वर्ग इस क्रान्तिकारी युद्ध में आगे बढ़ सकें। अपने विप्लववादी साथियों में वे पहले थे जिसने इस प्रश्न पर समुचित ढंग से विचार किया और 'क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन' को आवश्यकता महसूस की। इस विषय पर तथा हिन्दोस्तान के अन्य प्रश्नों पर उन्होंने अमेरिका के पत्रों में कई महत्वपूर्ण लेख भी लिखे।

पंजाब के सर्वमान्य नेता स्व० श्री लाजपत राय जी उन दिनों अमेरिका में ही थे। कई लोगों के साथ, जिसमें शहीद भगतसिंह के

पिता सरदार किशन सिंह भी शामिल थे, लालाजी अपने ब्रिटिश-विरोधी विचारों के कारण हिन्दोस्तान से निकाल दिये गये थे। अमेरिका में वे घूम घूम कर वहां की जनता का ध्यान हिन्दोस्तान की समस्याओं पर दिला रहे थे। भारतीय समस्याओं पर वहां उनकी कई किताबें निकली थीं। वे एक साप्ताहिक पत्र—Young India (तरुण-भारत)—का सम्पादन भी कर रहे थे।

राय ने लालाजी का परिचय और विश्वास प्राप्त किया। उनके कार्य्यों में वे पूरी सहायता देने लगे। उन दिनों लालाजी "England's debt to India" नामक पुस्तक लिख रहे थे। इस किताब के लिखे जाने में श्री एम. एन. राय. का भी बहुत हाथ था। उस किताब के लेखकों में श्री लाजपत राय तथा एम. एन. राय दोनों के नाम प्रकाशित होने वाले थे। किन्तु राय ने अपना नाम हटा लिया। कारण यह था कि लालाजी 'कोलम्बिया यूनिवर्सिटी' के प्रोफेसर 'सेलिगमैन' की सलाह पर, जो उस पुस्तक की भूमिका लिखने वाले थे, पुस्तक का कुल भाव (tone) बदल देने पर राजी हो गये थे। उस पुस्तक का अब यह अर्थ निकल रहा था कि "हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन का ध्येय Dominion Status (औपनिवेशिक स्वराज) है। राय को यह सिद्धान्त कबूल न था। उनके मतानुसार भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन पूर्ण-स्वाधीनता के लिये था, औपनिवेशिक-स्वराज के लिये नहीं। इस गहरे मतभेद का फल यह हुआ कि वह किताब सिर्फ लाला लाजपत राय जी के नाम से ही प्रकाशित हुई।

नवयुवक राय को प्रतिभा और उनके ऊंचे आदर्शों से लालाजी बड़े प्रभावित थे। मतभेद रहने पर भी वे राय से बहुत स्नेह रखते थे। लालाजी के इस प्रेम के कारण दोनों सदा एक ही संग रहते और मार्क्सवाद का अध्ययन भी करते थे। किन्तु मार्क्स के सिद्धान्तों के अध्ययन में दोनों के लक्ष्य भिन्न थे। राय मार्क्स की फिलासफी को पूरी तरह से समझना चाहते थे। लाजपत राय जी आर्यसमाजी थे। मार्क्स का अध्ययन वे इसलिये करते थे कि उसका वे सफल खण्डन कर सकें। दोनों के मतों में इतना भेद होने पर भी वे एक दूसरे की क़दर करते थे और हिन्दोस्तान के प्रश्नों पर अमेरिकन जनता का ध्यान आकर्षित करने का सम्मिलित प्रयत्न कर रहे थे।

यह लिखा जा चुका है कि मार्क्स के अध्ययन के साथ साथ राय मज़दूर और समाजवादी आन्दोलनों के निकट सम्पर्क में भी आने लगे थे। हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में तथा अन्य विषयों पर उनके लेखों से उनकी ख्याति बढ़ चली। उनकी चर्चा अमेरिका के बड़े बड़े विद्वानों और समाजवादियों में होने लगी। समाजवादियों से विशेष सम्बन्ध होने का कारण यह था कि हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन से वहां समाजवादी ही अधिक दिलचस्पी रखते थे। महायुद्ध के उन राजनैतिक कोलाहल के दिनों में इन समाजवादियों के सिवा हिन्दोस्तान की बातें सुनने की किसी को भी फिक्र न थी। हिन्दोस्तान की महत्वाकांक्षाओं से सहानुभूति रखने वाले वे ही थे। इन समाजवादियोंके संसर्ग, समाजवाद की फिलासफी के अध्ययन तथा वहां के विभिन्न जन-आन्दोलनों के व्यक्तिगत अनुभवसे राय के विचारों

में अन्तर आने लगा था। वे समाजवाद के कायल हो चले थे। उन्हीं दिनों एक ऐसी विशेष घटना हुई कि उनके हृदय से राष्ट्रीयता की संकुचित भावनायें सदा के लिये मिट गईं और वे समाजवाद में अत्यधिक दिलचस्पी लेने लगे।

सामाजवादियों की एक सभा में श्री लाजपत राय हिन्दोस्तान की समस्याओं पर भाषण दे रहे थे। बड़े जोशीले शब्दों में उन्होंने हिन्दोस्तान के लिये स्वराज्य की आवश्यकता बतलाई। उनके भाषण के पश्चात एक अमेरिकन समाजवादी ने, जो हिन्दोस्तान का बड़ा हितैषी था, लाजपत रायजी से एक प्रश्न किया। उसने पूछा—"ब्रिटिश-राज को खत्म कर चुकने के बाद आप भारतीय जनता की दर्दनाक अवस्था का कैसे सुधार करेंगे?"

"Oh, it is too early to bother ourselves with that question." (इस प्रश्न पर माथा-पच्ची करने की अभी कोई आवश्यकता नहीं)—लाजपत राय जी का उत्तर था।

"Our Sympathy is for the toiling masses of India. We know that simple political freedom does not help the toiling masses of a country. Therefore, unless we are assured that the Government of free India will be such as will give some protection to the toiling masses, we would find little interest in the Indian struggle for freedom." (अर्थात्—हमलोगों की सहानभूति वहां के शोषित वर्गों तथा गरीब जनता के लिये है। हम जानते हैं कि सिर्फ राजनैतिक-स्वतंत्रता

से ही जनता की अवस्था में सुधार नहीं हो सकता। अतएव जब तक हमलोगों को यह मालूम नहीं हो जाता कि आज़ाद-भारत की सरकार गरीब जनता के अधिकारों को सुरक्षित रक्खेगी, तबतक हमलोगों को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में दिलचस्पी नहीं हो सकती।")—सवाल पूछने वाले ने फिर से कहा।

यह समाजवादी दृष्टिकोण लालाजी को नापसंद था। उन्होंने कड़कती हुई आवाज में कहा—"Even if the conditions of the toiling masses were not changed in Free India, what of that ? It is better to be kicked by one's own brother than to be kicked by others." (यदि स्वाधीन भारत में जनता की गरीबी और तौहीनी नहीं भी मिटी तो उससे क्या ? विदेशियों की ठोकरें खाने से अच्छा है कि लोग अपने देशवासियों की ठोकरें सहें)।

लालाजी के इस उत्तर से सभा के सारे लोग अचंभे में आगये। उनलोगों को बड़ी ग्लानि हुई। राय को भी लालाजी की बातें तर्क-शून्य मालूम हुईं। उन्होंने अपनी आखों से अमेरिका की जनता की दुरवस्था देखी थी। स्वाधीन रहने पर भी अमेरिका, इङ्गलैण्ड इत्यादि देशों की जनता निर्धनता, तौहीनी, जहालत, और गन्दगी की कीचड़ में क्यों फंसी है ? उन देशों की स्वतंत्रता तो सिर्फ वहां के बड़े बड़े पूंजीपतियों के फायदे के लिये ही मालूम होती है। ऐसी राजनैतिक स्वतंत्रता का क्या मूल्य ? राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ यदि देश के कुछ थोड़े से पूंजीपति तथा धनी-मानी लोगों की सुख-

सम्पत्ति है, तो ऐसी स्वतंत्रता से क्या फायदा ? इन स्वाधीन देशों में भी तो जनता अपनी आर्थिक स्वतंत्रता के लिये इनक़लाब चाहती है ! सच्ची आज़ादी वही है जिससे राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ साथ आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता भी जनता को प्राप्त हो।"

—राय इन्हीं ख्यालों में कुछ समय तक डूबे रहे। उनके दिल में एक नये प्रकाश ने घर कर लिया। वे कम्यूनिज्म की ओर अग्रसर हुए। राष्ट्रीयता का संकीर्ण और विकृत रूप जिसे पूंजीपति अपने फायदे के लिये फैलाते हैं, उनके सामने से हट गया। अपने साथियों के बीच उन्होंने राष्ट्रीयता और कौमी तहरीक का सच्चा अर्थ पेश किया। उन्होंने इसका प्रचार आरम्भ किया कि "उस कौमी लड़ाई या आन्दोलन का कुछ भी मूल्य नहीं जो गरीब जनता—किसान-मजदूर की भलाई के लिये नहीं हो। राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य होना चाहिये आम जनता की स्वतंत्रता तथा शोषक-वर्ग की उस स्वतंत्रता का अन्त जिसके बल पर जनता की गुलामी और उसका शोषण जारी रहता है।"

राय तबसे अमेरिका के मजदूर-आन्दोलन में और अधिक लगन से भाग लेने लगे। इसका परिणाम हुआ कि उनकी कार्रवाइयों पर सरकार की सख्त निगरानी रहने लगी। अमेरिका के प्रजातन्त्र के उस कथित स्वतंत्र वायुमण्डल में भी वे कैदी-सा जीवन व्यतीत करने को मजबूर हुए। पुलिस सदा पीछे लगी रहती। अमेरिका के महायुद्ध में शामिल होते ही राय पर मानों आफत टूट पड़ी। उन्हें खतरनाक क्रान्तिकारी समझ कर गिरफ्तार कर लिया गया। किन्तु ऐसी

गिरफ्तारियों से वे कइ बार बच निकले थे। गिरफ्तारी के बाद जब वे मैजिस्ट्रेट के सामने पेश किये गये तो बड़े पुर-असर शब्दों में उन्होंने कहा—"यहां मेरे जान-पहचान का कोई नहीं कि मैं जमानत का प्रबन्ध कर सकूं। अतएव यदि आप मुझे अपनी जिम्मेदारी पर छोड़ दें तो मैं अपने मुकद्दमे का प्रबन्ध कर सकता हूं।" मैजिस्ट्रेट ने राय को छोड़ दिया। मौका पाकर राय लापता हो गये। पुलिस ढूंढ़ती रही। इस बार उनका रास्ता मैक्सिको की ओर था।

मैक्सिको की क्रान्ति

मैक्सिको की कहानी बहुत लम्बी है। स्थानाभाव के कारण, यहां सिर्फ कुछ थोड़े से महत्वपूर्ण घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन ही प्रयाप्त होगा।

उन दिनों मैक्सिको क्रान्तिकारी उथल-पुथल के बीच में था जब श्री एम. एन. राय. वहां पहुंचे। सारे देश में क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन का दौरा था जिसका आरम्भ करीब १६१० ही में हुआ था। वहां की जनता बिलकुल परेशान थी और देश में फैले हुए राजनैतिक तथा आर्थिक अवस्थाओं को बदल देना चाहती थी। धीरे धीरे वहां का आन्दोलन उग्र और शक्तिशाली होता गया। आन्दोलन ने इतना अधिक ज़ोर पकड़ा कि पुराने नरम-दली नेताओं के पैर उखड़ गये जो जनता की मांगों के विरोधी थे। आन्दोलन का बागडोर आलवेरो ओबरेगौन (Alvaro Obregon) और प्लूटारको सेल्स (Plutarco Calles) के हाथों में आया। ये दोनों निम्न-मध्यम श्रेणी के मनुष्य थे और जन-आन्दोलन के बहुत बड़े हिमायती थे। वे

अपनी लोकप्रियता तथा योग्यता के सहारे वहां की राष्ट्रीय-सेना के जेनरल होगये थे। उनकी राष्ट्रीय सेना वहां के आदि-निवासी (Red Indians) सैनिकों की बनी हुई थी। उसी सेना की सहायता से वहां सशस्त्र-क्रान्ति का संगठन किया गया जिसकी बदौलत १६११ में 'मैडेरो' (Medero) और १६१४ में करान्जे (Caranze) वहां के प्रेसिडेन्ट हो सके। उन दिनों ओबरेगौन (Obregon) भी बहुत प्रभावशाली नेता थे। वे क्रान्तिवादी राष्ट्रीय-आन्दोलन के उग्रदल के नेता थे। वहां के नौजवान तथा सारे शोषित वर्ग के लोग उनके नेतृत्व में आगे बढ़ना चाहते थे। वे पूंजीवाद और वहां की सरकार की उन राजनैतिक प्रणालियों का अन्त कर देना चाहते थे जिसके भार से देश की उन्नति का गतिरोध हो गया था।

राय ने आते ही उन नेताओं से सम्बन्ध स्थापित किया और कुछ ही दिनों के बाद वहां के क्रान्तिकारी आन्दोलन में हिस्सा लेने के लिये कूद पड़े। वे बचपन से ही क्रान्तिकारी थे। किसी भी देश की क्रान्ति में भाग लेना उनको प्यारा था यदि उसका लक्ष्य 'जनता की स्वतंत्रता' हो। वह सिर्फ हिन्दोस्तान में ही क्रान्ति नहीं चाहते थे। संसार के उन प्रत्येक देशों में वे इनक़लाब देखना चाहते थे जहां की जनता राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक गुलामियों से परेशान थी। यही कारण था कि राय ने उस अनजान देश के आन्दोलन में भी प्रमुख भाग लेना आरम्भ किया।

राय की विद्वत्ता, संगठन-शक्ति, आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने की ताकत तथा उनके क्रान्तिकारी साहस से वहां के सब लोग मुग्ध

थे। उनकी लोक-प्रियता वहां खूब फैली। मैक्सिको की जनता उन्हें अपना आदमी समझने लगी। अपनी योग्यता के बल पर थोड़े ही दिनों में वे उस देश के बड़े नेताओं में गिने जाने लगे। आज भी मैक्सिको की जनता उन्हें आदर और प्रेम से याद करती है।

१९१७ में क्रान्ति-आन्दोलन की बहुत अंशों में सफलता हुई। जमीनें, खानें तथा मेशीनों के विषयों में कई ऐसे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए जिससे जनता का हित हुआ। इस विशाल शक्तिशाली आन्दोलन में भाग लेकर राय को खुद बड़ी खुशी हुई। उन्हें सच्चा क्रान्तिकारी तजुरबा हासिल हुआ।

मैक्सिको में राय करीब ढाई साल तक रहे। उस देश की राजनीति में उन्होंने प्रमुख हिस्सा लिया जिससे मैक्सिको के राजनैतिक-जीवन में उनका स्थान बहुत ऊंचा हो गया। देश के गम्भीर राजनैतिक विषयों पर उनके लेखों और भाषणों का वहां की जनता आतुरता के साथ प्रतीक्षा किया करती। वहां की उग्रवादी सरकार भी उनके विचारों की कदर करती थी। राय अपने क्रान्तिकारी विचारों के लिये वहां प्रसिद्ध थे। वहां की समाजवादी पार्टी के भी वे सदस्य हो चुके थे।

उस समय तक मैक्सिको में कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना नहीं हुई थी। उन देशों में भी कम्यूनिस्ट पार्टी ख़तरनाक समझी जाती थी। कई मित्रों के सहयोग से राय ने इस क्रान्तिकारी संस्था (कम्यूनिस्ट-पार्टी) की स्थापना १९१८ के आरम्भ में की। यह बात मार्के की है कि रूस के बाहर यह पहली कम्यूनिस्ट पार्टी थी जिसका संगठन

राय ने वहां किया था। वे पार्टी के प्रथम सिक्रेटरी भी चुने गये। सिर्फ सिक्रेटरी ही नहीं, पार्टी की ओर से प्रकाशित होनेवाले पत्र—El-Communista (एल-कम्यूनिस्टा) के सम्पादन का भार भी इन्हीं के जिम्मे सौंपा गया। केवल इस बात से ही हम अनुमान लगा सकते हैं कि वहां के राजनैतिक-जीवन में राय का स्थान कितना महत्वपूर्ण था। 'एल-कम्यूनिस्टा' के सम्पादक तथा वहां के कम्यूनिस्ट पार्टी के सिक्रेटरी श्री एम. एन. राय. की ख्याति सारे मैक्सिको में फैल गई। मैक्सिको में ही नहीं अमेरिका, स्पेन, जर्मनी, रूस हर जगह के कम्यूनिस्ट उनके नाम से परिचित होने लगे। थोड़े ही दिनों के पश्चात वे मार्क्स की फिलासफी और उसके क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के पंडित (authority) समझे जाने लगे। देश के किसान और मजदूर आन्दोलनों पर उनका प्रभाव जमने लगा। वहां के बड़े बड़े नेता राय के सलाह की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते।

मैक्सिको में आने के बाद ही उनकी पहली पुस्तक, जो मार्क्सिज्म के आधार पर लिखी गई थी, प्रकाशित हुई। किताब का नाम था—"The High Road to World Peace" (विश्व-शान्ति का मार्ग)। यह पुस्तक अमेरिका में ही लिखी गई थी। इसमें बड़े साफ ढंग से साम्राज्यवादी-युद्धों का विश्लेषण किया गया था। उसमें युद्धों के असल कारणों का वैज्ञानिक-चित्रण था। Bourgeois Pacifism* के

* पूंजीपतियों का युद्ध-विरोधी सिद्धान्त। वे युद्ध का विरोध करते हैं किन्तु संसार की भयानक विषमता और युद्धों के असल कारणों पर ध्यान तक नहीं देते। —लेखक।

ढकोसलों की पोल भी इस पुस्तक में खोली गई थी। युद्ध के कारणों के सम्बन्ध में लिखा गया था कि "प्रत्येक साम्राज्य-वादी राष्ट्र अपने स्वार्थ-साधन के लिये, उपनिवेशों तथा अन्य देशों पर अधिकार जमाना चाहता है उपनिवेशों को प्राप्त करने के प्रयत्न से ही साम्राज्यवादी शक्तियों के स्वार्थों का आपस में संघर्ष होता है जिसका नतीजा है 'महायुद्ध'। अतएव जबतक इसका कारण दूर नहीं हो जाता, सारे औपनिवेशिक गुलाम देश अपने पैरों पर खड़े होकर स्वाधीन नहीं हो जाते, तबतक साम्राज्यवादी युद्धों का अन्त नहीं हो सकता। फलतः साम्राज्यवादी युद्धों के अन्त तथा विश्व-शान्ति के लिये यह आवश्यक है कि इन औपनिवेशिक गुलाम देशों में स्वराज्य हो।"

पुस्तक के आखिरी हिस्से में अमेरिका की साम्राज्यशाही के विषय में भी एक परिच्छेद जोड़ा गया था। उसमें वहां के साम्राज्य-वादी नीतियों का बहुत ही विद्वतापूर्ण विश्लेषण था। प्रजातन्त्रवाद की ओट में वहां की हुकूमत जो साम्राज्यवाद की नृशंस नीति चला रही है, उसका भी इस पुस्तक में नग्न-स्वरूप पेश किया गया था। सबसे महत्वपूर्ण बात उसमें यह थी कि उस प्रसिद्ध 'मुनरो-नीति' (Monroe-Doctrine)* की भी कड़ी आलोचना की गई थी

* मुनरो-नीति (Monroe Doctrine)। मुनरो संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) का सन् १८२३ में प्रेसिडेन्ट था। उन्हीं दिनों यूरोप की साम्राज्यवादी ताकतें नये नये उपनिवेशों की खोज में अमेरिका की ओर बढ़ रही थीं और अमेरिका के दूसरे हिस्सों को अपने साम्राज्य

जिसके सहारे पिछली सदी के मध्य से सारे New World (उत्तर और दक्षिण अमेरिका) पर American Protectorate (संयुक्त-राज-अमेरिका से संरक्षित प्रदेश) स्थापित है और जिसे वहां की तथा-कथित प्रजातन्त्रवादी सरकार ठीक और न्यायोचित समझती है।

पुस्तक बड़े उच्च कोटि की थी। इसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ी। स्पेन की भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ। उसी समय राय ने स्पेन की भाषा भी सीखी। हां, मैक्सिको, अमेरिका तथा और और देशों के समाजवादी विद्वानों ने इस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की है। पुस्तक ने मैक्सिको के प्रेसिडेन्ट General Venustiano Caranze (जेनरल वेनुसटिआनो कैरेन्जे) का भी ध्यान आकर्षित किया।

का अंग बना लेना चाहती थीं। मुनरो ने इस नीति की घोषणा की कि अमेरिका का कोई हिस्सा यूरोपीय ताकतों के आधीन नहीं रहेगा। यदि किसी ने वहां उपनिवेश कायम करने का प्रयत्न किया तो संयुक्त-राज-अमेरिका (U. S. A.) उन हिस्सों के स्वाधीनता की रक्षा करेगी। ऊपर से तो यह नीति भली मालूम होती है किन्तु इस की आड़ में साम्राज्यवादी चालें छिपी थीं। इसी नीति के बल पर U. S. A. ने अमेरिका के बहुत बड़े हिस्से को अपने संरक्षण में कर लिया है, जो उसके साम्राज्यवाद के लिये बहुत ही मुफीद साबित हुई। इस नीति को अब राष्ट्रसंघ भी कबूल करती है। अपने २१वीं धारा (Article 21, League of Nations) में राष्ट्र-संघ ने स्वीकार किया है कि यूरोपीय राष्ट्रों का अमेरिका में उपनिवेश कायम करना संसार की शान्ति-भंग करना है और गैरवाजिब है। —लेखक।

पुस्तक के अन्तिम परिच्छेद से, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है, वह इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने राय को बुलवा कर उनसे भेंट की और उन्हें धन्यवाद दिया। थोड़े ही दिनों में राय और 'जेनरल वेनुसटिआनो' में गाढ़ी मित्रता हो गई। इस मित्रता के विषय में मैक्सिको के मुख्य पत्रों में अक्सर चर्चा रहती। राय का प्रेसिडेन्ट के ऊपर इतना प्रभाव था कि हर कोई उन्हें Non-official Advisor of the President (प्रेसिडेन्ट का गैर-सरकारी सलाहकार) कहा करते थे। राष्ट्र के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य्यों में प्रेसिडेन्ट उनकी सलाह अवश्य लेते।

यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि राय की पहली शादी यहीं एक मैक्सिको की युवती 'एवलिना' ('Evlina') से हुई थी जिसने राय के साथ वहां के क्रान्तिकारी आन्दोलन में जबरदस्त हिस्सा लिया था। 'एवलिना' ने समय समय पर हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण लेख भी लिखे थे।

यह लिखा जा चुका है कि राय ने स्पेन की भाषा सीख ली थी। उन्हें उस भाषा का इतना ज्ञान हो गया था कि उसी भाषा में उन्होंने हिन्दोस्तान की समस्याओं पर एक अच्छी किताब लिखी— 'India Past, Present and Future' (हिन्दोस्तान का भूत, वर्तमान और भविष्य)। किताब के विषय में यहां अधिक लिखना व्यर्थ है। मैक्सिको की चन्द और दिलचस्प वारदातों को हम देखें।

रूस के प्रसिद्ध बोलशेविक नेता बोरोडिन (Borodin) १६१६ के मध्य में मैक्सिको पहुंचे। वे एक ख़ास महत्वपूर्ण तथा गुप्त

कार्य्य के लिये अमेरिका (U. S. A.) भेजे गये थे। अभाग्य-वश, उन्हें कामयाबी नहीं हो सकी। उन्हें वहां से भागना भी पड़ा। मैक्सिको वे बहुत बुरी दशा में पहुंचे। यहां न उनके जान-पहचान का कोई आदमी ही था और न उनके जेब में एक पैसा ही बचा था। बड़ी शोचनीय हालत थी। इसी मौके पर बड़े संयोग से, राय से इनकी पहली मुकाक़ात हुई। इस मुलाकात की भी अजीब कहानी है।

बोरोडिन के दोस्तों ने अमेरिका में उन्हें मैक्सिको के 'गाले' (Gale) नामक व्यक्ति से सावधान कर दिया था जिस पर यह सबों का निश्चित सन्देह था कि वह Secret American Agent (अमेरिका का गुप्त एजेंट) है। 'गाले' बहुत धूर्त और 'चलता-पुरजा' आदमी था। वह मैक्सिको के मजदूर-आन्दोलन की तह में घुस कर उस पर अपना प्रभाव जमाने के प्रयत्न में था। वह जोरों से Anarco-Syndicalist Spirit का प्रचार कर रहा था जिससे (मैक्सिको की) राष्ट्रीय-स्वतंत्रता के सिद्धान्तों की खिल्लियां उड़ाई जाती थीं और उसके विरुद्ध प्रचार किया जाता था। मैक्सिको के इतिहास में यह नई बात नहीं थी। जब भी वहां की उग्रवादी सरकार विदेशी साम्राज्यवादी स्वार्थों के प्रतिकूल कुछ करना चाहती थी, अमेरिका, इङ्गलैण्ड तथा अन्य देशों की पूंजीवादी सरकार लाखों रुपये खर्च करके अपने गुप्त एजेंटों के ज़रिये उसका विरोध करवाती थी। ये एजेंट जनता को मैक्सिको की क्रान्तिवादी राष्ट्रीय सरकार के खिलाफ उभाड़ने का प्रयत्न करते थे।

राय ने इस सिद्धान्त का सख्त विरोध किया। 'गाले' के गन्दे-प्रचारों को वह सदा असफल बनाते रहे। यही कारण है कि राय उसके क्रोध के शिकार थे। वह उनका जानी दुश्मन बना हुआ था। हर प्रकार से राय को नीचा दिखाने के असफल प्रयत्नों में वह लगा रहता था। अपने प्रचार को आगे बढ़ाने के लिये वह एक बड़ा सा मासिक-पत्र भी प्रकाशित कर रहा था। मासिक-पत्र का नाम था—'The Gale's Magazin' (गाले का मासिक-पत्र)। न मालूम इन सबों के लिये तथा कई अन्य कार्य्यों के लिये जिसमें लाखों रुपयों की आवश्यकता थी, वह कहां से रुपये लाता था! अपने पत्र में वह 'थिओसोफी' (एक नया धर्म जिसका वह खुद मसीहा था) तथा कुछ विचित्र ढंग के समाजवाद का प्रचार कर रहा था। उसी पत्र के सहारे वह एम. एन. राय. के विरुद्ध भीषण प्रचार भी कर रहा था। अजीब संयोग कि यही पत्र–('The Gale's Magazin') राय और बोरोडिन की मुलाकात और उन दोनों की दोस्ती का कारण हुआ।

बोरोडिन ने स्वयं इस कहानी के सम्बन्ध में यों कहा था—"मुझे अमेरिका में ही 'गाले' नामक व्यक्ति के खिलाफ चेतावनी दी गई थी। मैक्सिको पहुंचने पर जब मैंने एक दिन 'The Gale's Magazin' (गाले का मासिक-पत्र) बिकते देखा तो उसे पढ़ने की मुझे उत्सुकता हुई। उसकी एक प्रति मैंने खरीदी और उसके पन्ने उलटने पर देखा कि 'एम. एन. राय.' के विरुद्ध उसके सारे पन्ने रंगे हैं। उसमें उनकी बड़ी कड़ी आलोचना और शिकायत थी। 'गाले'

यह सिद्ध करना चाहता था कि 'राय एक बुरा आदमी है और उसका सिद्धान्त गलत है।' मैंने सोचा कि मेरे मित्रों के आदेशानुसार 'गाले' यदि सचमुच बुरा आदमी है तो एम. एन. राय. अवश्य ही अच्छे आदमी होंगे। इस प्रकार मैंने राय से मिलने की ठानी।" राय से मिल कर इन वारदातों का वर्णन करते हुए 'बोरोडिन' ने बड़े सुन्दर ढंग से अपनी कहानी का अन्त किया था—"There you have the Bolshevic logic in a nutshell" (देखो, इसी को बोलशेविक-तर्क कहते हैं)।

राय बोरोडिन से मिलकर बहुत खुश हुए। संसार के इन दो प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों में उसी समय से गाढ़ी दोस्ती हो गई। बोरोडिन वहीं उनके साथ रहने लगे। किन्तु कुछ ही महीनों के बाद बोरोडिन वहां की जिन्दगी से उकता गये क्योंकि वहां उनके लिये कोई ख़ास काम नहीं था। और, वे आलस्य का जीवन पसन्द नहीं करते थे। अतएव वे रूस लौट जाने की तैयारियां करने लगे।

लिखा जा चुका है कि राय अपने लेखों तथा पुस्तकों के बदौलत बहुत मशहूर हो चुके थे। उनके क्रान्तिकारी विचारों की चर्चा चारों ओर फैल चुकी थी। वह अब मार्क्सिज्म पर एक विशेष अधिकार रखते थे। उनके लिखने की शैली, अटूट तर्क, गम्भीर क्रान्तिकारी विचारों की ख्याति लेनिन तक पहुंच चुकी थी। वे भी उनके लेखों से प्रभावित थे। लेनिन ने यह भी सुना था कि मैक्सिको के कम्यू-निस्ट पार्टी के प्राण राय ही हैं। इन सब कारणों से वे राय से

मिलने को उत्सुक थे। इधर बोरोडिन ने भी लेनिन के पास लिख भेजा था कि "मैक्सिको में मुझे एक ऐसे हिन्दोस्तानी सज्जन से मुलाकात हुई है जो 'इन्टरनैशनल'* के लिये बहुत ही योग्य सहायक सिद्ध हो सकते हैं। उनमें क्रान्तिकारी नेताओं की बेइन्तहा खूबियां छिपी हुई हैं। उनके क्रान्तिकारी गुणों में और संगठन-शक्ति में जादू-सा असर है।"

लेनिन के दिल में यह बात बैठ गई कि यदि राय रूस आ सकें तो 'इन्टरनैशनल' का संगठन और भी ऊँचे पैमाने पर हो जायेगा। इसके सिवा हिन्दोस्तान तथा अन्य देशों के क्रान्तिकारी अनुभवों से, जिसे राय ने प्राप्त किया था, इन्टरनैशनल का फायदा होना निश्चित था। लेनिन ने तुरन्त ही मैक्सिको में बोरोडिन के पास

---

* 'इन्टर-नैशनल' संसार के मजदूरों की अन्तर-राष्ट्रीय श्रेणी-संस्था है जिसे समाजवादियों तथा उग्रवादी नेताओं ने यूरोप में कायम किया था। पहली संस्था मार्क्स के प्रयत्नों से १८६४ में कायम हुई थी। १८७२ में मार्क्स और बेकुनिन (अनार्किस्ट नेता) के मतभेदों के कारण वह टूट गई। १८८९ में दूसरे अन्तर-राष्ट्रीय संघ का संगठन हुआ जिसे सेकेण्ड-इन्टर-नैशनल कहते हैं। यह दूसरा इन्टर-नैशनल आज भी कायम है किन्तु मार्क्स के क्रान्तिवादी धारा से वह अलग हट चुका है। मेकडानेल्ड, ट्राट्सकी इत्यादि सारे सुधारवादी सोशल डेमोक्रैटिक नेता इसी के सदस्य थे। इसका प्रधान केन्द्र जेनेवा है।

दूसरे इन्टरनैशनल के मार्क्स-विरोधी कार्रवाइयों के कारण एक 'तीसरे इन्टरनैशनल' की आवश्यकता महसूस हुई। १९१९ में लेनिन ने

यह संदेश भेजा कि 'राय को मेरी ओर से रूस आने का निमन्त्रण दो। मैं खुद उनसे मिलने को उत्सुक हूं......इत्यादि।' लेनिन के इस निमन्त्रण को बोरोडिन ने राय से दिखलाया किन्तु राय अभी मैक्सिको छोड़ना नहीं चाहते थे। मैक्सिको के प्रेसिडेन्ट तथा उनके अन्य मित्र भी यह विचार नापसन्द करते थे। वे उन्हें अपना सहोदर समझने लगे थे। किन्तु जब लेनिन की ओर से बार बार आग्रह हुआ तो राय बोरोडिन के साथ ही रूस चलने को तैयार हो गये।

यह यात्रा राय के लिये आसान न थी। ब्रिटेन और अमेरिका की सरकार उनके प्राणों के पीछे लगी थी। दोनों देशों की सरकारों ने, मैक्सिको की सरकार से उनके Extradition (देश-निकाला) का मुतालबा किया था जिससे उन्हें कैद कर लिया जा सके। ऐसे खतरे के दिनों में मैक्सिको-सरकार ने उन्हें शरण दिया था। सरकार की ओर से हर प्रकार की सुविधायें उन्हें प्राप्त थीं। खुद वहां के प्रेसिडेन्ट उनके परम मित्र थे, जिसके कारण उन्हें हर प्रकार की

इसका संगठन किया जिसका मुख्य केन्द्र रूस में रक्खा गया। यह मार्क्स के क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के अनुकूल संगठित हुआ था। उस समय से यह संस्था संसार के क्रान्तिवादी आन्दोलनों का नेतृत्व करती रही है। आमतौर पर इस 'इन्टरनैशनल' को 'कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल,' 'कोमिनर्टन', 'तीसरा इन्टरनैशनल' इत्यादि कहा जाता है। इस पुस्तक में इन्टरनैशनल का अर्थ इसी 'तीसरे इन्टरनैशनल' से है। यह संसार भर के कम्यूनिस्टों की संस्था है।—लेखक।

सहायता प्राप्त थी। मैक्सिको में समय समय पर जब इस बात की अफवाह उड़ती थी कि अमेरिका-सरकार के Secret Service Agents (खौफिया-विभाग) वाले राय को चुपचाप उड़वा (Kidnap) लेने वाले हैं वा किसी दूसरे ढंग से साम्राज्यवाद के परम शत्रु राय को अपने रास्ते से अलग करने वाले हैं, तो मैक्सिको की सरकार की ओर से उनकी रक्षा के लिये एक खास प्रबन्ध रहता था। इसके अलावा सरकार की ओर से उनकी रक्षा के लिये उनके मकान के चारो ओर सशस्त्र सिपाहियों का हर समय पहरा रहता था। मैक्सिको का प्रेसिडेन्ट उन्हें इतना सुरक्षित रखता था!

ये संरक्षण और सुविधायें उन्हें जहाज पर कैसे मिल सकती। मैक्सिको से यूरोप जाने में जहाज का 'हवाना' (Havana) में रुकना आवश्यक था, जहां अमेरिका-सरकार कुछ भी कर सकती थी। वहां पर राय का गिरफ्तार हो जाना निश्चित-सा था। और, फिर उनके प्राणों की खैरियत न थी। यूरोप पहुंच जाना उनके लिये एक कठिन समस्या थी। किन्तु इन खतरों का खौफ राय को कब था? इससे बड़ी बड़ी समस्याओं को वे आसानी से हल कर चुके थे। यूरोप होकर उन्हें रूस पहुंचना ही था, जैसे भी हो।

मैक्सिको के प्रेसिडेन्ट तथा अन्य मित्रों से उन्होंने विदा ली और १६१६ के अन्त में उस खतरे की किश्ती (जहाज) पर यूरोप की ओर रवाना हो गये। इसलिये कि उन्हें सफर में असुविधायें न हों,

उनके लिये मैक्सिको की सरकार से एक ख़ास पास-पोर्ट मिला था। उनके पासपोर्ट पर लिखा था—"Confidential Agent of the President, Mexican Government" (मैक्सिको-गवर्नमेंट के प्रेसिडेन्ट के ख़ास एजेंट)। मैक्सिको का प्रेसिडेन्ट उन्हें कितना चाहता था, इसका पता इसी पासपोर्ट से चलता है।

जर्मनी से होकर मास्को—

बोरोडिन दो सप्ताह पहले मैक्सिको छोड़ चुके थे। राय और बोरोडिन का साथ साथ सफर करना ख़तरे से खाली नहीं था। अतएव राय अकेले ही, अपना नाम बदल कर यूरोप के लिये रवाना हुए। कहा जा चुका है कि असल ख़तरा 'हवाना' में था जहां अमेरिका की सरकार राय को गिरफ्तार कर ले सकती थी। जहाज आखिर 'हवाना' के बन्दर पर पहुंचा। वहां की परिस्थिति ऐसी थी कि राय के सम्बन्ध में भेद खुल जाने का बड़ा भय था। बन्दरगाह पर काम करने वाले सारे मजदूरों का हड़ताल जारी था। जहाज पर कोई कोयला वगैरह भी लादने वाला नहीं था। मजदूरों में जबरदस्त एकता थी। बन्दर वीरान-सा पड़ा था। मजदूरों के इस हड़ताल के कारण कोई भी जहाज वहां से खुल नहीं सकता था। बिना कोयला इत्यादि के खुलता कैसे? फलतः उस बन्दर पर हफ्तों से बहुत से जहाज रुके पड़े थे। उनका आगे बढ़ना असम्भव था। राय वाला जहाज भी

उस बन्दर पर रुक गया। यह भी पता नहीं कि वह कबतक रुका रहेगा।

बन्दर पर अमेरिका-सरकार के गुप्तचर चारों ओर तैनात थे। जहाज के ज्यादा दिन रुकने से निसन्देह इस भेद के खुल जाने की सम्भावना थी कि श्री एम. एन. राय. उसी जहाज में मौजूद हैं। यदि वे पहचान लिये जाते तो अमेरिका के जेलों में उन्हें बुरी तरह सड़ना पड़ता। वहां से फिर छुटकारा मिलना कठिन था।

स्थिति भयंकर थी। बिना हड़ताल के अन्त हुए जहाज आगे बढ़ नहीं सकता था। और, हड़ताल के निवटारे की जल्द कोई उम्मीद न थी। यह समस्या कैसे हल हो ?

इतने दिनों तक राय ने कुछ यों ही व्यर्थ में कम्यूनिस्ट पार्टी तथा मजदूर-आन्दोलनों में काम नहीं किया था। सारे लैटिन-अमेरिका में उनका प्रभाव था। वहां के मजदूर उनकी सेवाओं से परिचित थे और उन्हें इज्जत की निगाह से देखते थे। परिस्थिति भयानक देख कर राय ने हड़तालियों के मजदूर-नेता के पास चुप-चाप एक पत्र भेजा। अमेरिका-ट्रेड-यूनियन के वे नेता, जो उस ऐतिहासिक हड़ताल का संचालन कर रहे थे, राय की ख्याति से परिचित थे। आपस के पत्र-व्यवहार के कारण वे एक दूसरे को जानते भी थे। फिर क्या था ? मजदूर यूनियन ने तुरन्त ही बड़ी खुशी से इतने मजदूरों को काम पर जाने की इजाजत दे दी जिससे सिर्फ राय वाले जहाज की आवश्यकताएं पूरी हो जायं। मजदूरों के

हड़ताल-अस्त्र से मजदूर-क्रान्ति के नेता श्री राय को असुविधा हो—यह उन्हें मंजूर न था।

मजदूरों को जब यह पता चला कि कामरेड राय उस जहाज से सफर कर रहे हैं तो दूने उत्साह के साथ बात की बात में उनलोगों ने उस जहाज पर कोयला-पानी लाद दिया। दूसरे जहाज तो बन्दर पर रुके ही रहे। राय वाला जहाज कोयले इत्यादि के पूरा हो जाते ही वहां से चल पड़ा। राय की यह ताकत देख कर जहाज के अधिकारी तथा मुसाफिर बड़े अचम्भे में पड़े। उन लोगों को क्या पता उस जहाज से एक प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सफर कर रहा है। जहाज पर सनसनी तो बहुत रही किन्तु राय को कोई बड़ा आदमी समझ कर उनकी बुराई करने के सम्बन्ध में किसी ने सोचा भी नहीं।

जहाज स्पेन पहुंचा। बोरोडिन के मार्फत स्पेन के कामरेडों को यह मालूम हो चुका था कि राय वहां आने वाले हैं। वहां के सारे समाजवादी उनकी इन्तजार कर रहे थे। कामरेड राय मैडरिड पहुंचे और वहां प्रायः एक महीने तक ठहरे। अभी कुछ ही दिन पहले, वहां से गुजरते समय बोरोडिन ने स्पेन की कम्यूनिस्ट पार्टी की नींव डाली थी। उसे अच्छी तरह से संगठित करने लिये ही राय को वहां कुछ समय तक रुक जाना पड़ा। उन्होंने पार्टी का इतना अच्छा संगठन किया कि उसकी जड़ आज तक हिल न सकी। समय समय पर इस पार्टी ने वहां के बड़े बड़े जन-आन्दोलनों का नेतृत्व किया है। स्पेन की पार्टी यूरोप के कम्यूनिस्ट पार्टियों में बहुत ही उग्र और शक्तिशाली रही है।

स्पेन के इस अल्पकालीन-निवास में ही राय बहुत लोक-प्रिय हो गये थे। वहां के समाजवादी नेताओं से उनकी गाढ़ी मित्रता हो गई। उनके ये मित्र स्पेन के क्रान्तिकारी आन्दोलनों में सदा अगुआ रहे हैं। फ्रांको और फेसिज्म के विरुद्ध आज जो स्पेन की जनता प्राणपण से लड़ रही है, अपने हजारों सन्तानों का खून बहा कर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये जंग कर रही है, उसमें राय के अनेक मित्र काम आ रहे हैं। स्पेन-प्रजातन्त्र का प्रसिद्ध नेता Caballero (केवाल्लेरो), जो आज स्पेन के मुखिया समझे जाते हैं, राय के अन्तरंग मित्र हैं।

करीब एक महीने के बाद राय जर्मनी के लिये रवाना हुए। बोरोडिन वहां उनके लिये इन्तजार में बैठे थे। वे स्वीटजरलैण्ड होकर जर्मनी पहुंचे और बोरोडिन के साथ कुछ दिनों तक बर्लिन में रहे।

जर्मनी में उन दिनों राजनैतिक भूकम्प का खौफनाक दृश्य मौजूद था। महायुद्ध के अन्त होने के साथ ही जर्मनी में क्रान्तिकारी उथल-पुथल मच गया था। शाहंशाही की चिता जला दी गई थी। उसकी खाक पर प्रजातन्त्र की स्थापना हो रही थी और इस नये प्रजातन्त्र के विरुद्ध भी क्रान्ति-विरोधी साजिशें चल रही थीं। Counter Revolution (क्रान्ति-विरोधी प्रतिक्रिया) का खौफ था।

किस्सा संक्षेप में यों है कि महायुद्ध के अन्तिम दिनों में जर्मनी में भीषण असन्तोष और बेचैनी फैल गई थी। जनता और फौज,

दोनों इस साम्राज्यवादी युद्ध से हैरान हो चुके थे। परिस्थिति इतनी बुरी हो गई थी कि जब जर्मनों की ओर से महायुद्ध में अन्तिम प्रयत्न हुआ तो खुद उसके जहाजी-फौज के सिपाहियों ने बगावत कर दी। महायुद्ध में जर्मनी की बहुत गहरी हार हुई और गर्वोन्नत कैसर को, जो विश्व-साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था, गद्दी छोड़ कर हालैण्ड भाग जाना पड़ा।

परन्तु जर्मनी में क्रान्ति आरम्भ हो चुकी थी। महायुद्ध के कारण जनता की दर्दनाक दुर्दशा होगई थी। गरीबी इतनी फैल गई थी कि मुश्किलों से लोगों को एक शाम भोजन प्राप्त होता था। जनता असीम दुःख और खौफनाक फाक़ाकशी में मुबतिला थी। पूंजीपतियों, बैंकरों और साम्राज्यवादियों के हितों के लिये वहां के गरीबों ने महायुद्ध में भाग लिया था और अपनी जानें गवाई थीं। आखिर मजदूरों को महायुद्ध से कौन सा फायदा था? युद्ध की सामग्रियां तैयार करने के लिये, नाम-मात्र की मजदूरी पर उन्हें दिन-रात खटना पड़ा था। महायुद्ध के लिये उनलोगों ने गरीबी मोल ली थी। राष्ट्र के नाम पर पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों ने इन गरीबों और मजदूरों को महायुद्ध में झोंक दिया था, जहां उन्हें दूसरे देशों के मजदूरों तथा गरीब भाइयों से लड़ना पड़ा जिनसे उनकी कुछ भी दुश्मनी न थी। महायुद्ध तो बड़े बड़े पूंजीपतियों, बैंकरों और साम्राज्यवादियों के फायदे की वस्तु थी। मजदूरों ने उनके लिये कुरबानियां की लेकिन उससे उनका कुछ फायदा नहीं हुआ। तकलीफ उन्होंने ने झेला। फायदा वहां के अमीर उठा रहे थे।

ऐसी हालत देखकर मजदूरों ने क्रान्तिकारी आन्दोलन द्वारा वहां की गवर्नमेंट को अपने हाथों में कर लेना चाहा। उन्हीं दिनों रूस में मजदूरों का सोवियट—राज्य कायम हो चुका था। वहां के नृशंस और जालिम शासक तथा शोषक वर्गों का अन्त हो चुका था। रूस का यह ताजा उदाहरण जर्मन-मजदूरों के सामने था। उन लोगों ने भी अपने यहां मजदूर राज्य कायम करना चाहा। १९१८ के अक्टूबर से ही उसकी तैयारियों में वे लगे थे। क्रान्ति के पक्ष में परिस्थिति बहुत अच्छी थी। जनता संगठित और जोश से भरी थी। युद्ध से लौटे हुए सैनिक भी क्रान्ति के झण्डे के नीचे जमा हो रहे थे। पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों का कोई सहायक नहीं बच गया था। वे कमजोर और लाचार हो गये थे।

जनता की स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र की स्थापना के लिये सिर्फ कैसर का भाग जाना ही प्रयाप्त नहीं था। वहां के पूंजीपतियों तथा शोषक वर्ग को उनके गैरवाजिब राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित कर देना आवश्यक था। इसके लिये एक सच्चे क्रान्तिकारी पार्टी (कम्यूनिस्ट पार्टी) की जरूरत थी जो उस विशाल इनक़लाबी तहरीक का नेतृत्व अपने हाथ में ले। एबर्ट (Ebert) शेडेमन (Schiedamann), काट्सकी (Kautsky) वा बर्न्सटीन (Bernstien) की रहनुमाई में सोशल-डेमोक्रैटिक पार्टी इस कार्य्य के लिये उपयुक्त न थी। वे लोग आगे बढ़ने से आन्दोलन को रोकते थे। सोशल-डेमोक्रैटिक पार्टी के वे तथाकथित समाज-वादी जिनके हाथों में हुकूमत आ चुकी थी, उन क्रान्तिकारी परिवर्तनों

का खुल्लम-खुल्ला विरोध कर रहे थे जिससे जनता की गिरी हालतों का सुधार हो सकता था और उन्हें सच्ची स्वतंत्रता हासिल हो सकती थी। उनलोगों ने अपनी पार्टी के बांये-पक्ष (Left-wing) के नेताओं की स्वतंत्रता पर भी रोक लगा दी थी जिसमें वे जनता की क्रान्तिकारी मांगों की आवाजें बुलन्द न कर सकें।

ऐसी परिस्थिति में Spartakus Bund (स्पार्टेकस बन्ड)* और सोशल-डेमोक्रैटिक पार्टी का आपस में ३० दिसम्बर १९१८ को खुलेआम सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। स्पार्टेकस-बन्ड जर्मनी के कम्यूनिस्टों की संस्था थी। वे बाम-पक्षी डेमोक्रैटों से मिल कर जर्मनी में क्रान्तिवादी सरकार कायम करना चाहते थे। इसके लिये क्रान्ति की आवश्यकता थी जिसकी वे तैयारी कर रहे थे। ६ जनवरी, १९१९ के दिन लाखों की संख्या में जर्मन मजदूर बर्लिन की सड़कों पर निकल आये। डेमोक्रैटों द्वारा संस्थापित गवर्नमेंट

---

* "स्पार्टेकस बन्ड" जर्मनी की एक उग्रवादी संस्था थी जिसका प्रोग्राम डेमोक्रैटिक पार्टी के बायें पक्ष से मिलता-जुलता था। इस पार्टी के संस्थापक श्री कार्ल लेब्कनिथ (Liebknieth) तथा श्रीमती रोज़ा लक्समबर्ग (Rosa Luxumburg) थे। यही पार्टी आगे चल कर 'जर्मनी की कम्यूनिस्ट पार्टी' बन गई। क्रान्ति के दिनों में इसी पार्टी ने आगे बढ़ने की हिम्मत दिखलाई थी। अभाग्यवश इसके नेता लेब्कनिथ तथा रोज़ा लक्समबर्ग अपने क्रान्ति-विरोधी दुश्मनों के हाथों उन्हीं दिनों मार डाले गये। कहते हैं कि इन नेताओं की मृत्यु जर्मनी मजदूर-क्रान्ति की असफलता का एक कारण थी।

भय से भाग गई। क्रान्तिकारियों की विजय थी। किन्तु ऐसे समय में संगठन और योग्य नेतृत्व की आवश्यकता थी जिसके बिना दुश्मनों को हरा कर भी क्रान्ति ज्यादा दिन तक ठहर नहीं सकती थी। जर्मनी में यही हुआ। राजतन्त्र का अन्त तो हुआ किन्तु 'मजदूरों का राज्य' कायम न हो सका। Weimar National Assembly (जर्मन-प्रजातन्त्र की सभा) द्वारा मंजूर विधान की नींव पर अन्य युरोपीय प्रजातन्त्रों की भांति एक प्रजातन्त्र कायम हुआ। हिटलरशाही के पहले तक यही विधान वहां लागू था।

इस नये प्रजातन्त्र का बागडोर वहां के सोशल-डेमोक्रैटों के हाथ में था। राय जब बर्लिन पहुंचे तो वहां दूसरा ही दृश्य मौजूद था। एक दिन जब प्रातःकाल उनकी नीन्द बिगुल और ड्रम की आवाजों से खुली तो उन्होंने अपने होटल की खिड़की के बाहर भयानक नज़ारा देखा। वह military counter-revolution (क्रान्ति-विरोधी सैनिक प्रतिक्रिया) का दृश्य था। शहर के भीतर वहुत बड़ी सेना घुस आई थी। नव-स्थापित प्रजातन्त्र सरकार उसका बिना किसी प्रकार का मुकाबला किये भाग गई। शहर पर क्रान्ति-विरोधी सैनिकों का अधिकार हो गया। बर्लिन की सड़कों पर मानों Counter Revolution का विजय-नृत्य जारी था। स्थिति बड़ी शोचनीय थी।

प्रजातन्त्र-सरकार के भाग जाने पर वहां के मजदूरों ने क्रान्ति-विरोधी शक्तियों की चुनौती कबूल की। 'स्पार्टेकस बन्ड',

ने सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी के बांये पक्ष से मिल कर सारे जर्मनी में आम-हड़ताल का एलान किया। सात दिन तक बर्लिन का विशाल नगर मृत-प्राय: मालूम होता था। सारे कारबार बन्द थे। मेशीनों की चक्कियां बन्द थीं। चिमनियों में धूएं नज़र नहीं आते थे। होटलें वीरान पड़ी थीं। बिजली और पानी भी बन्द था।

वैसा हड़ताल यूरोप में आजतक नज़र नहीं आया था। मजदूरों की उस ताक़त के सामने किसी भी शत्रु का टिकना बिल्कुल असम्भव था। हड़ताल के उन दिनों में भी जब जर्मनी के सारे होटल बन्द थे राय के लिये सारी सुविधायें प्राप्त थीं। हड़ताल के एक दिन पहले उस होटल का खानसामा उनके सम्मुख हाजिर हुआ और बड़े जोश से बोला—"कामरेड, कल से हमलोगों की स्वतंत्रता की लड़ाई आरम्भ है। हम ऐसी स्वतंत्रता चाहते हैं जहां हम पूंजी-वाद और साम्राज्यवाद से सर्वथा आजाद हो जायें। कल से कोई मजदूर काम न करेगा। होटलें भी बन्द रहेंगी। आपके लिये, किन्तु, सब चीज़ इकट्ठी कर दी गई है जिससे महीनों तक कोई कमी न होगी। आप तो हमलोगों के कामरेड हैं न।"—उस जर्मन मजदूर के भाईचारे को देखकर राय भी चकित हो गये थे।

हड़ताल के उन्हीं डावांडोल दिनों में बोरोडिन के ज़रिये जर्मनी के कम्यूनिस्ट और मजदूर नेताओं से राय का परिचय हुआ। राय ने मैक्सिको की कम्यूनिस्ट पार्टी तथा हिन्दोस्तान की शोषित और पराधीन जनता की ओर से

जर्मन क्रान्ति की सफलता के लिये सदिच्छायें तथा हार्दिक वधाइयां प्रकट की। जर्मनी के इन कम्यूनिस्ट नेताओं से राय की गाढ़ी मित्रता हो गई जिससे आगे चल कर उनका जर्मनी के मजदूर-आन्दोलन से बहुत निकट सम्बन्ध हो गया। राय के ये नये साथी 'हेनरिच ब्रान्डलर' (Hienrich Brandler), "डा. अगस्ट थैल्हमर" (Dr. August Thalheirmer),थैल्मन (Thalman) थे जो आज जर्मनी के बहुत बड़े कम्यूनिस्ट नेता हैं। अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट तथा मजदूर आन्दोलनों में वे सदा राय के साथ रहे हैं। १९२८ में भी राय ने इन्हीं साथियों के साथ 'कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल' की बाईं-वहक (Ultra-leftist swing) रोकने का प्रयत्न किया था।

जर्मनी के उन डांवाडोल हालतों में वहां के मजदूरों ने अपनी ताक़त का जो इज़हार किया था, वह अद्वितीय है। राय उस शक्तिशाली मजदूर आन्दोलन से बड़े प्रभावित हुए। कामगारों की क्रान्तिकारी ताकतों को उन्होंने अपनी आंखों देखा। अपने होटल के उसी खिड़की से कुछ ही दिनों के बाद उन्होंने देखा कि 'प्रशिया' की वह विशाल क्रान्ति-विरोधी सेना, जिसने आते ही अपना अधिकार जमा लिया था, बर्लिन से कूच कर रही है। उसका वहां ठहरना असम्भव होगया था। बिना एक भी गोली चलाये उस विशाल सेना पर मजदूरों की शानदार विजय !—यह एक विचित्र अनुभव था जो भुलाये भी नहीं भूला जा सकता। मजदूरों की असिमित क्रान्तिकारी ताकतों का यह ज्वलन्त

दृष्टान्त था। राय के हृदय में यह बात गड़ गई कि मानवता को इस घोर विषमता से, युद्धों की खून-खराबियों से, ज़ालिम शोषण-नीति से, मजदूर क्रान्ति ही बचा सकती है। समाज के और वर्गों में सब से आगे बढ़ने की हिम्मत और क्रान्तिकारी खूबियां मजदूरों में ही हैं।

जर्मनी में राय ज्यादा दिन नहीं ठहर सकते थे। उन्हें रूस पहुंचना था। वह अनुकूल मौके की ताक में बैठे थे। रूस की यह यात्रा भी विचित्र परिस्थिति में हुई थी। उस समय सोवियट-सरकार पर चारों ओर से आफत थी। ज़ार और किरेन्सी का तो अन्त हो चुका था किन्तु चारों ओर से साम्राज्यवादी भेड़िये उसे हड़प जाने पर लगे थे। सारा देश Blockaded* (ब्लाकेड) होगया था। उसके सारे पच्छिम सीमा पर क्रान्तिविरोधी सेना—ब्रिटिश, फ्रेंच, तथा अन्य साम्राज्यवादी फौजें—अधिकार जमा चुकी थी। इन डावांडोल हालतों में लेनिन बड़ी सावधानी से अपनी किश्ती से रहे थे। अपनी सारी ताकत, बुद्धि और क्रान्तिकारी योग्यता वहां की परिस्थिति संभालने में लगाये थे। बड़ी होशियारी से, उनके आदेशानुसार शीघ्र ही एक

---

* ब्लाकेड का अर्थ यह है कि किसी देश के सीमाओं पर पहरा बैठा कर उसके आमद-रफ्त को बिलकुल रोक दिया जाये। रूस में जब क्रान्तिवादी सरकार कायम हुई तो सारे साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने मिल कर उसके खिलाफ ब्लाकेड किया था। न कोई रूस में दाखिल हो सकता था और न बाहर ही निकल सकता था। उसकी सारी तिजारत बन्द थी। सोवियट-सरकार को उससे बड़ी हानि हुई थी। —लेखक।

सन्धि की गई जिससे सोवियट की ओर से Baltic States (बाल्टिक स्टेट) की आज़ादी कबूल कर ली गई। नतीजा बड़ा अच्छा हुआ। बाहरी दुनिया से रूस का फिर सम्बन्ध होगया। रूस में आने जाने का रास्ता खुल गया।

ऐसा होते ही, रूस जाने वाली पहली स्टीमर से राय रवाना हो-गये और १९२० के आरम्भ में रूस पहुंचे।

सोवियट-रूस में—

राय और लेनिन की यह पहली मुलाकात थी। दोनों एक दूसरे से मिलने को उत्सुक थे। जिस समय लेनिन ने राय की नौजवान सूरत देखी, उन्हें बड़ा आश्चर्य्य हुआ। तुरन्त ही मजाक में उन्होंने ऐसा मुंह बना लिया मानों राय की नौजवान उम्र पर वे नाराजगी ज़ाहिर कर रहे हों। फिर खिलखिलाते हुए बोले—"अरे, मैं तो यह समझे बैठा था कि राय कोई बूढ़ा आदमी होगा जिसके चेहरे पर लम्बी लम्बी सफेद दाढ़ी होगी।"* राय और लेनिन के इस परिचय ने गाढ़ी मित्रता का रूप धारण कर लिया जो लेनिन के मृत्यु तक सदा एक-सा बना रहा।

लेनिन मनुष्यों की असलियत पहचानने में बड़े उस्ताद थे। थोड़ी देर की बातों से लेनिन राय से बड़े प्रभावित हुए। उस सुदृढ़ और लम्बे हिन्दोस्तानी के अलौकिक क्रान्तिवादी गुणों पर वे मुग्ध-से हो

* "I had expected the man with a long grey beard from all I had heard of him (Roy)" —Lenin.

गये। वे उन पर इतना अधिक भरोसा करने लग गये कि बड़ी से बड़ी जिम्मेदारियों का कार्य्य उन पर अकेला ही छोड़ देते।

इस प्रकार राय उस विश्व-क्रान्ति के आचार्य्य और महान नेता कामरेड लेनिन के साथ कंधा मिला कर समाजवाद और सोवियट की सफलता के लिये अनवरत परिश्रम करते रहे।

यहां पर कुछ हिन्दोस्तानियों की हरकतों का वर्णन करना आवश्यक है जिन्होंने राय को नीचा दिखलाने की कोशिश की थी। ये हिन्दोस्तानी सज्जन बर्लिन में रहते थे। रूस के धन (Moscow gold) के सम्बन्ध में इन लोगों ने बहुत कुछ सुन रक्खा था। असल में उसी की लालच ने उन्हें रूस में खींच लाया था। उन्हें जब मालूम हुआ कि एम. एन. राय. रूस में आते ही एक ऊंचे पदाधिकारी बन गये, तो उन्हें बड़ी ईर्षा हुई। वे सोचने लगे कि राय की शिकायत फैला कर उन्हें रूस से निकलवा देना चाहिये और फिर "मास्को के धन" से मौज उड़ाना चाहिये। रूस में आते ही उन लोगों ने लेनिन से मुलाकात करनी चाही। लेनिन को इतनी फुर्सत न थी। उन्होंने उन अवसरवादी हिन्दोस्तानियों को "बुखारिन" से मिलने का आदेश किया। किन्तु बुखारिन से मिलकर ये हिन्दोस्तानी क्रान्तिकारी सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने बार बार लेनिन से ही मिलने का आग्रह किया। लेनिन के सन्मुख इन लोगों ने दो मांगे पेश की—

(१) हिन्दोस्तान में क्रान्ति-आन्दोलन की आवश्यकता है। इसके प्रचार के लिये हमलोग बर्लिन से एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करना

चाहते हैं। आप हम लोगों के इस कार्य्य के लिये १० लाख डालर से सहायता करें।

(२) हिन्दोस्तान के क्रान्तिवादियों का प्रतिनिधित्व एम. एन. राय. नहीं कर सकते। सच्चे प्रतिनिधि हम लोग हैं। इस विषय की जांच हो।

लेनिन खुद धूर्त थे। इन लोगों की चालाकी वह तुरन्त ही समझ गये। पहली मांग के बारे में उन्होंने कहा कि वे हर प्रकार से हिन्दोस्तान की क्रान्ति सफल बनाने के पक्ष में हैं किन्तु रूस के पास उतने रुपये नहीं हैं। इसके अलावा रूस के चारों ओर इतनी कठिनाइयां हैं कि दूसरे मुल्कों के लिये फिलहाल वे किसी प्रकार रुपये खर्च नहीं कर सकते। लेनिन ने उन लोगों से कहा "किसी देश की आजादी रुपयों के बदौलत नहीं हुआ करती। असल कार्य्य है जन-आन्दोलन का शक्तिशाली संगठन। यदि आप चाहते हैं कि रूस में कुछ समय तक रह कर यहां के क्रान्ति-आन्दोलन का अध्ययन करें और उसके बाद हिन्दोस्तान जाकर उसका प्रचार करें तो निश्चय ही मैं आप लोगों के लिये सारी सुविधाओं का प्रबन्ध करवा दे सकता हूं।"

उन लोगों की दूसरी मांग का कारण था राय से द्वेष। लेनिन इन बातों को समझ गये थे। उन्होंने बड़े रोष से कहा कि "राय के प्रतिनिधित्व के विषय में कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता। उनके विषय में मुझे बिलकुल यकीन है कि हिन्दोस्तान का ही नहीं, सारे औपनिवेशिक देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों का वह प्रतिनिधित्व कर सकते हैं। अमेरिका और मैक्सिको में जो उन्होंने की है, वह उसका

ज्वलन्त उदाहरण है।" लेनिन के विचारों को बदल देना आसान न था। राय को वह क्रान्ति की चिनगारी समझते थे और उनके गुणों से वह परिचित हो चुके थे। इन लोगों की दाल वहां गल न सकी।

लेनिन के आदेश से उन हिन्दोस्तानियों के लिये ठहरने की सारी सुविधायें वहां के Foriegn Commissar (वैदेशिक-कम्मिस्सार) की ओर से कर दी गई। यह उम्मीद थी कि वे रूसी-क्रान्ति का अध्ययन करेंगे और हिन्दोस्तान जाकर उसका प्रचार भी करेंगे। ये उम्मीदें गलत निकलीं। वे तो धन की लालच में वहां गये थे। वहां वे अब कैसे ठहर सकते थे। रूस की हालत भी उनदिनों डांवाडोल थी। ट्राट्सकी के नेतृत्व में लाल-सेना अपने दुश्मनों से भीषण-युद्ध कर रही थी। इस विकट परिस्थिति में रहना इन कायर-हिन्दोस्तानियों को पसन्द न था। बर्लिन में ही वह लौट जाना चाहते थे। लेनिन को जब यह मालूम हुआ तो उन्होंने तुरन्त ही उनलोगों को रूस से बाहर निकलवा दिया।

राय के रूस पहुंचने के पहले ही वहां लाल-क्रान्ति की विजय हो चुकी थी। जनता ने अपने हाथों में हुकूमत ले लिया था। समाज के नव-निर्माण के लिये जिन क्रान्तिकारी-परिवर्तनों की आवश्यकता थी, जिन आदर्शों के लिये कार्ल-मार्क्स ने सालों से प्रचार किया था, उन्हीं समाजवादी वसूलों के बुनियाद पर समाज का निर्माण करने का प्रयत्न जारी था।

रूस की इस क्रान्ति ने संसार के शोषित वर्गों तथा पराधीन देशों में हिम्मत का संचार किया है। शोषक और शासक वर्गों के लिये

यह भय की वस्तु रही है। उसने संसार के सामने एक नया सन्देश रक्खा है। इस क्रान्ति के सम्बन्ध में तफसील में यहां नहीं लिखी जा सकती।

१९०५ के क्रान्तिकारी उथल पुथल के फलस्वरूप रूस में ड्यूमा बनाया गया था। ड्यूमा के विधाता और मालिक थे खुद ज़ार-निकोलस (२) ड्यूमा एक उसी प्रकार की रद्दी और नपुंसक संस्था थी जैसी आज ब्रिटिश सरकार की ओर से हिन्दोस्तान में प्रान्तीय तथा केन्द्रीय असेम्बली है। कुछ सालों के बाद नई नई ताकतें देश के राजनैतिक मंच पर उपस्थित होने लगीं। ज़ार के विरुद्ध जनता में बहुत असन्तोष था। १९१७ के मार्च महीने में ज़ार का अन्त हुआ। प्रजातन्त्रवादियों ने किरेन्सकी के सभापतित्व में अपनी गवर्नमेंट कायम की। यह सरकार भी जनता की मांगे पूरी न कर सकी। क्रान्तिकारी परिवर्तनों से वह खौफ खाती थी। फलतः किरेन्सकी की अल्पकालिक-सरकार (Provisional Govt.) ज्यादा दिन ठहर न सकी। नवम्बर के महीने में बोलशेविकों के नेतृत्व में दूसरी क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति में किसान और फौजों ने मजदूरों का पूरा साथ दिया। किरेन्सकी-सरकार का अन्त हुआ। हुकूमत की मेशीन बोलशेविकों के हाथ में आई। सोवियट-सरकार की स्थापना हुई। मजदूर-श्रेणी की यह अभूतपूर्व विजय थी।

सोवियट सरकार का संगठन अन्य सरकारों से भिन्न है। दूसरे देशों में आज प्रजातन्त्र का बोलबाला है। रूस में 'मजदूरों

की डिक्टेटरी' (Dictatorship of the Proletariat)* कायम हुई। प्रजातन्त्रवाद के समर्थकों ने इस नव स्थापित 'डिक्टेटर-शिप' की कड़ी आलोचना की। किन्तु हकीकत तो यह है कि रूस की डिक्टेटरी इङ्गलैण्ड, फ्रांस इत्यादि देशों के कथित प्रजा-तन्त्रों से अधिक क्रान्तिकारी और जनता के लिये लाभदायक है। वहां प्रजातन्त्र की ओट में पूंजीपतियों की डिक्टेटरी नहीं है प्रजातन्त्रवाद की ओट में शासन करनेवाले शोषक वर्ग को नपुंसक बनाने के लिये एक नये शासन-प्रणाली की आवश्यकता थी जो रूस में 'मजदूर-डिक्टेटरशिप' के रूप में आई।

असलियत तो यह है कि रूस का मजदूर-राज (डिक्टेटरी) उन तथाकथित प्रजातन्त्रों से कहीं अधिक प्रजातन्त्रवादी है। वहां की जनता को आर्थिक, राजनैतिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता अधिक है। वे उत्तरोत्तर सच्ची स्वतंत्रता (समाजवाद) की ओर बढ़ रहे हैं। वहां की डिक्टेटरी तो एक अल्पकालिक वस्तु (Transitional Stage) है। वह समाजवाद के लिये एक आवश्यक सीढ़ी है।

---

* क्रान्ति के पश्चात रूस में मजदूरों का 'डिक्टेटर-शिप' कायम हुआ। इसका अर्थ यह है कि मजदूरों की संस्था कम्यूनिस्ट पार्टी के हाथों में शासन था। उसके अनुसार मजदूरों और शोषित वर्ग को आरम्भ में अधिक राजनैतिक अधिकार प्राप्त था। 'कुलैक' वा अन्य शोषक वर्गों को मताधिकार भी प्राप्त न था। लेनिन के अनुसार समाजवाद की स्थापना के पहले इसकी नेहायत जरूरत थी।

मजदूर-राज आज रूस में उस श्रेणी-रहित समाज का निर्माण कर रहा है, जिसे समाजवाद कहते हैं। रूस का नया विधान उसकी सफलता का ज्वलन्त प्रमाण है।

रूस ने सिर्फ शोषित वर्गों का राज्य कायम नहीं किया। उसने यह एलान किया कि किसी एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर अधिकार गैरवाजिब है। उसने शोषित वर्गों तथा उपनिवेशों के स्वाधीनता-आन्दोलनों से सहानुभूति प्रकट की और उसके आजाद रहने का हक़ कबूल किया। रूस के इस क्रान्तिवादी-सन्देश से यूरोप, अमेरिका और एशिया के इनक़लाबी तहरीकों में जोश आया। जनता ने पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। पूंजीवादी तथा साम्राज्यवादी शक्तियां सतर्क हो गई थीं। हर देश के आन्दोलनों को कुचलने पर ये शक्तियां आमादा थीं। रूस को भी हड़प जाने के लिये साम्राज्यवादियों का संगठित मोर्चा कायम हो रहा था। ऐसी परिस्थिति में शोषित वर्गों के अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी रास्ते पर ले चलने के लिये एक संस्था की आवश्यकता थी। लेनिन प्रभृति बड़े बड़े कम्यूनिस्ट नेताओं की राय से 'थर्ड-इन्टरनैशनल* कायम हुआ जिसे लोग आज 'कोमिन-टार्न' भी कहते है। ऐसी क्रान्तिवादी संस्था का स्थान रूस छुड़ा कर और हो कहां सकता था। कोमिनटार्न के ज़रिये शोषित वर्गों तथा एशिया के पराधीन देशों की आजादी और उनके क्रान्तिकारी आन्दोलनों को बड़ा उत्साह मिला। फलतः साम्राज्यवादी शक्तियां

---

* थर्ड-इन्टरनेशनल : देखो पेज ६२

सोवियट सरकार की दुश्मन बनी हुई थी। रूस के इस नवस्थापित क्रान्तिकारी-सरकार का अन्त कर देने के लिये उसके सीमाओं पर साम्राज्यवादी फौजें तैयार थीं। दूसरी ओर संसार भर की साम्राज्य-विरोधी शक्तियां रूस की ओर आशा और हिम्मत से देख रही थीं और 'कोमिनटार्न' के झण्डे के नीचे संगठित होना चाहती थीं। राय उन्हीं कश्मकश के दिनों रूस पहुंचे।

वहां आते ही उन्होंने अपनी सेवाएं सोवियट रूस के क्रान्तिकारी कार्य्यों में अर्पण किया। वे कोमिनटार्न का वैज्ञानिक रूप से संगठन करने के कामों में लग गये। राय कोमिनटार्न के संस्थापकों में गिने जाते हैं और सचमुच इस अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तिकारी संस्था के लिये उन्होंने जो प्रशंसनीय कार्य्य किये हैं उसका पता लेनिन के लेखों तथा इन्टरनैशनल के कागजातों से चलता है। उन्होंने वहां जो कुछ किया है वह ऐतिहासिक प्रशंसा की वस्तु है। हिन्दोस्तान में ही नहीं, संसार के इतिहास में ऐसा एक भी दूसरा उदाहरण नहीं मिलता कि किसी एक गुलाम देश का आदमी गैर-मुल्क में जाकर अपनी क्रान्तिकारी योग्यता के बल पर ऊंचा स्थान प्राप्त करता है, वहां की जनता का विश्वास-पात्र बनता है तथा वहां की क्रान्ति का नेतृत्व करता है।

उन दिनों रूस में Second World Congress (कोमिनटार्न की दूसरी विश्व-सभा) की तैयारियां हो रही थीं। अधिवेशन जल्द ही होनेवाला था जिसमें संसार के सब देशों के प्रतिनिधि शामिल होनेवाले थे। एशिया के उन पराधीन देशों—चीन, हिन्दो-

स्तान, अरब, मिश्र—से भी बहुत से प्रतिनिधि आने वाले थे। इस अधिवेशन के लिये लेनिन ने खास तरह से राष्ट्रीय आन्दोलनों तथा उपनिवेशों की समस्याओं पर एक महत्वपूर्ण थेसिस * तैयार किया था। थेसिस का सम्बन्ध एशिया के गुलाम मुल्कों से था जो आज विदेशी साम्राज्यवाद के पंजे में कराह रहे हैं। अधिवेशन के पहले ही लेनिन ने राय का मत जानने के लिये अपनी थेसिस उन्हें दी। राय ने उसे गौर से पढ़ा किन्तु वे उसके कई हिस्सों से सहमत नहीं हो सके। फलतः राय ने उन्हीं प्रश्नों पर अपनी एक अलग थेसिस लिखी।

अधिवेशन के मौके पर जहां यूरोप, अमेरिका और एशिया के बड़े बड़े विद्वान डेलिगेट मौजूद थे, एम. एन. राय और विश्व-क्रान्ति के आचार्य्य लेनिन के अलग अलग थेसिस पेश हुए। विदेशों से आये हुए प्रतिनिधि उस नवयुवक हिन्दोस्तानी के साहस पर हैरान थे। "इस नौजवान का, आधुनिक संसार के सबसे महान नेता लेनिन, से लोहा लेना! और, उन के मुकाबले अपनी थेसिस पेश करना!"—कोई इसे सोच भी न सकता था। राय की हिम्मत ने सबों को आश्चर्य्य में डाल दिया। सबों की आखें राय और लेनिन के बीच उगे हुये मतभेदों पर थीं। अधिवेशन में एक विचित्र सनसनी पैदा हो गई थी। बहस के सिलसिले में खुद लेनिन ने राय की अटूट तर्कों को कबूल किया था। पश्चात लेनिन की सलाह से

* Lenin's thesis on National and colonial questions (II world congress, third International)

दोनों ही थेसिसों को स्वीकार किया गया। फैसला यह हुआ कि 'चन्द वर्षों के अनुभव के बाद यह खुद ही पता चल जायेगा कि कौन-सा थेसिस ठीक है। फलतः उसका निर्णय भविष्य के लिये मुल्तवी कर दिया जाय'।

राय ने अपनी थेसिस को "India in Transition" नामक पुस्तक में बड़े सुन्दर ढंग से विस्तार किया है। यह प्रसिद्ध पुस्तक १६२२ में जेनेवा से प्रकाशित हुई थी। यूरोप के बड़े बड़े क्रान्तिकारी लेखक इसे अपने ढंग की पहली पुस्तक मानते हैं। इसी पुस्तक के ज़रिये हिन्दोस्तान और एशिया का सच्चा-स्वरूप तथा वहां के सामाजिक-संगठन का वैज्ञानिक-विश्लेषण विदेशियों के सम्मुख पहली बार आ सका। इस किताब की प्रशंसा संसार के बड़े बड़े विद्वानों ने की है। यूरोप के एक प्रसिद्ध दार्शनिक तथा समाजवादी ने इस के विषय में यों लिखा है—

"मार्क्सवादी नुक्ते-नजर से लिखी गई यह पहली पुस्तक थी और अब भी मानी जाती है जिसने एशियाई देशों के इतिहासों तथा ख़ास कर हिन्दोस्तान के सामाजिक-संगठन का सर्व-प्रथम वैज्ञानिक-विश्लेषण किया है।"*

ब्रिटिश सरकार ऐसी पुस्तक को हिन्दोस्तान में आने की इजाज़त कैसे देती? उस पर यहां ख़ास प्रतिबन्ध था। फिर भी उसकी

* "This book was recognised and is still recognised as the first effort of interpreting the history of an Asiatic Country from the Marxist point of view and the first analysis of the social-structure of India."—Dr. Fusch.

बहुत-सी प्रतियां हिन्दोस्तान में लाई जा सकीं। हिन्दोस्तान के कम्यूनिस्ट-आन्दोलन की नींव स्थापित करने में इस पुस्तक से सब से बड़ी सहायता मिली। हिन्दोस्तान के इतिहास को अबतक लोग दूसरे ढंग से अध्ययन करते थे। राय ने एक नया दृष्टी-कोण पेश किया जिससे यहां के बड़े बड़े नेताओं के विचारों में अन्तर आने लग गया। पुस्तक हिन्दोस्तान के कम्यूनिस्ट पार्टी की बुनियाद साबित हुई।

विदेशों में इस पुस्तक की मांग इतनी बढ़ी कि यूरोप के अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ। सुदूर पूर्व में भी इस किताब का प्रचार चीन तथा जापानी भाषाओं द्वारा हुआ। जर्मनी भाषा में तो सिर्फ एक साल के अन्दर इसके तीन तीन संस्करण हुए जिसमें ३०००० प्रतियां छपीं। वहां के कामगारों ने भी इस पुस्तक को बड़े चाव से पढ़ा।

राय के इस थेसिस का सारांश-मात्र भी यहां लिखना सर्वथा असम्भव है। वह अलग ही पुस्तक के रूप में पढ़ने की चीज़ है। हां, हिन्दोस्तान के सम्बन्ध में तथा कई अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर जो राय से लेनिन का मतभेद हुआ था, उसमें यह बात मार्के की है। लेनिन का कहना था कि "औपनिवेशिक देशों में, कई कारणों से अभी तक Bourgeois Democratic Revolution (राष्ट्रीय-डैमोक्रैटिक-क्रान्ति)* नहीं हो सका है। ये क्रान्ति

* Bourgeois Democratic Revolution (राष्ट्रीय डैमोक्रैटिक क्रान्ति): मेशीन-युग के पहले समाज में सामन्तशाही (feudalism)

हर देश के विकाश के लिये ऐतिहासिक आवश्यकता है और उसके लिये Bourgeois (पूंजीपति) एक क्रान्तिकारी ताक़त है। अतएव हिन्दोस्तान में जहां यह क्रान्ति होना अभी बाकी है, महात्मा गांधी, सी. आर. दास तथा उनकी स्वाराज-पार्टी की रहनुमाई क्रान्तिकारी है। उनकी हर प्रकार से सहायता देनी चाहिये। क्रान्ति का नेतृत्व वे ही करेंगे।"

राय ने लेनिन के इस सिद्धान्त का जोरदार खण्डन किया था। उन्होंने कहा कि उन देशों में सचमुच Bourgeois Democratic Revolution का होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना इसके वह समाजवाद की ओर नहीं बढ़ सकता। किन्तु यह क्रान्ति आज की परिस्थिति में कुछ भिन्न होगी। इसका नेतृत्व Bourgeois (बाबू-वर्ग वा पूंजीपति) आज औपनिवेशिक देशों में नहीं कर सकता। क्योंकि यह वर्ग साम्राज्यवादी युग में कत्तई क्रान्तिकारी न रह गया। आज विदेशी साम्राज्यवाद के लूट और शोषण में यह वर्ग एक छोटा साझीदार (Junior partner) है। फलतः हिन्दोस्तान के इस क्रान्ति का नेतृत्व उन शोषित वर्गों— किसान, मजदूर, निम्न मध्यम-श्रेणी, टुट-पुंजिये तिजारती वगैरह—

थी। यह समाज के विकाश में बाधक थी। पूंजीपतियों के नेतृत्व में उस संस्था का अन्त किया जा सका। जनता ने उस सामन्तशाही के खिलाफ क्रान्ति में, जिसे Bourgeois Democratic Revolution कहते हैं, बाबू-वर्ग का साथ दिया था क्योंकि इससे उसकी स्वतंत्रता का भी सवाल हल होता था।

के हाथों में रहेगा जिनका स्वार्थ साम्राज्यवाद का अन्त करना है। वैसा क्रान्ति-आन्दोलन महात्मा गांधी के सिद्धान्तों पर आगे नहीं बढ़ सकता।"

कुछ ही सालों के बाद १९२४ में, कम्यूनिस्ट इण्टरनैशनल की पांचवी विश्व-सभा (Fifth World Congress of C. I.) के अधिवेशन ने एम. एन. राय की थेसिस ही कबूल की। लेनिन के आदेशानुसार कुछ वर्षों के अनुभव ने राय के मत को ही ठीक बतलाया। उस समय से कोमिनटार्न के बड़े बड़े नेता राय की इल्मी ताकत का लोहा मानने लगे। उनकी ख्याति चारों ओर चमक उठी। वह लेनिन, ट्राट्सकी, बुखारिन, स्टालिन प्रभृति नेताओं की कोटि में गिने जाने लगे।

रूस में राय ने और कौन कौन से कार्य्य किये, इस विषय पर लिखना इस पुस्तक का ध्येय नहीं है। उसके लिये तो एक अलग ही मोटी पुस्तक बन सकती है। सिर्फ यहां इतना ही कह देना प्रयाप्त होगा कि अपने रूसी बोलशेविक साथियों के संग वे वहां के क्रान्ति-आन्दोलन में बेतरह मशगूल हो गये। "नव-स्थापित प्रजातन्त्र की रक्षा, समाज का क्रान्तिवादी पुनः-निर्माण, क्रान्ति-विरोधी ताक़तों का मुकाबला"—सोवियट सरकार के सम्मुख ये ही मुख्य प्रश्न थे। राय ने इन समस्याओं के हल करने में जो हाथ बंटाया है वह क़ाबिले-तारीफ है। इससे उनकी लोक-प्रियता वहां बहुत बढ़ गई। यहां तक कि वह मास्को-सोवियट के कार्य्य-कारिणी के सदस्य (Member of the Executive of the Moscow Soviet)

चुन लिये गये। कुछ ही दिनों के बाद वह रूस की लाल-सेना के एक विशेष रेजिमेन्ट के कमान्डर (Regimental Commander of the Red Army) नियुक्त हुए। सोवियट रूस में राय का कितना महत्व था, हम इसी से जान सकते हैं।

कम्यूनिस्ट इण्टरनैशनल के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है कि वे उसके एक संस्थापकों में माने जाते हैं। लेनिन, स्टालिन प्रभृति नेताओं के साथ कोमिनटार्न के मौलिक सिद्धान्तों, उसके प्रोग्राम तथा उसकी नीति बनाने में राय का प्रमुख हाथ रहा है। औपनिवेशिक देशों तथा खास कर हिन्दोस्तान के कम्यूनिस्टों के लिये जो एक खास नीति और प्रोग्राम तैयार हुआ था और जिसे कोमिनटार्न की दूसरी और चौथी विश्व-सभाओं ने कबूल किया था, राय ने ही तैयार किया था। हिन्दोस्तान के कम्यूनिस्टों को वहां के स्वाधीनता आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने के लिये कौन सा उपाय करना चाहिये, इसके ऊपर उन्होंने अच्छा प्रकाश डाला था। लेनिन उनसे बिलकुल सहमत थे। प्रायः नौ साल तक राय की नीति के अनुसार ही औपनिवेशिक (एशियाई) देशों का सारा आन्दोलन संचालित होता रहा।

मैक्सिको से रूस आते ही, जब उन्होंने १९२० की दूसरी विश्व-सभा में भाग लिया था, उनकी ख्याति बढ़ चली। उन्होंने सभा के कार्य्यों और बहसों में इतना प्रमुख हिस्सा लिया था कि उनकी प्रतिभा से सबलोग प्रभावित हो गये थे। वह उसी समय कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल की कार्य्यकारिणी तथा उसके प्रिसि-

डियम (सभापतियों की कमिटी) * के भी सदस्य चुने गये। कम्यूनिस्ट इण्टरनैशनल में यह सब से ऊँचा दरजा है। कुछ ही समय के पश्चात राय वहां के Polit Bureau (पोलिट ब्यूरो) के भी सदस्य चुन लिये गये। कहना नहीं होगा कि यह संस्था सोवियट-रूस की सबसे ऊँची संस्था थी जिसके सदस्य खुद लेनिन, ट्राट्सकी, बुखारिन तथा अन्य सोवियट नेता थे। इस प्रकार राय, लेनिन तथा अन्य नेताओं के साथ अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट तथा मजदूर आन्दोलन को संगठित तथा शक्तिशाली बनाने के लिये कोशिश करते रहे। उन्होंने कोमिनटार्न की पांच सभाओं में हिस्सा लिया। इन सभाओं के कार्य्यों में इनका प्रमुख हाथ रहता था। कम्यूनिस्ट पार्टी में उन्होंने एक विशेष स्थान प्राप्त किया।

उन्हीं दिनों वे कोमिनटार्न के पूर्वीय-विभाग (मिस्र, टर्की, अरब, फारस, हिन्दोस्तान, चीन, जापान) के प्रधान चुने गये। उन पराधीन मुल्कों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों को सुदृढ़ बनाने के लिये उन्होंने बड़ी कोशिश की। इसका फल भी अच्छा नज़र आने लगा था। कम्यूनिस्टों का जन-आन्दोलनों पर प्रभाव जमने लगा था। आज कम्यूनिस्ट आन्दोलन की हालत दूसरी होती अगर १९२८ में कोमिनटार्न की नीति बदली न जाती। एम. एन. राय नौ साल तक कम्यूनिस्ट इण्टरनैशनल के प्रमुख नेता रहे।

---

* Presidium—a panel of president, the highest executive of the Communist International.



कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के प्रसिद्ध नेता श्री एम. एन. राय मास्को में अन्तर्राष्ट्रीय किसान इन्स्टीट्यूट (International Agrarian Institute) के १९२६ वाले अधिवेशन में अपना भाषण दे रहे हैं। उनके बगल में जापानी कम्यूनिस्ट नेता सेन-कटयामा बैठे हैं।

रूसी-तुर्कीस्तान—

"कोमिनटार्न के दूसरे विश्व-सभा" के बाद ही १९२० में श्री एम. एन. राय कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल की ओर से नियुक्त, एक कमीशन के प्रधान बना कर मध्य एशिया (Central Asia) की ओर भेजे गये। कमीशन के अन्य सदस्यों में श्री बोरोडिन, कारखान तथा सफरौफ (Safarov) के नाम उल्लेखनीय है। राय के ऊपर ये गहरी जिम्मेदारी थी। मध्य-एशिया की हालत डांवाडोल थी। परिस्थिति बेकाबू हो रही थी। वहां क्रान्ति-विरोधी शक्तियों का जोर बंध रहा था। नव-स्थापित सोवियट प्रजातन्त्र पर भारी धक्का लगने की सम्भावना थी। लेनिन ने स्थिति की गंभीरता जान कर राय की अध्यक्षता में इस कमीशन को भेजा था।

मध्य-एशिया की यात्रा खतरे से खाली न थी। उधर क्रान्ति-विरोधी सेना ने मध्य एशिया तक पहुंचने का रास्ता (Line of Communication) भी काट डाला था। दूसरी ओर फारस (Persia) के तरफ से ब्रिटिश फौज चढ़ी आ रही थी जिसने Trans Caspian (ट्रान्स-

कैसपियन) रेलवे पर अपना अधिकार भी जमा लिया था। इसी कश्मकश के ज़माने में कठिनतम राजनैतिक-भूकम्पों के बीच एम. एन. राय ने Backward Colonial People (आधुनिक-सभ्यता से दूर औपनिवेशिक जनता) को क्रान्तिकारी आन्दोलनों की ओर अग्रसर करने की कोशिश की। उन आन्दोलनों में प्रमुख भाग लेकर जो उन्होंने नीजी-अनुभव प्राप्त किया, वह सचमुच अमूल्य है। इन औपनिवेशिक देशों के लिये, जहां आज भी सामन्त-शाही मौजूद है, "जमीन किसानों की"—की पुकार (Slogan of 'Land to the Peasants') में कितना जादू है, वहां की क्रान्ति की सफलता के लिये यह कितना महत्वपूर्ण और सारगर्भित है, इसका "अमली-मालूमात" राय को वहीं हासिल हुआ। सच तो यह है कि इसी 'पुकार' की बुनियाद पर वहां की क्रान्ति सफल बनाई जा सकी। हिन्दोस्तान, चीन इत्यादि देशों में भी इसी 'पुकार' की बुनियाद पर आज क्रान्ति-आन्दोलन खड़ा हो सकता है।

मध्य एशिया का प्रदेश (तुर्कीस्तान वगैरह) ज़ार के वृहत साम्राज्य का एक अङ्ग था। यहां की कौमें बिलकुल पिछड़ी हुई थीं। धार्मिक तथा सामाजिक अन्ध-विश्वासों का यह केन्द्र था। आधु-निक सभ्यता की रौशनी की एक किरण भी वहां तक नहीं पहुंच सकी थी। मस्जिद और कुरान के नाम पर ही वहां की सारी बातें होती थीं। शिक्षा का नामोंनिशान न था। साामाजिक रश्म-रिवाज तो ऐसे थे कि जिसके सुनने से आज भी रोमांच हो जाता है। पुरुष

बर्बर, नृशंस और ज़ाहिल थे। ऐसा मालूम होता था कि इस गहरे अन्ध-कूप से वे कभी निकल नहीं सकेंगे। स्त्रियां बुरके के अन्धकार में फंसी थीं। ज़ारशाही के पतन के बाद इस पिछड़े हुये राष्ट्र में भी राजनैतिक हलचल हुई।

असल बात यह थी कि नव-स्थापित सोवियट-सरकार को कमज़ोर समझ कर ब्रिटिश-सरकार तुर्कीस्तान, बुखारा वगैरह का सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लेना चाहती थी। उसके बड़े बड़े राजनीतिज्ञ वहां आ-जुटे थे। अफगान-सरकार की सहायता से ये अङ्गरेज, सोवियट-सरकार के विरुद्ध वहां की मुसलमान-जनता का मज़हबी-जज़बा उभाड़ रहे थे तथा उनकी धर्मान्धता से फायदा उठाना चाहते थे। उन लोगों की ओर से ऐसा प्रचार चल रहा था कि "सोवियट वाले इस्लाम के दुश्मन हैं। वे ला-मज़हब हैं और खुदा की हस्ती तक कबूल नहीं करते।" भोली मुसलमान जनता का सोवियट के विरुद्ध उभड़ने का विशेष कारण यही था। यही कारण था वहां के क्रान्ति-विरोधी आन्दोलनों का।

राय को इन्हीं भीषण परिस्थितिओं का सामना करना था। उस पिछड़ी हुई जाति में सोवियट की जड़ जमानी थी। उन साम्राज्यवादी शक्तियों का मुकाबला करना था जो सोवियट के उस हिस्से पर आक्रमण कर चुकी थी। उस बीहड़ अवस्था में राय ने किस होशियारी का परिचय दिया, उसने क्रान्ति-आन्दोलन का किस खूबी से संचालन किया, यह एक ऐतिहासिक प्रशंसा की बात है। राय ने ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों के मनसूबे चूर कर डाले। वहां भी सोवियट की स्थापना हुई।

सोवियट-सरकार की ओर से पहला काम वहां यह हुआ कि ज़ार के साम्राज्य के अन्तर्गत सारे एशियाई देशों को उसने पूरी आज़ादी (Complete autonomy) दे दी। ये देश, जिनका ज़ार के समय में तिल भर भी विकाश न हो सका था और जो पराधीनता की फौलादी जंजीरों में कसे थे, स्वाधीन करार कर दिये गये। सोवियट ने उनकी आज़ादी तो कबूल कर ही ली, साथ–साथ वहां भी सोवियट कायम की गई और यह एलान किया गया कि "वहां की ज़मीन किसान दखल कर लें। ज़मीन पर सच्चा अधिकार उन्हीं का है। नीति को अमल में लाने के लिये किसानों को बन्दूकें दी गई जिससे वह अपनी जमीन और आज़ादी की रक्षा कर सकें। मज़हब को छुआ तक न गया। बल्कि उसे इज्जत बख्शी गई। यहां तक कि आरम्भ में सोवियट तथा कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य भी मिटिंग छोड़कर, इमाम की आज्ञा पाते ही, मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने चले जाया करते थे। यह राय की ही सुन्दर और उदार नीति का फल था कि वहां क्रान्ति कामयाब हो सकी, सोवियट कायम हो सका और क्रान्ति-विरोधी शक्तियों की हार हुई। वहां के किसानों ने खुद अपने हाथों क्रान्ति-विरोधी शक्तियों का अन्त किया। वे सोवियट के अनन्य भक्त हो गये। इसका खास कारण यह था कि ज़मीन पर किसानों का अधिकार कबूल कर लिया गया। खुद लेनिन ने राय की सफलता पर उनकी नीति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

तुर्कीस्तान की मुस्लिम-जनता का विश्वास प्राप्त करने तथा उनके निकट-सम्पर्क में आने के लिये राय ने इस्लामी साहित्य का पूरा अध्ययन किया। उन्होंने फारसी भी सीखा। इस्लाम के बारे में उनका ज्ञान देख कर बड़े बड़े इमाम शर्मिन्दा हो जाते थे। दूसरा फायदा हुआ कि मुसलमानों के बीच फैले हुये प्रतिगामी ख्यालों और विश्वासों के विरुद्ध वह सफलता-पूर्वक लड़ सके। उन्होंने वहां की जनता को यह बतलाया कि इस्लाम का उद्देश्य किसी समाज, राष्ट्र अथवा संसार की स्वतंत्रता और उन्नति के विरुद्ध नहीं है। राय की सफलता की कुंजी यही थी। धीरे धीरे उन्होंने जनता के जज़बातों का आदर करते हुये, उसे विकाश के मार्ग पर लाया। वह बर्बर और पिछड़ा हुआ राष्ट्र क्रान्ति की रौशनी की ओर तेजी से बढ़ा। किसानों की हालत सुधर गई। सभ्यता की दौड़ में वे आगे बढ़ने की कोशिश करने लगे। इन सब कारणों से राय की लोक-प्रियता वहां फैल गई। जनता उन्हें इस प्रकार आदर करने लगी मानों वह वहीं के आदमी हों। यहां तक कि कुछ ही समय के बाद वे तुर्कीस्तान प्रजातन्त्र के आनरेरी-प्रेसिडेन्ट (Honorary President of the Turkestan Republic) चुन लिये गये। निस्सन्देह यह घटना प्रत्येक हिन्द-वासियों के लिये गौरव का विषय है।

इस प्रकार श्री एम. एन. राय करीब छः महीने तक मध्य एशिया के Revolution और Post revolutionary reconstruction (क्रान्ति-आन्दोलन और उसके पश्चात समाज का क्रान्ति-

वादी नव-निर्माण) के कार्य्यों में प्रमुख भाग लेते रहे। उन्हीं दिनों वे टर्की, फारस इत्यादि निकट-पूर्व के तमाम मुसलमानी राष्ट्रों के इनक़लाबी तहरीकों के घने सम्पर्क में आये। उन आन्दोलनों से उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी। उसे आगे बढ़ाने की उन्होंने यथायोग्य कोशिश की।

टर्की में उन दिनों भीषण क्रान्ति की ज्वाला धधक रही थी। महायुद्ध के बाद उस राष्ट्र का बटवारा-सा हो चुका था। ख़िलाफत का रुख़ भी असन्तोष-जनक था। वर्तमान टर्की-प्रजातन्त्र की प्रगतिशील सरकार के संस्थापक और उसके सर्वेसर्वा वीरवर मुस्तफा कमालपाशा उस समय अपने देश की आजादी तथा राष्ट्रीय क्रान्ति की सफलता के लिये प्राणपण से प्रयत्न कर रहे थे। कहते हैं कि मुस्तफा कमालपाशा को फौजी तथा अन्य जरूरी सहायता पहुंचाने में राय का इतना जबरदस्त हाथ रहा है कि जिसके बगैर मुस्तफा कमाल की विजय असम्भव थी। उन दिनों राय तुर्कीस्तान में थे जहां उनके हाथ में मजबूत सोवियट सेना, तोपें, बन्दूकें, हवाई-जहाजें वगैरह युद्ध के सारे सामान मौजूद थे। इस लम्बे और दिलचस्प किस्से की ओर आगे न बढ़ कर हम इतना ही जान लें कि कमाल पाशा, अस्मत पाशा जैसे टर्की कौम के बड़े बड़े नेताओं के हृदयों में इस भारतीय क्रान्तिकारी के प्रति बड़ी श्रद्धा और स्नेह रहा है जिसे समय समय पर उनलोगों ने बड़े आदर के शब्दों में प्रकट किया है।

टर्की के दूसरे दल के नेताओं से भी राय का सम्बन्ध था। महायुद्ध के फल-स्वरूप जर्मन-साम्राज्य के तहस-नहस हो जाने

के बाद तथा सुल्तान हामिद की हार के बाद अनवर पाशा, जमाल पाशा प्रभृति बड़े बड़े नामी नेता टर्की छोड़ कर रूस चले आये थे। वे सोवियट-सरकार के मेहमान थे। Dardenelles (डार्डीनल्स) के शेर श्री अनवर पाशा का नाम हिन्दोस्तान में बड़ा मशहूर है। यहां के मुसलमान आज भी उन्हें आदर और श्रद्धा से देखते हैं। इनलोगों का राजनैतिक विचार कुछ दूसरा ही था। राय ने इनलोगों से बातें की और उनके दिलों में राष्ट्रीयता तथा क्रांति के नये विचार पैदा करने की कोशिशें की। उन्होंने यह भी आग्रह किया कि वे दोनों नेता टर्की लौट कर मुस्तफा कमाल पाशा को, जो टर्की की जनता की आजादी और भलाई के लिये इतनी हिम्मत से जंग कर रहे हैं, हर प्रकार की सहायता करें। जमाल पाशा, राय की सलाह मान कर टर्की लौट पड़े किन्तु अभाग्यवश राह में ही वह किसी आर्मिनियन (Armenian) के हाथ मार डाले गये। अनवर क्रान्ति-विरोधी विचारों के आदमी साबित हुए। राय के क्रान्ति-वादी विचारों से वे सहमत न थे। उन्होंने अन्त में सोवियट-सरकार की मेहमानदारी का दुरुपयोग भी किया। अङ्गरेजों के साथ मिल कर रूस और हिन्दोस्तान की सरहद (Indo Russian Frontier) पर क्रान्ति-विरोधी विप्लव संगठित करने की उन्होंने कोशिश की और उसी प्रयत्न में वे मार डाले गये।

उन दिनों, १९२० साल के लगभग, हिन्दोस्तान के मुसलमानों के बीच बहुत बड़ा उथल-पुथल मचा हुआ था। टर्की और खिलाफत के प्रति अङ्गरेज-सरकार के अत्याचारी सलूक से मुस्लिम जनता में

असन्तोष का तूफान-सा आ गया था। हिन्दोस्तान के मुसलमानों के बीच इसका भी प्रचार हुआ था कि अङ्गरेजी सरकार मक्का और मदीना के पवित्र तीर्थ-स्थानों पर अधिकार जमा लेना चाहती थी। इन सब कारणों से यहां के मुसलमानों में बहुत बड़ा आन्दोलन चल पड़ा था। यह आन्दोलन 'हिज़रत' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रभाव पंजाब के मुसलमान किसानों पर बहुत अधिक था। अपने पवित्र धार्मिक स्थानों की रक्षा के लिये बड़ा बड़ा जत्था बना कर वे हिन्दोस्तान छोड़ने लगे। हजारों की संख्या में ये मुसलमान, अङ्गरेजी सल्तनत छोड़कर मुसलमानी राज्यों में बसने की तैयारी भी करने लगे। हिज़रत आन्दोलन में भाग लेने वालों को 'मोहाजिरीन' कहा जाता है।

खुद अफगानिस्तान में इन मोहाजिरीनों की संख्या ३६००० हजार से अधिक हो गई थी। हिज़रत आन्दोलन से काबुल-सरकार को बड़ा लाभ हुआ। ब्रिटिश-साम्राज्यवाद से अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने में उसे बड़ी सहायता मिली। किन्तु तब भी वहां की सरकार अपने देश को 'हिजरत-आन्दोलन' के ज़हरीले छूत से बचाने का प्रयत्न कर रही थी। खिलाफत तथा हिज़रत की ओर अफगानिस्तान वालों का रुख ला-परवाही का था। वे हिन्दोस्तानी मुसलमानों की भांति कट्टर-पन्थी न थे। धर्म से ज्यादा वे राष्ट्रीयता का ख्याल कर रहे थे। फल यह हुआ कि अफगानिस्तान के मुसलमानी सल्तनत में भी उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ। कई जत्थों को तो अफगानिस्तान से निकलवा दिया गया। कट्टर-मुल्लाओं की

आखें इस पर भी न खुलीं। उन धर्मान्धों का जत्था खिलाफत के रक्षार्थ लड़ने के लिये अनातोलिया (Anatolia) की ओर बढ़ा। रास्ते में वे अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा पर Turkoman Bandits (तूर्की लूटेरों) द्वारा पकड़ लिये गये। उन लूटेरों के हाथों मोहाजिरिनों की भयानक दुर्दशा हुई। गिड़गिड़ाते हुये शब्दों में उन मोहाजिरिनों ने प्रार्थना की कि वे मुसलमान हैं और धर्म-कार्य्य के लिये बाहर निकले हुए हैं। मुसलमान लूटेरों ने तनिक भी दया न की। उनकी सारी चीजें छीनकर वे उन लोगों के साथ जानवरों जैसा सलूक करने लगे।* यहां तक कि वे घोड़ों के पैरों में बांध कर घसीटे जाते थे। अन्त में लूटेरों का यह फैसला हुआ कि उन सैकड़ों हिन्दोस्तानियों को मार डाला जाये। सैकड़ों की तायदाद में वे निहत्थे मोहाजिरिन जल्लादों के सूपुर्द भी कर दिये गये।

हिन्दोस्तानियों की ऐसी दर्दनाक हालत की खबर तुर्कीस्तान में राय को मिली। उन्होंने तुरन्त ही सहायता के लिये सेना और हवाई-जहाज भेजा। उन अभागे भारतवासियों को मृत्यु के चंगुल से छुटकारा मिला। वे रूसी-तुर्कीस्तान पहुंचाये गये। उनमें से

* मोहाजिरिनों की हिजरत-यात्रा का रोमांचकारी वर्णन, जिसे पढ़कर रोंगटे खड़े होजाते हैं, शौकत उस्मानी ने अपनी पुस्तक-'पेशावर से मास्को' में की है। वह भी इन मोहाजिरिनों में से एक थे जो फिर बाद में एम. एन. राय के सम्पर्क से कम्यूनिस्ट बन कर हिन्दोस्तान लौटे। मेरठ षड़यन्त्र की सजा काट कर वे बाहर निकले हैं।

बहुत पढ़े-लिखे और सभ्य भी थे। किन्तु सबों की बड़ी दर्दनाक हालत थी। वे भूख से कमज़ोर हो गये थे। किसी के शरीर पर चिथड़ों के अलावा कुछ न था।

राय ने उनलोगों का यथोचित् सत्कार किया और हर प्रकार की सहायता दी। उन्हीं दिनों राय ने हिन्दोस्तानियों के लिये ताशकन्द (Tashkant) में 'फौजी-शिक्षा का स्कूल' तथा एक 'हिन्दोस्तान-निवास' (Military School and India House) की स्थापना की। आये हुए इन हिन्दोस्तानियों को उन्होंने इन संस्थाओं में शामिल करवाया। इन लोगों को राजनीति, अर्थशास्त्र तथा आधुनिक समाज के वैज्ञानिक आदर्शों की शिक्षा दी गई। बहुतों को फौजी शिक्षा भी दी गई। कुछ समय के बाद ये 'फौजी स्कूल और हिन्दोस्तान-निवास' तो बन्द कर दिये गये किन्तु राय ने इन हिन्दोस्तानियों को मास्को के Eastern University (पूर्वीय विश्व-विद्यालय) में भर्ती करवा दिया जहां उन्हें समाजवाद तथा अन्य राजनैतिक विषयों की शिक्षा दी गई। वे खुद बहुत दिनों तक वहां के प्रोफेसर तथा हिन्दोस्तानी विभाग के अध्यक्ष थे।

श्री मानवेन्द्र नाथ राय का यह प्रयत्न निष्फल न गया। बहुतों के धार्मिक अन्ध-विश्वासों का अन्त होने लगा। वे समाजवाद की रोशनी की ओर बढ़े। मार्क्स की फिलासफी का उन्होंने अध्ययन किया। वे क्रान्तिकारी आन्दोलनों के महत्व से परिचित हुए। हिन्दोस्तान की वर्तमान अवस्था में क्रान्ति-आन्दोलन किस मार्ग पर चलाया जा सकता है—इस विषय में भी उनलोगों ने राजनैतिक

जानकारी प्राप्त की। वे ही मोहाजिरिन जो अपने धार्मिक पवित्र स्थानों की रक्षा के लिये हिन्दोस्तान से बाहर निकल पड़े थे, अपने मुल्क की आजादी तथा कम्यूनिज्म के प्रचार के लिये फिर से हिन्दोस्तान लौट पड़े।

यह सच है कि उन सैकड़ों हिन्दोस्तानी मुसलमानों में करीब बीस ही ऐसे नवयुवक निकले जो सच्चे कम्यूनिस्ट सिद्ध हुए। राय के इन शिक्षित अनुयायियों को हिन्दोस्तान भेजा गया। उन्हीं लोगों के जरिये हिन्दोस्तान में सच्चे क्रान्ति-आन्दोलन तथा कम्यूनिज्म के प्रचार का श्री-गणेश हुआ। फजले इलाही उन मुसलमानों में प्रथम था जो हिन्दोस्तान लौटा। उसके बाद शौकत उस्मानी, मुज़फ्फर अहमद, अकबर खां कूरैशी वगैरह भी लौटे। बहुत से तो सीमान्त पर ही गिरफ्तार कर लिये गये। कितनों को '१८१८ के तीसरे रेगूलेशन' में फंसाया गया। फिर भी उनलोगों ने श्री एम. एन. राय की रहनुमाई में भारतवर्ष के कम्यूनिस्ट पार्टी का संगठन किया। उनलोगों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्तिशाली और उग्र बनाने की कोशिशें की। समय समय पर इन लोगों का कार्य्य जनता के सम्मुख कानपूर तथा मेरठ बोलशेविक षडयन्त्रों के रूप में आया है।

इस प्रकार करीब पांच सालों के बाद श्री एम. एन. राय. हिन्दोस्तान के क्रान्तिकारी आन्दोलनों के सम्पर्क में फिर से आने लगे। वे प्रथम हिन्दोस्तानी हैं जिन्होंने समाजवाद के रास्तों पर चलना कबूल कियाथा। हिन्दोस्तान में कम्यूनिज्म की बुनियाद उन्होंने तब डाली थी जब यहां-वालों ने मार्क्स का नाम भी नहीं सुना था। यही कारण है कि राय को हिन्दोस्तान में कम्यूनिज्म वा समाजवाद का पिता समझा जाता है।

यूरोप में जगह-जगह—

तुर्कीस्तान में कई महीने रहने के बाद, लेनिन की बुलाहट पर राय को मास्को लौट जाना पड़ा। वहां वे सोवियट-सरकार तथा कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के कार्य्यों में व्यस्त रहे।

उन दिनों हिन्दोस्तान में सन '२१ वाला असहयोग आन्दोलन अपने पूरे शिखर पर था। देश भर में जागृति फैली हुई थी। ऐसा मालूम होने लगा था कि अङ्गरेजी साम्राज्यवाद जन आन्दोलन के शक्तिशाली तूफान को संभाल न सकेगा। कामरेड राय हिन्दोस्तान के स्वराज्य-आन्दोलन से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये उत्सुक हो रहे थे। यूरोप के जरिये उन्हें भारतीय आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत सी खबरें मालूम हुईं।

अहमदाबाद-कांग्रेस का महत्वपूर्ण अधिवेशन उन्हीं दिनों होने वाला था। कामरेड राय ने उसके लिये एक घोषणा-पत्र लिखा। उसकी प्रतियां हिन्दोस्तान भेजवाई गईं। कांग्रेस के इतिहास में यह पहला मौका था कि उसके सम्मुख राष्ट्रीय-क्रान्ति का एक निश्चित

प्रोग्राम पेश हुआ। इसके पहले स्वराज्य का अर्थ तथा कार्य्य-क्रम बिलकुल गोल-मटोल बतलाया जाता था। कांग्रेस के सामने कोई भी ऐसा प्रोग्राम नहीं था जिससे देश की दरिद्र जनता उसकी ओर आकर्षित होती तथा जिसकी बुनियाद पर कांग्रेस को एक शक्ति-शाली "साम्राज्य-विरोधी मोर्चा" बनाया जा सकता। देश का सारा राजनैतिक जीवन धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रभावों से ओत-प्रोत था। मुल्क के सामने स्वराज्य का कोई ख़ास नक्शा था ही नहीं।

राय के घोषणापत्र ने पहली बार क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन का सुझाव पेश किया। उन्होंने कांग्रेसी नेताओं के क्रान्ति-विरोधी झुकावों का घोर विरोध किया तथा साम्राज्यवाद के खिलाफ निडर और उग्र-युद्ध जारी रखने की अपील की। उस समय कांग्रेस का ध्येय औपनिवेशिक-स्वराज्य था। कहा जाता है कि यह राय के सुझाव का ही फल था कि श्री हसरत मोहानी का 'पूर्ण-स्वराज्य' वाला जोरदार प्रस्ताव अहमदाबाद-कांग्रेस में पेश हुआ था।

आज कांग्रेस के राजनीतिज्ञ भी यह कबूल करने लगे हैं कि भावुकता के नाम पर जनता से अपील करने का कुछ भी फल नहीं होता। जनता की मदद प्राप्त करने के लिये यह चाहिये कि हम उनकी रोजमर्रा की आर्थिक लड़ाइयों में सहायता करें। स्वराज्य के झण्डे को वे कदापि स्वीकार नहीं कर सकते, यदि उससे उनको कुछ फायदा मालूम न हो तथा उनकी आर्थिक समस्या हल न हो। आज कल के कुछ दूधमुंहे समाजवादियों का यह दावा है कि कांग्रेस के अन्दर आर्थिक प्रोग्राम का समावेश उन्हीं के कारण हो सका

है। राजनैतिक इतिहास के किसी भी विद्यार्थी को इस बात पर हंसी आयगी। श्री एम. एन. राय पहले आदमी हैं जिन्होंने कांग्रेस के सम्मुख ये तरीके तथा कार्य्यक्रम पेश किये। उन्होंने क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन का नक्शा राष्ट्र के सामने रक्खा। उस समय—आज से बारह वर्ष पहले—ये कांग्रेस-समाजवादी चर्खा की गरिमा का उद्‌घाटन करने में मशगूल थे।

जिन "तात्कालिक तथा आंशिक मांगों" की बुनियाद पर आज जन-आन्दोलन की दीवार खड़ी करने की कोशिश की जा रही है, निस्सन्देह ये कामरेड राय के सुझाव के ही फल हैं। कम्यूनिस्ट इन्टर-नेशनल में भी वे ही इस नीति के प्रवर्तक थे। भारतीय कांग्रेस के ३६वें अधिवेशन के लिये, अपने घोषगा पत्र में उन्होंने लिखा था—

"कांग्रेस के ३६वें अधिवेशन के सम्मुख सब से बड़ा प्रश्न यह है कि राष्ट्रीय लड़ाई के लिये किस प्रकार जनता की पूरी सहायता प्राप्त की जाय? किस प्रकार अशिक्षित और निर्धन जनता के बीच कार्य्य हो जिससे वह स्वराज्य के झण्डे के नीचे संगठित हो सके। इस प्रश्न को हल करने के लिये इस बात की जानकारी प्राप्त करना होगा कि जनता के दुखों का कारण क्या है? वह चाहती क्या है? उसकी दुरावस्था को सुधारने के लिये किन-कन चीजों की आवश्यकता है? क्योंकि जब उसकी रोज़मर्रा की लड़ाई तथा उसकी तकलीफों को मिटाने के साधनों के आधार पर कांग्रेस का प्रोग्राम बनेगा, तभी कांग्रेस का भारतीय जनता पर सच्चा और अमली नेतृत्व कायम हो सकेगा।

यह घोषणा-पत्र काफी लम्बा था जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रत्येक पहलू पर रोशनी डाली गई थी। आज कई साल के बाद उस घोषणा की सच्चाई प्रतीत होने लगी है। उसी घोषणा-पत्र में कामरेड राय ने लिखा था—

"विना जागृत जन-शक्ति की सहायता के यदि कांग्रेस जनता के नेतृत्व की कोशिश करती है, तो वह बिलकुल फिजूल है। यह कोशिश असफल रहेगी। जनता की मदद प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि उसके सम्मुख ऊंचे राजनैतिक सिद्धान्तों तथा बड़े बड़े आदर्शवादी वसूलों की बातें करने के बदले हम उसकी आवश्यक तात्कालिक मांगें प्राप्त करने में सहायक हों और उसी आधार पर धीरे धीरे उसे आगे बढ़ावें........।"*

यह घोषणापत्र उनकी लिखी हुई एक पुस्तक, 'One year of Non-cooperation' (असहयोग का एक साल), में तफसील से निकली थी, जिसमें उस समय की राजनैतिक घटनाओं की बड़ी सुन्दर समीक्षा थी। इस छोटी पुस्तक में उसका पूरा विवरण देना मुश्किल है।

---

* If the Congress aspires to assume the leadership of the masses without founding itself upon the awakening mass-energy, it will be relegated to the dead past in order to share the ignominy of its predecessor. To enlist the conscious support of the masses, it should apporach them not with high politics and towering idealism but with readiness to help them secure their immediate wants, and then gradually lead them forward..... "—M. N. Roy's Aftermath of Non-co-operation.

कामरेड राय ने रूस से ही अपनी पुस्तकों, पत्रों तथा अन्य साधनों के ज़रिये बार बार कांग्रेस का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहा कि 'बिना क्रान्तिवादी जन-आन्दोलन के साम्राज्यवाद के खिलाफ सफल युद्ध नहीं हो सकता। कांग्रेस निस्सन्देह, हमलोगों के कौमी आन्दोलन का सबसे प्रधान और संगठित मंच है। किन्तु यदि उसे शक्तिशाली बनाना है तो उसे जनता—किसान, मजदूर, मध्यमवर्ग इत्यादि, की मांगों तथा उनकी रोज दिन की लड़ाई की बुनियाद पर राष्ट्रीय युद्ध की दीवार खड़ी करनी होगी। जब तक कांग्रेस ऐसा नहीं करती, जब तक वह पूंजीपतियों, जमीन्दारों तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अन्य स्तम्भों से नाता नहीं तोड़ लेती, जब तक वह अपने सारे प्रगति-विरोधी सिद्धान्तों को दूर नहीं फेंकती, तब तक वह ब्रिटिश-साम्राज्यवाद पर विजय पाने की ताकत हासिल नहीं कर सकती।"

अपने इन विचारों के प्रचार के लिये राय को भारतीय नेताओं के क्रोध का शिकार बनना बड़ा। खुशी की बात है कि आज वर्षों के बाद कांग्रेस के अन्दर एक ऐसे पक्ष का उदय हो चुका है जो क्रान्तिवादी-कार्य्यक्रम की आवश्यकता महसूस करने लगा है। राष्ट्रकर्मी पुराने तरीकों की सार-हीनता को समझने लगे हैं। कांग्रेस धीरे धीरे उसी क्रान्तिवादी राह की ओर बढ़ रही है।

सन् १९२१-२२ में कामरेड राय कुछ महीनों के लिये फिर तुर्कीस्तान पहुंचे। इस बार उनका उद्देश्य यह था कि वे काबुल से होकर हिन्दोस्तान के आन्दोलन से सम्बन्ध स्थापित करें। यह

प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुआ। इस जमीन के रास्ते से अधिक सुविधा यूरोप के ज़रिये थी। अतएव हिन्दोस्तान से पूरा सम्बन्ध कायम करने के इरादे से राय ने पश्चिम यूरोप जाना निश्चित किया। वे बर्लिन पहुंचे। वहां से मई १६२२ में उन्होंने "भैनगार्ड" नामक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। यह एक उच्च-कोटि का पत्र था। हिन्दोस्तान के प्रश्नों पर इसमें विशेष ध्यान दिया जाता था। राय इसके सम्पादक थे। उस पत्र का बहुत अधिक प्रचार हुआ। हिन्दोस्तान में भी पूरी संख्या में वह पहुंचने लगा। उसके लेख इस देश के बड़े बड़े राष्ट्रवादी पत्रों में भी निकले। किन्तु अङ्गरेजी-सरकार उन खतरनाक लेखों को कब सहन कर सकती थी। कुछ ही महीनों के बाद "भैनगार्ड" का हिन्दोस्तान में आना रोक दिया गया।

उधर जर्मन-सरकार का व्यवहार भी राय के प्रति कोई अच्छा न था। जर्मनी के कम्यूनिस्ट और मजदूर आन्दोलन में राय प्रमुख हिस्सा लेने लगे थे। जर्मनी में उनकी उपस्थिती ने कम्यूनिस्ट आन्दोलन में एक नई जान पैदा कर दी थी। जर्मन-सरकार को यह नापसंद था। वह राय से खौफ खाने लगी। कुछ ही महीनों के बाद राय अपने क्रान्तिवादी कार्य्यों के लिये जर्मनी से निकाले गये।

जर्मनी के बाद वे स्विटज़रलैण्ड पहुंचे और वहीं से "भैनगार्ड" का प्रकाशन जारी रक्खा। वहां की सरकार भी इस 'खतरनाक क्रान्तिकारी' को अपने मुल्क में ठहरने की इजाजत देने पर राजी न हो सकी। स्वीटज़रलैण्ड भी उन्हें शीघ्र ही छोड़ देना पड़ा।

स्विटज़रलैण्ड से विदा होकर राय ने फ्रान्स की शरण ली किन्तु वहां भी उनकी वही हालत हुई। १९२४ के अन्त में वे वहां से भी निकाल दिये गये। वहां तो कुछ ऐसी परिस्थिती उपस्थित हो गई थी कि वे अङ्गरेजों के हाथ पकड़वा दिये जाते। किन्तु सौभाग्यवश वे बाल-बाल बच गये। रूस के सिवा कहीं की सरकार भी अपनी सरहद के भीतर उन्हें जगह देने को तैयार न थी। विवश होकर उन्हें रूस लौट जाना पड़ा।

इन बेचैन घड़ियों में भी उन्होंने 'भैनगार्ड' को बन्द नहीं किया। उसका प्रकाशन जारी रहा तथा सभी बाधाओं के रहते हुए भी वह हिन्दोस्तान पहुंचाया जाता रहा। उन्हीं दिनों उन्होंने कई किताबें भी लिखीं:—

(1) Aftermath of non-co-operation (असहयोग आन्दोलन और उसके बाद)
(2) Future of Indian Politics (भारतीय राजनीति का भविष्य)
(3) Polittcal letters (राजनैतिक चिट्ठियां)
(4) What do we want ? (हमारी मांगें)
(5) One year of non-co-operation (असहयोग का एक वर्ष)
(6) India in Transition (परिवर्त्तनगत भारत) इत्यादि

ये पुस्तकें भी पूरी संख्या में हिन्दोस्तान पहुंचीं।

इन पुस्तकों में हिन्दोस्तान के राजनैतिक आन्दोलनों का मार्क्स वादी नुक्ते-नज़र से बड़ा ही अच्छा विश्लेषण है। ये किताबें अपने

टक्कर की बेजोड़ हैं। 'India in Transition' नामक उनकी पुस्तक के विषय में तो बड़े बड़े लेखकों और विद्वानों का कथन है कि हिन्दोस्तान तथा अन्य औपनिवेशिक देशों के प्रश्नों पर उससे बढ़ कर और कोई पुस्तक लिखी नहीं गई। समाजवादी दृष्टिकोण से लिखी गई यह पहली पुस्तक थी जिसने औपनिवेशिक देशों के मसलों पर वैज्ञानिक प्रकाश डाला है। वस्तुतः हिन्दोस्तान में क्रान्तिकारी आन्दोलन जो बढ़ रहा है, हमारा जन-आन्दोलन जो जो इनक़लाब की ओर अग्रसर हो रहा है, कांग्रेस में जो आज हम एक नई जिन्दगी पाते हैं, नौजवानों के बीच जो समाजवाद की चर्चा सुन पड़ती है, किसानों और मजदूरों के बीच आज जो हम एक प्रगतिशील उथल-पुथल देखते हैं, इसके अग्रदूत निस्सन्देह श्री एम. एन. राय ही रहे हैं। आज से करीब १२ साल पहले, अत्यन्त ही विपरीत अवस्थाओं में पत्रों, अखबारों तथा प्रचार के अन्य साधनों के जरिये, उन्होंने इनकलाबी तहरीकों की वसूली बुनियाद डाली थी।

सचमुच हमारे देश का यह अभाग्य रहा है कि इस नतीजे पर पहुंचने के लिए कि "हमें पूर्ण स्वराज चाहिये" हमें बीसों वर्ष लगे। जब कांग्रेस पर माडरेटों का प्रभाव था तो वे औपनिवेशिक-स्वराज्य का राग अलापते थे। कांग्रेस उस समय बड़े बड़े लोगों के लिए सालाना डिबेटिंग क्लब के समान थी। महात्मा गांधी के प्रभाव से कांग्रेस में बहुत अन्तर हुआ। कांग्रेस एक शक्तिशाली संस्था बन गई। देश के कोने कोने में 'स्वराज्य' का नाम गूंज उठा। किन्तु 'स्वराज्य' की परि-

भाषा जनता के सम्मुख बिलकुल रक्खी न गई। लाहौर कांग्रेस के पहले तक तो 'स्वराज्य' का अर्थ औपनिवेशिक-स्वराज्य समझा जाता था। अहमदाबाद कांग्रेस के समय श्री हसरत मोहानी का उत्तर देते हुए खुद महात्मा गांधी, राजगोपालाचारी तथा अन्य नेताओं ने यह साफ कहा था कि वे ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में ही स्वराज्य (Home Rule) चाहते हैं। बहुतों के लिए स्वराज्य एक सिर्फ इज्जत और भावुकता की चीज थी।

कांग्रेस के इन प्रतिगामी झुकावों के खिलाफ राय ने जंग शुरू किया। हम जान चुके हैं कि अमेरिका में ही औपनिवेशिक-स्वराज्य के प्रश्न पर श्री लाजपत राय से उनका बड़ा मतभेद हो गया था। जोरदार शब्दों में उन्होंने बार बार अपने लेखों और पत्रों के जरिये हिन्दोस्तान के लिये पूर्ण-स्वराज्य की आवश्यकता बतलाई। कांग्रेस की ओर लक्ष्य करके उन्होंने बतलाया कि "जब तक हम पूर्ण-स्वराज्य का लक्ष्य कबूल नहीं कर लेते, जबतक स्वराज्य की परिभाषा गरीबों और शोषित वर्गों की नुक्ते-नज़र से नहीं की जाती तथा जबतक हम अपने सम्मुख एक क्रान्तिकारी कार्य्यक्रम नहीं रखते, तब तक हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन एक गन्दे चक्कर में घूमता रहेगा। वह आगे नहीं बढ़ सकता। देश की उन्नति के लिये औपनिवेशिक स्वराज्य कोई साधन नहीं।" सन् १९२३ के आरम्भ में इन विषयों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने लिखा था—

"राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तो कोई इज्जत का सवाल नहीं। इसका सम्बन्ध तो जनता की असली हालत से है। कोई राष्ट्र किसी

विदेशी सत्ता के विरूद्ध क्यों बगावत करता है ? इसलिये न कि वह विदेशी सत्ता उस पर जुल्म करती है और उसके प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाते हुए उसे अयोग्य बनाये रखने की कोशिश करती है ? अङ्गरेज लोग तो भारत में तिजारत और मुनाफे की नीयत से आये थे। उनका और उनकी सरकार का एक मात्र उद्देश्य हिन्दोस्तान का शोषण कर ब्रिटिश पूंजी को बढ़ाना था। इससे यह बात साफ है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारतीय उन्नति में पग-पग पर बाधक ही रहा है। इसलिये यह अनिवार्य्य है कि ब्रिटिश-सत्ता के विरूद्ध बगावत का झण्डा खड़ा किया जाय। अगर हम चाहते हैं कि हिन्दोस्तान के लिये असली स्वाधीनता हासिल की जाय, हमारा आर्थिक शोषण बन्द हो, हमारी राजनैतिक अयोग्यतायें सदा के लिये मिट जायं जिन्हें अङ्गरेजी सरकार ने हम पर लाद रक्खा है तो यह जरूरी है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार विदेशी साम्राज्यशाही के फौलादी पंजे से स्वतंत्र हो।"

"विदेशी हुकूमत ने हमें केवल गुलाम ही बना कर नहीं रक्खा। वह हमारी राष्ट्रीय प्रगति में बाधक रही। हमारी सामाजिक उन्नति को संसार के प्रगतिशील देशों के साथ पैर मिला कर चलने नहीं दिया। इसे दरिद्र बना कर रक्खा। उन्नतिशील राजनैतिक विचारों और प्रगतिशील, सिद्धान्तों को संगीनों के जोर से दबाये रक्खा। हिन्दोस्तान को अपने पशुबल के जोर से ब्रिटेन के लिये कच्चा माल देनेवाला कृषि-प्रधान देश की स्थिति में रक्खा। इसने दिन-रात परिश्रम करने वाले हमारे करोड़ों भाइयों को दरिद्रता के गहरे गर्त में

डुबो दिया। इन्हीं सब अत्याचारों से ऊब कर और अपनी दरिद्रता और पराधीनता की कड़ियों की कृत्रिमता को पहचान कर भारतीय जनता में एकबार राष्ट्रीय स्वतंत्रता की भावनायें लहरें मारने लगीं।"

'अगर विदेशियों की हुकूमत के नीचे रहना सिर्फ बेइज्जती ही है तो एक सुशिक्षित जमीन्दार अथवा लिबरल-लीग के एक सदस्य के पास गुलामी की इस बेइज्जती को समझने के लिये कहीं अधिक साधन हैं—बनिस्बत एक देहाती के। मगर फिर भी हम देखते हैं कि ये पढ़े-लिखे सज्जन विदेशी सरकार के बहुत बड़े भक्त हैं। आखिर इसके कारण क्या हैं।..........."

"वास्तव में बात यह है कि शिक्षित धनी वर्ग का स्वार्थ भारत-स्थित विदेशी-सत्ता के साथ दूध और पानी की तरह मिला हुआ है। तभी तो ब्रिटिश छत्र-छाया में स्वतंत्र राष्ट्रों के संयुक्त राज्य का (Commonwealth of free Nations) वे स्वप्न देखते हैं।"

"इसलिये यह आवश्यक है कि भावुकता अथवा गुलामी के भावों से प्रेरित होकर ही नहीं बल्कि भौतिक आवश्यकताओं को मद्दे नजर रख कर स्वराज्य की परिभाषा की जाय। स्वराज्य का मतलब बतलाने में "हम ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर रहेंगे अथवा इसके बाहर"—यह सवाल सदा के लिये तय कर लेना होगा।"

इस प्रकार कामरेड राय राष्ट्रीय-आन्दोलन को प्रतिगामी राहों पर बहकने से रोकते रहे। गांधीवादी सिद्धान्तों की उन्होंने कड़ी आलोचना की। बार बार दुश्मनों से समझौते के लिये तैयार रहने की नीति तथा अपने शत्रुओं को प्रेम से जीतने के सिद्धान्त को

उन्होंने बेअमली और नाजायज बतलाया। उनका कथन था कि साम्राज्यवाद से किसी प्रकार का समझौता सम्भव नहीं क्योंकि वह किसी प्रकार भी अपनी खुशी से स्वराज्य नहीं दे सकता। स्वराज्य तो हमलोगों को शोषकों से छीनना होगा। फलतः गांधीवादियों का यह सिद्धान्त कि वे दुश्मनों का हृदय अपने प्रेम से जीत लेंगे, बिलकुल धोखा है। कामरेड राय ने इस सम्बन्ध में सन १९२४ में लिखा था

"हमारा तो मूल मन्त्र है—'समझौता का विरोध।' हम तो निर्दयता पूर्वक उनकी पोल खोलेंगे जो Equal Partnership (साम्राज्य में बराबर की हिस्सेदारी), Change of heart (हृदय-परिवर्तन) तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दाडम्बरों के जाल में हमारी राष्ट्रीयता की लड़ाई को कमजोर कर रहे हैं। हम तो कांग्रेस पर दबाव डालेंगे कि इस बात की वह घोषणा कर दे कि स्वतंत्र-भारत ब्रिटिश-साम्राज्य से बिलकुल अलग एक प्रजातन्त्रीय राष्ट्र होगा।"

औपनिवेशिक-स्वराज्य के सिद्धान्त का राय ने भण्डाफोड़ किया। उन्होंने यह बतलाया कि ऐसा स्वराज्य राष्ट्र की मांग कदापि

---

* "Our watch-word is" No-compromise." We will expose mercilessly all attempts to betray the national cause under such pretexts as Equal Partnership, Change of heart and the like. We will force the Congress to declare boldly for a Republican India, completely separated from Imperialist domination……."—M. N. Roy(1925)

नहीं हो सकती। अपने अकाट्य तर्कों से उन्होंने इसे प्रमाणित किया कि औपनिवेशिक स्वराज्य सिर्फ अमीरों—पूंजीपतियों और जमींदारों, के फायदे की चीज हो सकती है। किसान और मजदूरों का उससे क्या फायदा? जिस स्वराज्य से जनता का फायदा नहीं हो, उसके लिये जनता लड़ेगी क्यों? और बिना जनता की सहायता से स्वराज-संग्राम सफल कैसे होगा? अतएव प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर स्वराज्य का जो नक्शा बनेगा, वही एक शक्तिशाली राष्ट्रीय आन्दोलन का स्तम्भ हो सकता है। औपनिवेशिक-स्वराज की मांग की बुनियाद पर जन-आन्दोलन पनप ही नहीं सकता। इस विषय पर अपनी एक पुस्तक में राय ने लिखा है—

"हमारा ख़याल है कि पूर्ण औपनिवेशिक-स्वराज्य भी किसानों और मजदूरों को उचित राजनैतिक-अधिकार प्रदान नहीं कर सकेगा। सरकार पर पूर्ण नियन्त्रण रखनेवाली औपनिवेशिक धारा-सभा पूंजीवाद और सामन्तशाही के अनवरत शोषण से हिन्दोस्तान की गरीब जनता की रक्षा नहीं करेगी। इस तरह की पार्लामेन्ट केवल धनियों के स्वार्थ की रक्षा करेगी और उन्हीं के इशारों पर नाचेगी। और, यह राष्ट्र पूर्ववत ही गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा रहेगा। इसलिये हिन्दोस्तान के बहुसंख्यक दल के स्वार्थों की रक्षा के ख्याल से यह जरूरी है कि हिन्दोस्तान ब्रिटिश-साम्राज्य से नाता तोड़ कर प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों पर अवलम्बित बालिग मताधिकार के आधार पर एक जनसत्तात्मक राज्य कायम करे।....

हिन्दोस्तान की बहुसंख्यक जनता के हितों का यह तकाजा है कि स्वराज्य की परिभाषा साफ कर दी जाय और उसका मतलब ब्रिटिश साम्राज्य से अलग, हिन्दोस्तान का एक स्वतंत्र राष्ट्र होना ही हो।"

याद रहे कि कामरेड राय की यह घोषणा उस समय हुई थी जब कांग्रेस के अन्दर वाम पक्ष का जन्म भी नहीं हुआ था। जवाहरलाल जी वगैरह भी गांधी जी के साथ औपनिवेशिक-स्वराज्य का ध्येय ही अपनाये हुए थे।

पहला हिन्दोस्तानी कम्यूनिस्ट—

श्री एम. एन राय पहले हिन्दोस्तानी थे जिन्होंने कार्ल-मार्क्स के सिद्धान्तों पर चलना कबूल किया। कम्यूनिज्म उनके लिये कोरा सिद्धान्त ही नहीं था। वह सिर्फ मजदूरों का श्रेणी-सिद्धान्त नहीं था जिससे एक वर्ग का दूसरे वर्ग पर अत्याचार तथा संसार की अन्य विषमताओं का अन्त किया जा सके। कम्यूनिज्म उनके जीवन की एक खास फिलासफी बन गई थी जिसे उन्होंने अपने क्रान्तिकारी जीवन के तजुरबे से हासिल किया था। संसार की समस्याओं के विशेष अध्ययन तथा भिन्न भिन्न देशों के निजी अनुभव से वह इस नतीजे पर पहुंचे थे कि कम्यूनिज्म ही संसार की उन्नति का साधन बन सकता है। संसार का कल्याण इसी रास्ते पर चलने से होगा। समाज के विकाश के लिये यह ऐतिहासिक आवश्यकता है।

राय कर्तव्यशील पुरुष थे। समाजवाद का सुनहला आदर्श उनके लिये दिमागी अय्याशी की चीज नहीं थी। वह नहीं चाहते

थे कि मार्क्स और एन्जिल्स की क्रान्तिवादी विचार-धारायें किताबों की जिल्द से ही रुकी रहें। उन सिद्धान्तों की बुनियाद पर वह समाज में खासा परिवर्तन चाहते थे। वह चुपचाप रहने वाले व्यक्ति तो थे नहीं। यही कारण है कि संसार के भिन्न भिन्न देशों में उस क्रान्तिवादी-परिवर्तन के दुश्मनों—साम्राज्यवाद, पूंजीवाद, के खिलाफ वे निडर युद्ध करते रहे हैं। ब्रिटिश सरकार के न्यायाधीशों ने उनके मुकद्दमें का फैसला करते समय यह लिखा था कि "उग्र विचार रखना कोई जुर्म नहीं, किन्तु अभियुक्त सिर्फ उन उग्र-सिद्धान्तों से ही सन्तुष्ट नहीं था। वह उसे कार्य्य-रूप में परिणत करना चाहता था और उसके लिये वह ब्रिटिश-सरकार की नींव उखाड़ फेंकना चाहता था।"

यही कारण है कि ब्रिटिश-सरकार ही नहीं, संसार की सारी साम्राज्यवादी ताकतें कामरेड राय से घबड़ाती हैं। अमेरिका के एक प्रसिद्ध अखबार ने इस विषय पर यों लिखा था—

*"मानवेन्द्र नाथ राय वर्तमान युग के साहसी क्रान्तिकारियों में से है। अमेरिका, मैक्सिको, यूरोप, चीन, और हिन्दोस्तान में

* "Manabendra Nath Roy is one of the heroic revolutionary figures of our time. In America, in Mexico, in Europe, in China, in India his name is an anathema to the exploiters and to their hireling henchmen......... like a ghost he hovered over the police of three continents........To the toilers he brought courage and determination, to the masters fears" —Worker's Age. (U. S. A.)

उनके नाम से ही शासक वर्ग और उनके मददगार लोग घबड़ा उठते हैं।............तीन महाप्रदेशों की पुलिस के सर पर वह एक खतरनाक भूत बन कर नाच रहे थे।............उन्होंने श्रमजीवियों के हृदयों में हिम्मत और दृढ़ता पैदा की और शासकों के दिलों में खौफ........।"

न मालूम, हिन्दोस्तान आधुनिक प्रगतिशील विचारों की दौड़ में पीछे क्यों रहता है। खुशी की बात है कि इनदिनों चारों ओर समाजवाद की चर्चा हो रही है। आज से १५ साल पहले समाजवाद एक खतरनाक हौआ समझा जाता था। इसे लोग भारतवर्ष की संस्कृति तथा पूर्वीय आदर्शों के खिलाफ समझते थे। बड़े बड़े नेता इसे भय और घृणा की नज़रों से देखते थे। कांग्रेस के प्रमुख उग्रवादी नेतागण सी. आर. दास, जहावर लाल नेहरू, सुभाष बोस इत्यादि—भी कम्यूनिज्म के सर्वथा विरुद्ध थे। उनलोगों के ऊपर गांधीवाद की प्रतिगामी मुहर लगी थी। देश की समस्याओं के ऊपर समाजवादी दृष्टिकोण किसी का भी नहीं था।

वैसे मुश्किल दिनों में राय ने हिन्दोस्तान में कम्यूनिस्ट-पार्टी की नींव रक्खी थी। हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रगति-विरोधी झुकावों और क्रान्ति-विरोधी सिद्धान्तों का उन्होंने निर्भय विरोध जारी रक्खा। राष्ट्रीय आन्दोलन को गांधीवाद के भंवर से निकाल उसे शक्तिशाली साम्राज्यविरोधी जंग में परिणत करने का अनवरत प्रयत्न वे करते रहे। अपने पुस्तकों और अख़बारों के ज़रिये उन्होंने उन राष्ट्रीय नेताओं की कड़ी आलोचना की जो

आन्दोलन को क्रान्तिवादी रास्ते से अलग घसीटना चाहते थे। कामरेड राय के इन स्पष्ट आलोचनाओं तथा निडर प्रचारों का फल यह हुआ कि देश के उन नौजवानों को उत्साह और रौशनी मिली जो गांधीवाद की अन्धकार से उकता गये थे। खुद कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी के बड़े बड़े नेताओं ने, जिनमें श्री जयप्रकाश नारायण भी शामिल है, यह स्वीकार किया है कि समाजवाद तथा क्रान्तिवादी रास्तों के लिये हमें पहला उत्साह श्री एम. एन. राय की पुस्तकों से मिला।

१६२२ के मई महीने से १६२८ के आरम्भ तक कामरेड राय 'भानगार्ड' (Vanguard) और 'मासेस' (Masses) का सम्पादन करते रहे। ये अखबारें कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल की ओर से हिन्दोस्तान तथा पूर्वीय राष्ट्रों के लिये मुख-पत्र थे। ये अखबारें हजारों की संख्या में हिन्दोस्तान पहुंचाये गये। देश में प्रगतिशील क्रान्तिवादी विचारों की बुनियाद इन्हीं प्रचारों के ज़रिये हुआ था। उन अखबारों की फाइलों से आज भी पता चलता है कि साम्राज्यविरोधी-युद्ध को आगे बढ़ाने में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। 'भानगार्ड' सचमुच देश में फैले हुए रैडिकल-विचारों का अग्रदूत रहा है।

अपने इन अखबारों तथा पुस्तकों के ज़रिये राय ने देश के सम्मुख क्रान्तिवादी राष्ट्रीयता का एक खास प्रोग्राम रक्खा। उन्होंने स्वराज्य की परिभाषा की। कांग्रेस को एक शक्तिशाली जन-आन्दोलन में परिणत करने के लिये उन्होंने एक विशेष कार्य्यक्रम तैयार

किया। यह पहला अवसर था जब हिन्दोस्तान की राजनीति में किसान और मजजूरों की मांगों की बुनियाद पर आन्दोलन संचालित करने का तरीका पेश हुआ। जमींदारी प्रथा तथा पूंजीवाद के नाश की पुकार शुरू हुई। आज धीरे धीरे कांग्रेस और ख़ास कर उसका बांया पक्ष उन प्रोग्रामों के महत्व को समझने लग गये हैं। आज जिस विधान-निर्मात्री परिषद (Constituent Assembly) के स्लोगन पर हम राष्ट्रीय युद्ध को आगे बढ़ाना चाहते हैं और जिसे अब प्रत्येक पार्टियों ने स्वीकार कर लिया है, श्री राय द्वारा १६२२ में पेश हुआ था।

कामरेड राय एक ना-तजुर्बेकार आदर्शवादी कम्यूनिस्ट नहीं थे। वह यथार्थवादी (realist) थे। लेनिन की भांति, वह जानते थे कि जनता को एकाएक कम्यूनिज्म की ख़ूराक नहीं दी जा सकती। उसे धीरे धीरे वहां तक ले चलना होगा। और, ख़ासकर औपनिवेशिक देशों में जहां कई कारणों से प्रजातन्त्रीय-क्रांति (Bourgeois Democratic Revolution) अभी तक नहीं हो सकी है, कम्यू-निज्म के झंडे के नीचे जन-आन्दोलन का संगठन हो ही नहीं सकता। इस विषय पर लेनिन भी राय से एकमत थे। इसी सिद्धान्त की बुनियाद पर, जिसे कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल ने भी कबूल कर लिया था, राय हिन्दोस्तान के लिये डेमोक्रैटिक-क्रांति की सफलता के लिये समय समय पर क्रांतिवादी प्रोग्राम पेश करते रहे।

किन्तु उन दिनों राष्ट्रीय-क्रांति के प्रोग्राम को बोलशेविक कह कर उड़ा दिया जाता था। स्वयं पंडित जवाहरलाल नेहरू ने, जो हिन्दोस्तान के आज, सब से बड़े समाजवादी नेता माने जाते हैं, एकबार लिखा था:—

"बोलशेविज्म और फेसिज्म तो पच्छिमी तरीके हैं। वास्तव में दोनों बिलकुल समान हैं और हिंसा तथा असहिष्णुता के जीवित प्रतीक हैं। हमलोगों के सम्मुख एक ओर लेनिन और मुसोलिनी है और दूसरी ओर महात्मा गांधी। क्या आज किसी को तनिक भी सन्देह हो सकता है कि हिन्दोस्तान का रहनुमा कौन है ?" *

लेनिन का मुसोलिनी से तुलना! जब पण्डित जवाहरलाल जी का ही ऐसा विचार था, हम स्वयं आसानी से अन्दाज लगा सकते हैं कि उस समय कांग्रेस के ऊपर कितना अधिक प्रतिगामी रंग चढ़ा था। राय ने अकेला ही इन परिस्थितियों का सामना किया। समय समय पर उन्होंने कांग्रेसी-नेताओं की कड़ी आलोचना भी की जिससे चिढ़ कर वे उन्हें बोलशेविक-एजेन्ट कहने लगे थे। पंडित जवाहरलाल जी के इस कथन का उत्तर देते हुये कामरेड राय ने लिखा था—

"पं० जवाहरलाल दार्शनिक उलझनों में फंसे हैं। वह संसार के प्रवलतम साम्राज्यवादी शक्ति के विनाश की बातें करते हैं। लेकिन साथ ही साथ प्रेम और शान्ति के गीत भी गाते हैं। वह गलत दृष्टिकोण उन्हें ऐसी स्थिति में ला रखता है कि उन्हें वस्तु-स्थिति

---

* "Bolshevism and Fascism are the ways of the west to-day. They are really alike and represent different phases of insenate violence and intolerance. The choice for us is between Lenin and Mussolini on one hand and Gandhi on the other. Can there be any doubt as to who represents the soul of India to-day ?"—Jawaharlal Nehru

का सही ज्ञान नहीं रह जाता और न स्याह-सफेद की तमीज ही बाकी रहती है। गांधीवाद और बोलशेविज्म में चाहे और कोई सादृश्य न हो, इतना तो है कि गांधीवाद खून का उतना ही प्यासा है जितना बोल्शेविज्म। बोल्शेविज्म ने अगर हिंसा की तरफ रुख किया है तो अपने आदर्शों के कारण नहीं। बोल्शेविकों को तो मज़बूर किया गया कि या तो वे अपने कार्य्यक्रम से पीछे हटें या उनका (ज़ार का) चैलेञ्ज स्वीकार कर अपने आदर्शों की रक्षा करें। अगर पं० जवाहरलाल अपनी बातों पर डटे रहे, अगर उन्हें हिन्दोस्तान की आजादी लेनी मंजूर है, उन्हें ज्ञात हो जायेगा कि उनकी सदाचारोक्तियां फिजूल हैं। लेनिन और मुसोलिनी, बोलशेविज्म और फासिज्म, को केवल इसलिये कि दोनों हिंसा अख्तियार करते हैं, एक-सा समझना शोचनीय अज्ञानता का बोधक है। अगर वे बोलशेविकों को बुरा कहते हैं केवल इसलिये कि वे ज़ार और उसके मददगारों, जमींदारों और पूंजीपतियों, को जो रूस की जनता का भयानक शोषण कर रहे थे, नहीं देख सकते थे, तो फिर भारत में अङ्गरेजों के विरुद्ध जो असंतोष खुद उन्हें है उसका समर्थन वे किस समाचार-नीति से करेंगे। हां, वे ऐसा कह सकते हैं कि हमारा असंतोष तो गांधीवादी असंतोष है। इसमें हिंसा नहीं है। ठीक है, इतिहास इसे बतलायेगा और अहिंसा और क्रांति के दो नावों पर सवार होना असम्भव है, यह शीघ्र ही जाहिर हो जायगा।"

हिन्दोस्तान की सामाजिक अवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हुये राय ने इससे भी कड़े शब्दों में जवाहरलालजी तथा अन्य

नेताओं की आलोचना की थी। आज उन सब विषयों पर लिखना कुछ हितकर न होगा। उन्होंने निडर शब्दों में एलान किया था— "* यदि गांधीवाद अब भी भारतवर्ष का प्राण है, जैसा कि पण्डित जवाहरलाल का विश्वास है, तो उसके स्वतंत्रता के दिन बहुत दूर हैं............न गांधी जी का प्रतिगामी शान्तिवाद (pacifism) और न मुसोलिनी का राष्ट्रीय-जिंगोइज्म† ही भारतवर्ष और वहां की बहुसंख्यक जनता में, जो परिश्रम करके भी भूखों मरती है, नई जान फूंक सकेगी। वह तो उसी प्रोग्राम का अनुसरण करेगी जो गरीब जनता के आर्थिक और सामाजिक स्वाधीनता की बुनियाद पर बनी हो।............अपने ध्येय तक पहुंचने के लिये हमलोगों को बहुत सी खून की नदियां पार करनी होगी और क्रान्ति-विरोधी राष्ट्रीयता के बहुत से वसूलों को भूल जाना होगा..........."

---

* "If Gandhism still represents the soul of India, as Jawaharlal believes, then the day of her liberation is far off. The soul of real India, that is of the majority who toil and starve, will be stirred to action not by the re-actionary pacifism of Gandhijee, nor by the nationalist Jingoism of Mussolini, it will only respond to...........a programe which will stand for the economic liberation and social emancipation of the toiling masses........Many a river of blood will have to be traversed and many a tenet of re-actionary Nationalism will have to be forgotten before that goal is realised" —M. N. Roy (1926)

† जिंगो एक समुद्र के राक्षस को कहते हैं जो सदा दूसरों से लड़ने के लिये तैयार रहता है। इसी के आधार पर यूरोपीय राज-

उनका यह निश्चित मत था कि "बिना क्रान्ति के देश की आज़ादी सर्वथा असम्भव है। और, क्रान्ति अहिंसावादी मार्ग से हर्गिज सफल नहीं हो सकती। अहिंसा और क्रान्ति दो विरोधी वस्तुएं हैं। फलतः यदि देश को पराधीनता से मुक्त करना है, जनता को अपनी मजबूरियों को तोड़ना है, तो इन विषयों को सदा के लिये हल कर लेना चाहिये।" आगे चल कर उन्होंने उन लोगों को जो अपने को अहिंसावादी क्रान्तिकारी कहते हैं, 'शाकाहारी शेर'* से उपमा दी थी और बतलाया था कि हिन्दोस्तान की स्वतंत्रता और उसका विकाश शक्तिशाली क्रान्तिकारी आन्दोलन पर निर्भर करता है।

इस प्रकार श्री एम. एन. राय कांग्रेस में प्रचलित प्रतिगामी झुकावों के खिलाफ लड़ते रहे। अपने पुस्तकों, लेखों तथा अन्य साधनों से उन्होंने कांग्रेस के उग्रवादी दल की हिम्मत बढ़ाई। इन पुस्तकों में जिसे उन्होंने आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखा था, राष्ट्रीय क्रान्ति, मजदूर-संगठन, राष्ट्रीयता, पूंजीवाद, जमीन्दारी प्रथा, कौंसिल प्रवेश, अहिंसा, आतंकवाद इत्यादि विषयों पर बड़ा ही अच्छा प्रकाश है। लेख गम्भीर और सारगर्भित हैं। आज कई

नैतिक साहित्यों में 'जिंगोइज्म' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'जिंगोइज्म' उस सिद्धान्त को कहते हैं जो बिना किसी कारण के अपनी इच्छानुसार कोई एक शक्ति दूसरों से लड़ने पर आमादा रहे। जिंगोइज्म और राष्ट्रीयता अक्सर साथ रहती है। —लेखक।

* ...."There are many who proclaim themselves as non-violent revolutionaries. One would just as well speak of a vegetarian tiger." —M. N. Roy.

सालों के बाद उनकी दलीलों की सत्यता प्रमाणित हो रही है। आज भी उसे पढ़ने से मालूम होता है मानो वह कल की लिखी पुस्तकें हैं।

गया कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने बड़ा ही महत्वपूर्ण मेनिफेस्टो लिखा था। उसका वर्णन Aftermath of Non-co-operation में पढ़ा जा सकता है। सन '२१ के असहयोग आन्दोलन का यह बहुत ही जीता-जागता चित्रण और वैज्ञानिक विश्लेषण है। यह पुस्तक भारत-सरकार की ओर से जब्त थी। उसमें गया और कोकानाडा कांग्रेस के अवसर पर कांग्रेस के बांये पक्ष की ओर इशारा करते हुए उन्होंने लिखा था

"कांग्रेस के क्रान्तिबादी वाम-पक्ष को, जो आज संगठित हो रहा है, आन्दोलन का राजनैतिक नेतृत्व ग्रहण करना चाहिये क्योंकि आन्दोलन वस्तुत: (objectively) क्रान्तिकारी है।

"बायें-पक्ष का फर्ज है कि वह शीघ्र एक विशेष कार्य्यक्रम के आधार पर अपनी जंग शूरू कर दे। कार्य्यक्रम ऐसा होना चाहिये कि जो कांग्रेस और जनता में घना सम्बन्ध कायम रख सके तथा जन-आन्दोलन को हर मुमकिन साधनों से उग्रतम बनाने में सफल हो। फलत: वैसा प्रोग्राम मजदूर और किसानों की उन तत्कालिक मांगों की बुनियाद पर होना चाहिये जिससे उनके रोजमर्रे की तकलीफें हल हो सकें। हमारी मांगे होनी चाहिये, मजदूरों के वेतन की वृद्धि, मजदूर-संघों का स्वीकृति, हड़ताल करने का अधिकार, जमींदारी प्रथा का अन्त, टैक्स और मालगुजारी के रेट की कमी तथा कर्जदारों से गरीबों का संरक्षण इत्यादि।........"

"............इन्हीं क्रान्तिवादी रास्तों की ओर जनता को खींचने के लिये हमें गया जाना चाहिये। हमें युद्ध की तैयारी करनी है।...."

"*कांग्रेस के प्रोग्राम में क्रान्तिवादी परिवर्तन का आरम्भ गया से ही हो। अपने आन्दोलन के इस नये परिच्छेद का अग्रदूत बन कर हम गया चलें और राष्ट्रीय आन्दोलन को वास्तविक क्रान्तिकारी बुनियाद पर खड़ा करके जनता की समस्याओं के आधार पर अपनी जंग शुरू करें।"

गया कांग्रेस के अवसर पर उन्होंने एक विस्तृत प्रोग्राम पेश किया था। उनकी पुस्तकें One year of Non-co-operation तथा Aftermath of Non-co-operation में उसका पूरा विस्तार है। पुस्तकों से यह साफ पता चल जायेगा कि आज जिस सिद्धान्त और प्रोग्राम के उपर ये समाजवादी तथा अन्य क्रान्तिवादी आन्दोलन आगे बढ़ रहा है, उसकी नींव कामरेड राय ने आज से १५ साल पहले दी थी।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में पहली बार यह क्रान्तिवादी प्रोग्राम † पेश हुआ—

* "Gaya should mark the renaissance of the Congress. We must go there to herald this new phase of our movement and begin to fight to base the national struggle on a really revolutionary foundation by making it a vital problem to the masses."

† राष्ट्रीय प्रजातन्त्रीय क्रान्ति (National Demoratic Revolution) का प्रोग्राम राय की पुस्तक 'One year of Non-co-operation'

(१) पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति, जिसका मतलब होगा बृटिश साम्राज्य से सम्बन्ध-विच्छेद।

(२) बालिग मताधिकार की बुनियाद पर राष्ट्रीय विधान निर्मात्री सभा (National Constituent Assembly) का चुनाव।

(३) संघ-बद्ध प्रजातन्त्र की स्थापना (Establishment of Federated Republic of India)

सामाजिक और आर्थिक :—

(१) जमीन्दारी प्रथा का अन्त।

(२) मालगुजारी में कमी; सरकार की ओर से सस्ते दर पर कर्ज देने के लिये कौपरेटिव बैंक की स्थापना और कर्ज की मंसूखी।

(३) आधुनिक ढंग की खेती के प्रबन्ध के लिये सरकारी सहायता।

(४) अप्रत्यक्ष-टैक्स की नीति का अन्त (Abolition of indirect taxation)।

(५) रेलवे, खानों, बड़े बड़े कारखानों इत्यादि का राष्ट्रीयकरण (Nationalisation of Railways, mines, water-ways, etc. etc.)।

(६) मजदूरों के लिये रहने की स्वस्थकर हालतें, वेतन की वृद्धि, हड़ताल करने का अधिकार, बोनस, इत्यादि।

(असहयोग का एक साल) में तफसील में लिखा है। वास्तव में उसी के अधार पर आज १५ साल के बाद, वाम-पक्ष का कार्य्य-क्रम तैयार हुआ है।

(७) अनिवार्य्य और निःशुल्क शिक्षा।
(८) स्टेट और मजहब का पृथक्करण।
(९) औरतों के लिये पूर्ण सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वतंत्रता।

इसके अतिरिक्त अपने प्रोग्राम में उन्होंने Non-payment of taxes, राष्ट्रीय सेना का संगठन, राजबन्दियों की रिहाई, कौंसिलों का क्रान्तिवादी उपयोग इत्यादि विषयों पर तफसील में लिखा था। स्थानाभाव से उन विषयों पर यहां अधिक नहीं लिखा जा सकता।

इन सब बातों पर गौर करते हुए यह मानना पड़ेगा कि हिन्दोस्तान में सिर्फ कम्यूनिज्म का ही नहीं, उन सारे प्रगतिशील क्रान्तिवादी आन्दोलनों की नींव उन्होंने डाली थी जिसके फलस्वरूप आज हम देश में नई ज़िन्दगी पाते हैं।

कामरेड राय का सम्बन्ध सिर्फ हिन्दोस्तान ही के क्रान्ति-आन्दोलन से नहीं था। कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के पूर्वीय-विभाग के प्रधान की हैसियत से वे एशिया के तमाम इनकलाबी तहरीकों का संचालन कर रहे थे। उन औपनिवेशिक राष्ट्रों के साम्राज्य-विरोधी युद्धों को गतिशील बनाने के लिये उनका प्रयत्न जारी रहा। सन १९२६ के अन्त तक वे रूस में ही रहे। पश्चात् स्टालिन के बार बार अनुरोध करने पर उन्हें चीन के लिये रवाना हो जाना पड़ा। चीन उन दिनों भीषण-क्रान्ति के मध्य में था।

चीन की क्रान्ति में:—

१९२३ से १९२७ तक संसार भर की नजरें चीन की ओर थीं। लोग कौतूहल, उत्सुकता और आशा से उसकी ओर देख रहे थे। इस "आलसी और अफीमची मुल्क" में भी शक्तिशाली क्रान्तिवादी तूफान खड़ा हो गया था। इन 'चीनी-कुलियों' के भय से यूरोप, अमेरिका और जापान की साम्राज्यवादी ताकतें घबड़ा उठी थीं। वैसी क्रान्तिकारी लहर आजतक किसी भी पूर्वीय देश में नजर नहीं आई। इस राष्ट्रीय जागृति का नेतृत्व क्यू-मिन-टांग (Kui-Min-Tang) * के हाथों में था। आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने में वहां के कम्यूनिस्टों का भी बड़ा हाथ था। ऐसा विश्वास किया जाता था कि चीन में भी रूस की भांति समाजवादी सरकार की स्थापना होगी। क्योंकि चीन की जनता पर कम्यूनिस्टों का बड़ा असर था। काश! वह क्रान्ति सफल हुई होती! संसार में नये युग का श्री गणेश होता।

* क्यू-मिन-टांग चीन की राष्ट्रीय-सभा को कहते हैं। वह चीन में वैसी ही लोकप्रिय है जिस प्रकार हिन्दोस्तान में कांग्रेस।

चीन बहुत बड़ा देश है । मंगोलिया, मंचूरिया, तिब्बत, सिकियांग इत्यादि को भी इसी में शुमार किया जाता है । क्षेत्रफल इसका करीब ४० लाख वर्गमील है । इसकी भूमि बड़ी उर्बरा है । जनता का प्रधान व्यवसाय है खेती। इसकी आबादी ५० करोड़ है —संसार की कुल जनसंख्या का एक चौथाई ।

चीन का विस्तृत साम्राज्य और इसकी सभ्यता बहुत पुरानी है। इसका इतिहास सभ्यताओं के इतिहास में एक ऊँचा स्थान रखता है। वहां की कारीगरी और कला की उच्चता के विषय में हम आज कई आश्चर्य्य-जनक कहानियां सुनते हैं ।

वहां की अधिकांश जनता बौद्ध तथा कन्फीउसीयन धर्म को मानती है । इसके अतिरिक्त वहां इसाई और मुसलमान भी हैं । फिर भी खूबी यह है कि उनकी राजनैतिक या अन्य राष्ट्रीय महत्वाकांक्षायें धार्मिक मतभेदों से नहीं रुकतीं । इसका कारण शायद उनकी सांस्कृतिक एकता है । इसके अतिरिक्त वहां दूसरे देशों की अपेक्षा सामाजिक बन्धनों से अधिक स्वतंत्रता है। उनके बीच कोई वंशगत भेद या किसी प्रकार का विशेषाधिकार भी मौजूद नहीं है । इतना होते हुए भी चीन पिछड़े हुए देशों में गिना जाता है ।

वास्तव में यूरोप तथा अन्य देशों की भांति चीन भी आज आधुनिक सभ्यता की प्रगति में सब से आगे होता। किन्तु वह भी हिन्दोस्तान की भांति बदकिस्मत देश है । विदेशी साम्राज्यवादी हस्तक्षेपों से उसका विकाश रुक गया। आज चीन नाम-मात्र का स्वाधीन देश है । उसकी सारी जमीन विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों

के विध्वंशकारी दबाव से जर्जरित है। विदेशी पूंजी और उसके फलस्वरूप तरह तरह के राजनैतिक और आर्थिक विशेषाधिकारों से सारा देश चलनी-चलनी है। इतनी उर्वरा भूमि के होते हुए वहां की जनता भूखी रहती है। अपने देश में ही वहां की जनता पद पद पर असम्मानित और पददलित है।*

आरम्भ में ही चीन को अपने मुनाफे का अच्छा क्षेत्र समझ कर साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपना काम शुरू किया। पहले इसाई पादरियों ने मुल्क पर हमला किया। उनका जाहिरा मकसद था चीन को 'सभ्य' बनाना और "विद्या प्रचार" करना। इन धोखेबाजों ने बहुत से स्कूल, कालेज और अस्पताल खोले। फिर भी इन की नेकनीयती पर आज भी किसी चीनी को भरोसा नहीं है। हम हिन्दोस्तानी, विदेशियों के इन हथकण्डों से वाकिफ हैं। धीरे धीरे ब्रिटेन, अमेरिका तथा जापान की बड़ी बड़ी पूंजी इस देश में लगाई जाने लगी। बड़े बड़े कारखाने भी खोले गये। साम्राज्य-वादी-पूंजी के लिये चीन अच्छे मुनाफे का बाजार साबित हुआ। अब क्या था ? वे चीन की राजनीति में भी दस्तन्दाजी करने लगे। अपने सैनिक-बल के सहारे उन्होंने कई महत्वपूर्ण स्थानों पर अधिकार जमा लिया। संगीनों के बल पर उन्होंने चीन में राज-

* चीन के कई क्लब तथा मैदानों में जहां विदेशियों का अड्डा है, यह लिखा रहता था—'अहाते के भीतर कुत्तों और चीनियों का आना मना है।'

—P. Spratt's 'India and China.'

नैतिक और आर्थिक सुविधायें प्राप्त की। मौके मौके पर महत्वपूर्ण स्थानों को अपने कब्जे में कर लिया। आज चीन के सारे बन्दरगाह ट्रीटी-पोर्ट हो चुके हैं, जहां विदेशियों के लिये विशेष अधिकारें प्राप्त हैं।

इस प्रकार चीन अपनी स्वाधीनता खोता गया। उसके कितने स्थान हड़प लिये गये। १८४१ में हांगकांग का प्रसिद्ध बन्दरगाह अङ्गरेजों के अधिकार में चला गया। अङ्गरेजों के अलावा फ्रान्स, जर्मन, अमेरिका इत्यादि साम्राज्यवादी देशों का पंजा भी जमने लगा। जापान के सम्बन्ध में तो हमलोग वाकिफ ही हैं। कुछ ही वर्ष पहले उसने मंचूरिया के समृद्धिशाली प्रदेश को अपने कब्जे में कर लिया था। आज भी जिस बर्बरता से वह अपने सैनिक-बल के सहारे, चीन की स्वाधीनता नष्ट करने पर उतारू है, हम अपनी आखों देख रहे हैं। कहने का तात्पर्य्य यह है कि चीन नाम मात्र को स्वतंत्र है। वास्तव में वह विदेशियों के शिकंजे में है और साम्राज्यवाद का शोषणक्षेत्र है।

इन विदेशी साम्राज्यवादी जुल्मों के अलावा चीन की जनता पर वहां के War Lords (युद्ध प्रभु) के जुल्म भी मौजूद थे। ये War Lords अपने अपने प्रान्तों में स्वतंत्र-से हैं। विदेशी साम्राज्यवाद को इनसे बहुत मदद मिलती है। इनके कारण चीन की राजनीति इतनी गन्दी हो गई है कि समय समय पर वहां भीषण गृह-युद्ध होता रहता है। चीन की जनता विदेशी साम्राज्यवाद के शोषण तथा वहां के War Lords के जुल्मों से परेशान थी। लोग भयंकर निर्धनता और

तकलीफों के शिकार थे। अपनी इस बदतर और तौहीन हालतों के खिलाफ उनमें बहुत बड़ा असन्तोष फैला। वहां की राष्ट्रीय जागृति का कारण यही असन्तोष था। १६२७ की क्रान्ति के पहले यह जागृति बौक्सर (Boxer) और टेपिंग (Taiping) के विद्रोहों के रूप में प्रकट हुई थी जिसे साम्राज्यवादी शक्तियों की सम्मिलित ताकत ने दबा दिया।

किन्तु देश से क्रान्तिवादी भावनाओं का अन्त न हुआ। खोये हुए राजनैतिक अधिकारों को प्राप्त करने की चेष्टा होने लगी। चीन के विद्यार्थी, जो यूरोप के क्रान्तिवादी आन्दोलनों के सम्पर्क में आचुके थे, इस आन्दोलन को बढ़ाने में सहायक हुए। इस कौमी तहरीक का उद्देश्य था विदेशी साम्राज्यवाद का नाश और प्रजातन्त्र की स्थापना। किन्तु इसके लिये एक शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता थी। उसी समय किउ-मिन-टांग नाम की राजनैतिक पार्टी का जन्म हुआ।

क्यू-मिन-टांग चीन की राष्ट्रीय संस्था है। पहले यह एक साधारण छोटी-सी संस्था थी जिसमें कुछ थोड़े से War Lords शामिल थे। धीरे धीरे यह जनता की शक्तिशाली संस्था बन गई। क्यू-मिन-टांग के नेता श्री सन-यात-सेन थे। वास्तव में वे चीन के कौमी आन्दोलन के पिता थे।

आरम्भ में उनके ऊपर "अमेरिका के प्रजातन्त्रवाद" का बड़ा गहरा रंग था। वे विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों से भी मिले रहते थे। उनकी पहली लड़ाई मन्चू-वंश के राज-परिवार से हुई।

१६११ की क्रान्ति में मन्चू-वंश का खात्मा हो गया और एक नये प्रजातन्त्र की रचना हुई। किन्तु इस नये प्रजातन्त्र से जनता का कुछ फायदा न हो सका। चीन की भयङ्कर गरीबी और उसकी गिरी हुई हालत में कुछ भी तबदीली न हुई। साम्राज्यवाद की शोषण-चक्की चलती ही रही। बस यही हुआ कि मन्चुओं के बदले यूनान-शी-काई (Ynan Shi-kai) चीन की बर्बादी करने लगा।

वस्तुतः चीन के राष्ट्रीय आन्दोलन का सच्चा और उग्र रूप Versailles की सन्धि के बाद ही प्रकट हुआ। महायुद्ध में चीन ने मित्र-राष्ट्र (ब्रिटेन, फ्रान्स, अमेरिका वगैरह) का साथ दिया था। किन्तु इसका पुरस्कार मित्र-राष्ट्रों की ओर से—वर्सलीज़-सन्धि के अनुसार—यह मिला कि उसका शानटुंग प्रान्त जापान के हवाले कर दिया गया। इस अन्याय से सारे देश में असन्तोष की आग भड़क उठी। साम्राज्यवादियों के सम्मिलित आक्रमण से चीन कैसा नपुंसक बनाया जा रहा है, यह उनकी समझ में आया। खुद सन-यात-सेन का नशा टूटा। विदेशियों के खिलाफ बहुत बड़ा आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। जापान के विरुद्ध तो कौमी नफरत पैदा हो गई। आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने वाले वहां के विद्यार्थी, मध्यम वर्ग के लोग तथा शहर के छोटे छोटे कारीगर और तिजारती थे। आन्दोलन ने इतना जोर पकड़ा कि पेकिंग की जापान की तरफदारी करने वाली सरकार (Pro-Japanese Govt.) का अन्त हो गया। क्यू-मिन-टांग की शाखाएं सारे देश में फैल गईं। उस सर्वमान्य राष्ट्रीय संस्था की ताकत बहुत बढ़

गई। किन्तु अभी तक उसके सम्मुख कोई राजनैतिक प्रोग्राम नहीं था। राष्ट्रीय-क्रान्ति के नेता, खुद सन-यात-सेन के सामने क्रान्ति की कोई खास तस्वीर नहीं थी। उनके विचार भी धुंधले थे।

इसी दरम्यान में चीन में एक और भी क्रान्तिकारी ताकत का विकाश हुआ। देश में विदेशी पूंजी से बड़े बड़े मिल और कारखाने खुल चुके थे। इस औद्योगिक विकास (industrialisation) के कारण वहां एक ऐसे वर्ग—मजदूर श्रेणी—की उत्पत्ति हो चुकी थी जो पूंजी-वाद और साम्राज्यवाद का सब से बड़ा दुश्मन है। इस मजदूर-आन्दोलन से चीन का राष्ट्रीय मोर्चा और भी अधिक शक्तिशाली हो गया। जन-आन्दोलन ने ऐसा उग्र-रूप धारण किया कि विदेशी-साम्राज्यवादी शक्तियां घबड़ा उठीं। मजदूर-आन्दोलन का एक नतीजा और यह हुआ कि वहां समाजवादी विचारधारायें बह चलीं।

मजदूर-आन्दोलन के रहनुमा और उसके कम्यूनिस्ट फिलासफर थे श्री चेन-टू-हेसू। वे पेकिंग के राष्ट्रीय-विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे। उनका नौ-जवानों पर बड़ा प्रभाव था। उन्होंने मजदूर श्रेणी का स्वागत किया। अपने अखबारों के जरिये उन्होंने कौमी आन्दोलन में उसका क्रान्तिकारी महत्व बतलाया। उन्होंने पहली बार चीन के क्रान्तिकारी राष्ट्रीय आन्दोलन का वैज्ञानिक विश्लेषण किया। उन्होंने बतलाया कि "ये विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियां तथा उनकी सहायता करने वाले चीन के War-Lords और बड़े बड़े पूंजीपति ही चीन के वास्तविक शत्रु हैं। जनता के रक्तशोषण में ये परस्पर एक दूसरे की मदद करते हैं। अतएव जनता की स्वतंत्रता

के लिये यह आवश्यक है कि इन देशी और विदेशी जालिमों का अन्त किया जाय। फलत: चीन का साम्राज्य-विरोधी युद्ध वर्ग-संघर्ष की शकल में होगा—एक ओर साम्राज्यवादी शक्तियां और उनके मददगार भूमिपति और दूसरी ओर किसान, मजदूर तथा निम्न मध्यम वर्ग। अतएव राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल बनाने के लिये किसान और मजदूरों के संगठन की बेहद आवश्यकता है।" इस प्रकार 'चेन' ने चीन के जन-आन्दोलन का एक खास क्रान्तिकारी रूप दिया। १९२० में उनकी रहनुमाई में चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई।

राष्ट्रीय-जागृति की हलचल में मजदूरों ने भी कदम बढ़ाया। शंघाई इत्यादि के बड़े बड़े कारखानों में हड़तालें शुरू हुईं जो बुरी तरह से दबा दी गईं। क्यू-मिन-टांग ने मजदूरों के इस जंग में साथ नहीं दिया। नतीजा बुरा निकला। कम्यूनिस्टों और क्यू-मिन–टांग के बीच भेद पैदा हो गया। अब तक तो 'चेन' कम्यूनिस्टों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने को प्रोत्साहित करते थे। उन्होंने इसका प्रचार किया था कि कम्यूनिस्ट राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल होकर ही उसकी धारा को बदल सकते हैं। किन्तु क्यू-मिन टांग की इस हरकत से वे उस राष्ट्रीय संस्था से अलग हो गये और उसे पूंजीपतियों तथा क्रान्तिविरोधी शक्तियों की जमायत बतलाने लगे। कम्यूनिस्टों की यह नीति गलत थी। इससे उनका सम्बन्ध जन-आन्दोलन से टूट जाता। श्री एम. एन. राय की सलाह से कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल को इसमें हस्तक्षेप करना पड़ा। क्यू-मिन-टांग से 'सहयोग' की नीति फिर से कायम हुई।

सहयोग का परिणाम बहुत ही अच्छा हुआ। इतना शक्तिशाली साम्राज्य-विरोधी मोर्चा कायम हुआ कि कैन्टन में मजबूत राष्ट्रीय सरकार की स्थापना हो गई। क्यू-मिन-टांग एक प्रबल शक्तिशाली राष्ट्रीय क्रान्तिवादी संस्था में बदल गया जिससे विदेशी साम्राज्य-वादी शक्तियों को खौफ होने लगा। साम्राज्यवादी आक्रमणों को उन्होंने कई बार सफलता पूर्वक रोका भी। कम्यूनिस्टों के क्यू-मिन-टांग में शामिल होने का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि क्यू-मिन-टांग थोड़े से सामन्तों की संस्था नहीं रह गई। वह जनता के स्वार्थों का भी खयाल करने लगी।

उन्हीं दिनों श्री सन-यात-सेन के विचारों में भी खासा परि-वर्तन हुआ। १६२८ में उनकी मुलाकात सोवियट-रूस के प्रति-निधियों से हुई। चीन की आजादी का असल दुश्मन कौन है और वह किस रास्ते स्वाधीन हो सकेगा, इसका सच्चा रूप वह इस बार ही देख सके। उनके सारे विचार बदल गये। प्रजातन्त्रवादी विदेशी शक्तियों की सहानभूति प्राप्त करने की निरर्थक कोशिशें उन्होंने छोड़ दीं और सोवियट रूस को ही उन्होंने एक मात्र चीन का मित्र बतलाया। "साम्राज्यवादी शक्तियों तथा उनके सहायक चीन के युद्ध प्रभुओं (War Lords) का पराजय आवश्यक है यदि चीन को स्वतंत्र होना है"—इसका उन्हें यकीन हो गया। क्यू-मिन-टांग क्रान्तिकारी रास्ते पर, नये ढंग से संगठित करने की जरूरत महसूस हुई जिसमें उन्होंने कम्यूनिस्टों का सहयोग भी कबूल किया। मजदूरों की हड़तालों में उन्होंने सहायता दी। किसानों की मांगों पर

उन्होंने जोर दिया। यही कारण था कि क्यू-मिन-टांग थोड़े ही समय में इतना अधिक शक्तिशाली हो गया कि उन प्रान्तों में भी, जहां बड़े बड़े जालिम सामन्तों (feudal lords) का आधिपत्य था आन्दोलन दबने के बदले बढ़ता ही गया।

कम्यूनिस्टों के लिये क्यू-मिन-टांग में शामिल होकर Democratic Revolution (राष्ट्रीय-प्रजातन्त्र-क्रान्ति) को सफल बनाने की नीति बड़ी हितकर सिद्ध हुई। सन १९२४ में कम्यूनिस्ट पार्टी में ८०० से अधिक सदस्य नहीं थे। वे सदस्य भी अधिकतः विद्यार्थी और मध्यम वर्ग के थे। मजदूरों और किसानों से उनका संसर्ग नहीं था। क्यू-मिन-टांग में शामिल होते ही उनकी संख्या ५४,००० होगई। इसके अलावा Young Communist League (युवक कम्यूनिस्ट संघ) के मेम्बरों की संख्या ३०,००० तक चली गई। Chinese Federation of Labour (अखिल चीनी मजदूर संघ) में २७ लाख से ज्यादा आदमी शामिल थे। निस्सन्देह यह एक असाधारण सफलता थी। राष्ट्रीय-क्रान्तिवादी आन्दोलन में उनका महत्व बहुत ऊँचा हो गया।

चीन की खास परिस्थिति यह थी कि वहां का जन-आन्दोलन राष्ट्रीय प्रजातन्त्र-क्रान्ति (National Democratic Revolution) के आधार पर ही आगे बढ़ सकता था। और, उसके लिये आन्दोलन का नेतृत्व क्यू-मिन-टांग ही कर सकता था। मजदूरों तथा अन्य समाजवादियों को छुड़ा कर, कम्यूनिस्ट पार्टी में सभी शामिल नहीं हो सकते थे। इसलिये कम्यूनिस्टों की, उस राष्ट्रीय-आन्दोलन में भाग लेना और धीरे धीरे उसे अपने रंग से प्रभावित करना, एक

आवश्यक नीति थी। कम्यूनिस्टों का वहां के अन्य साम्राज्य विरोधी शक्तियों से मिल कर राष्ट्रीय-क्रान्ति की सफलता के लिये क्रान्तिवादी मोर्चा तैयार करना ऐतिहासिक आवश्यकता थी। उसके बिना समाजवादी क्रान्ति के लिये अनुकूल परिस्थिति का तैयार होना असम्भव था।

कामरेड राय ने उस समय की परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए अपने चीन सम्बन्धी अपनी एक किताब में यों लिखा है—

"चीन की जनता उस विशाल कान्तिकारी आन्दोलन के लिये इतनी जल्दी संगठित नहीं हो सकती, यदि वहां लोकप्रिय राष्ट्रीय संस्था न होती। और, क्यू-मिन-टांग भी बिना कम्यूनिस्टों के सहयोग (alliance) के जनता का शक्तिशाली और लोकप्रिय संस्था नहीं हो सकता। दूसरी ओर उस साम्राज्य-विरोधी राष्ट्रीय-आन्दोलन में कम्यूनिस्टों को बिना इस क्रान्तिवादी सहयोग (Revolutionary alliance) के, इतनी जल्दी और आसानी से प्रमुख-स्थान प्राप्त नहीं हो सकता। चीन की क्रान्ति के उस परिस्थिति में यह सहयोग एक ऐतिहासिक आवश्यकता थी।"

चीन की १९२७ वाली उस महान क्रान्ति को समझने के लिये इन बातों की जानकारी आवश्यक है।

क्रान्ति के मध्य में—

१६२० में कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल की दूसरी विश्व-सभा हुई। उसमें औपनिवेशिक राष्ट्रों के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण थेसिस स्वीकृत हुई। सभा ने यह तय किया कि—

(१) प्रजातन्त्रीय राष्ट्रों के कम्यूनिस्टों तथा कामगारों को चाहिये कि वे औपनिवेशिक राष्ट्रों की कौमी आज़ादी की लड़ाई में उनकी सहायता करें।

(२) औपनिवेशिक देशों और पराधीन राष्ट्रों के कम्यूनिस्टों का यह फर्ज है कि अपनी कौम के साम्राज्य-विरोधी जंगमें वे वहां के राष्ट्र-वादी धनिकों (bourgeoisie) को भी सहयोग प्रदान करें।

यह फैसला खुद लेनिन की रहनुमाई में हुआ था। इस निर्णय के अनुसार ही चीन के कम्यूनिस्टों को वहां की राष्ट्र-वादी संस्था, क्यू-मिन-टांग में शामिल होने का आदेश किया गया था।

कोमिनटार्न ने यह औपनिवेशिक-थेसिस कबूल तो किया था लेकिन उसके सम्बन्ध में तफ़सील की बातें तय न हो सकी थीं। कारण यह

था कि औपनिवेशिक देशों के सम्बन्ध में किसी को पूरा अनुभव नहीं था। खुद लेनिन से कुछ सदस्यों का मतभेद हो गया था। जिसके फल-स्वरूप कई अंशों में लेनिन को भी अपना विचार बदल देना पड़ा था।*

कोमिनटार्न ने यह अवश्य तय किया था कि औपनिवेशिक देशों (चीन, भारत इत्यादि) के कम्यूनिस्ट साम्राज्य-विरोधी जंग में वहां के राष्ट्रवादियों से सहयोग करें। यह सहयोग कैसा और किस हद तक होगा, इसके सम्बन्ध में कुछ भी फैसला न हो सका था। इसका निर्णय तो उन देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों के बीच ही हो सकता था।

इस सहयोग के पक्ष में लेनिन ने इसलिये राय दी थी कि उससे साम्राज्य-विरोधी जंग को शक्तिशाली बनाया जा सकता था। प्रत्यक्ष है कि यह 'सहयोग' आखिरी ध्येय नहीं था। साम्राज्य-विरोधी जंग के लिये साधन-मात्र था। ध्येय था साम्राज्यवाद के खिलाफ सफल युद्ध। इसलिये 'सहयोग' का अर्थ कठमुल्लापन नहीं होना चाहिये था, क्योंकि किसी खास परिस्थिति में यदि उस सहयोग से साम्राज्य विरोधी मोर्चा कमजोर बनता हो तो उससे क्या लाभ? चीन के कम्यूनिस्ट और उनके रूसी नेताओं (Borodin, Chen, etc.) ने इन बारीकियों को समझने में भूल की। उन्होंने साधन को ही उद्देश्य समझ लिया। इस भूल के लिये चीन को बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी।

कोमिनटार्न के आदेश से चीन के कम्यूनिस्ट क्यू-मिन-टांग में शामिल हुए थे। क्योंकि इससे वहां के उस विशेष परिस्थिति में साम्राज्य-

* देखिये पृष्ठ ८९—९०।

विरोधी युद्ध की सफलता के लिये कम्यूनिस्टों तथा राष्ट्र-वादी-धनिकों का सहयोग आवश्यक था। किन्तु यह सहयोग साधन-मात्र था। चीन के बड़े-बड़े राष्ट्र-वादी युद्ध प्रभुओं, पूंजीपति तथा सामन्तों का सहयोग प्राप्त करना उसका कोई लक्ष्य या सिद्धान्त नहीं था। हां, उनका सहयोग वहीं तक कबूल किया जा सकता था जहां तक चीन की आजादी के लिये सहायक सिद्ध हो सके।

रूसी नेताओं के नेतृत्व में चीन के कम्यूनिस्टों ने इस सहयोग को ही अपना प्रधान कार्य्यक्रम समझ लिया। यह भयंकर भूल थी। वे हर बात में वहां के युद्ध प्रभुओं की मदद करने लगे। यहां तक कि जन-आन्दोलन की परवा न कर, जनता की मांगों की कीमत चुका कर भी, वे राष्ट्र-वादी धनिकों की सहानुभूति और सहयोग कायम रखना चाहते थे। तुर्रा यह कि वे लेनिन के शब्दों का हवाला देते थे। बेचारा लेनिन अपने अन्ध-भक्तों के इन कारनामों से अपनी कब्र में भी कांप उठा होगा!

इसमें सन्देह नहीं कि क्यू-मिन-टांग में शामिल होतेही कम्यूनिस्टों की ताकत बहुत बढ़ गई। राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन में उनलोगों का बहुत ऊँचा और महत्वपूर्ण स्थान हो गया। जनता में उनका प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता ही गया। क्यू-मिन-टांग में उनकी ताकत यहां तक बढ़ी कि १९२८ में Reorganization Conference (पुनर्सङ्गठन सम्मेलन) के मौके पर भी उनकी खास विजय हुई। * इतना

---

* १९३४ में क्यू-मिन-टांग का Re-organisation Conference हुआ। इसमें वे राष्ट्रवादी सरमायेदार कम्यूनिस्टों की बढ़ती ताकत से

होने पर भी योग्य नेतृत्व की कमी के कारण क्रान्ति सफल न हो सकी।

क्रान्ति-आन्दोलन प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु इसकी सफलता के लिये दो अवस्थाओं की जरूरत होती है—सामाजिक वा राजनैतिक बन्धनों से उत्पन्न जनता में बेचैनी (objective conditions) और उस बेचैनी को शक्तिशाली जन-आन्दोलन में परिणत करने के लिये योग्य नेतृत्व (Subjective Factors)। चीन में इस योग्य नेतृत्व की कमी थी। कोई भी चीन के कम्यूनिस्ट नेता अनुभवी नहीं थे। एकाएक उस महान क्रान्ति की जिम्मेदारियां संभालना कोई आसान काम नहीं था। आन्दोलन की रहनुमाई का काम तो कोमिनटार्न का था, किन्तु उसके बड़े-बड़े अनुभवी नेता, रूस के ही कार्य्यों में इतने बंधे थे कि उन्हें चीन की ओर ध्यान देने की फुर्सत न थी। कुछ थोड़े नौजवान

भयभीत होकर क्यू-मिन-टांग में उनकी संख्या सीमित कर देना चाहते थे। जब वे इस प्रयत्न में असफल हुए तो कम्यूनिस्टों के खिलाफ उन्होंने खुली बगावत कर दी जिसका फल यह हुआ कि क्यू-मिन-टांग में भेद हो गया। राष्ट्रवादी धनिकों ने अलग क्यू-मिन-टांग कायम किया। वह श्वेत क्यू-मिन-टांग (White-Kui-Min-Tang) कहलाया। पहले क्यू-मिन-टांग का नाम 'लाल-क्यू-मिन-टांग' पड़ा। श्री सन-यात-सेन इसी के साथ थे। श्वेत क्यू-मिन-टांग वालों का यह प्रचार था कि कम्यूनिस्ट लोग राष्ट्रीय आन्दोलन में फूट पैदा कर रहे हैं। आगे चलकर उन लोगों ने किसान और मजदूर आन्दोलन को हर प्रकार से दबाने की कोशिश की।—लेखक।

रूसी नेता चीन भेजे तो गये किन्तु उन्हें पूर्वीय-देशों के आन्दोलनों का कुछ भी अनुभव नहीं था। वे बिलकुल अनभिज्ञ थे। उनलोगों ने अन्दोलन को और भी बिगाड़ दिया।

इन रूसी नेताओं के सन्मुख कुछ कठिन उलझने भी थीं जिन्हें वे हल कर न सके। चीन के क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन तथा वहां की कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता की हैसियत से उन्हें चीन के सामन्तों की बढ़ती हुई ताकत को रोकना था। किन्तु वे इस नेहायत जरूरी काम में हिचकते थे; क्योंकि उनकी दूसरी हैसियत रूसी कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य की थी और इसलिये उन्हें रूस की सोवियट सरकार के स्वार्थों का भी ध्यान रखना पड़ता था। सोवियट सरकार तथा कैन्टन की राष्ट्रवादी सरकार के बीच 'सन्धि' कायम थी। उसके पहले पेकिंग की प्रगति-विरोधी सरकार के साथ भी सोवियट की सन्धि हो चुकी थी जिसके फल-स्वरूप सोवियट ने चीन के कई हिस्सों से अपना अधिकार हटा लिया था जो रूस की ज़ारशाही के समय में प्राप्त था। अतएव सिर्फ राष्ट्र-वादी पूंजीपतियों से ही नहीं, बल्कि फौजी-सामन्तों से भी सोवियट की मित्रता थी। मज़बूर-परिस्थितियों में सोवियट को ऐसा करना पड़ा था। इसके बगैर चीन, सोवियट-रूस के विरूद्ध आक्रमण करनेवाली साम्राज्यवादी शक्तियों का खतरनाक अड्डा बन जा सकता था।

इन्हीं कारणों से वे राष्ट्रवादी पूंजीपतियों तथा बड़े बड़े सामन्तों से दुश्मनी नहीं चाहते थे, यद्यपि चीन की क्रान्ति की सफलता

के लिये यह आवश्यक था कि पूंजीपतियों तथा सामन्तों की ताकतें सीमित और कमज़ोर कर दी जायं। उन रूसी नेताओं की ये दो हैसियतें परस्पर-विरोधी थीं। किन्तु उन्हें इतना ज्ञान होना चाहिये था कि उन दो विरोधी जिम्मेदारियों के बीच लकीर कहां खींची जाय। उनलोगों ने गलत तरीका अख्तियार किया। युद्ध-प्रभुओं की सहानभूति और मित्रता प्राप्त करने की नीति को ही उन्होंने अधिक महत्व दिया। क्रान्तिवादी प्रोग्राम को काम में लाने से वे हिचकने लगे। उन्होंने क्रान्तिकारी जन-आन्दोलन के वेग को दबाने की कोशिश की।

कम्यूनिस्टों की इन कमज़ोरियों का फायदा उठा कर प्रतिगामी शक्तियां अपनी ताकत मजबूत बनाती गईं। वे तो विदेशी साम्राज्य-वादी शक्तियों की मदद लेकर भी कम्यूनिस्टों को कुचल डालना चाहते थे। मार्च १९२६ में कम्यूनिस्टों के जन-आन्दोलन पर एक भारी धक्का लगा। चांग-काई-शेक * ने अपनी एक नई सरकार की स्थापना की। चांग वास्तव में युद्ध-प्रभुओं और सामन्तों का एजेन्ट था और विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों से बिलकुल मिला हुआ था। वह अपना हेड-कार्टर कैन्टन के क्रान्तिकारी वायुमण्डल से हटा

---

* चांग-काइ-शेक आज भी चीन के सभापति और जेनरल हैं। श्री सन-यात-सेन के मरने के बाद उन्होंने खुलेआम वहां के warlords से मिलकर कम्यूनिस्टों को कुचल डालने की कोशिश की। आरम्भ में कम्यूनिस्टों की मदद से ही वे शक्तिशाली बने थे। सैनिक-शिक्षा उन्होंने मास्को में पाई थी। —लेखक।

कर नानकिंग में ले गया। कम्यूनिस्टों के लिये यह सामयिक इशारा था। उनकी ताकत उस समय तक मजबूत थी। जनता उनके साथ थी। उन्हीं के प्रयत्न से वहां की शक्तिशाली सेना का संगठन हो पाया था जो हर जगह विजय प्राप्त कर चुकी थी। सेना पर भी उनका बहुत प्रभाव था।

इतना होने पर भी कम्यूनिस्ट अपने पुराने खेल में लगे रहे। एक ओर तो तेजी से चांग की फौजी ताकत बढ़ती गई, उसकी सेना शस्त्रास्त्रों से पूरी होती गई और दूसरी ओर किसान और मजदूरों को हथियारों से सर्वथा वंचित रक्खा गया। उन्हें एक भी बन्दूक नहीं दी गई। कम्यूनिस्टों को उस समय भी संभल जाना चाहिये था। लेकिन उनकी मूर्खता का अन्त न था। वे राष्ट्रीय सेनाओं के बीच प्रचार-कार्य्य करने की भी इजाजत नहीं देते थे। उन्हें भय था कि किसान-सैनिकों के अन्दर वर्ग-चेतना पैदा होने से राष्ट्रीय मोर्चा में फूट पैदा होगा। कम्यूनिस्टों के इन भयङ्कर भूलों से उनकी शक्ति कमजोर होती चली गई। उनके प्रभाव का अन्त होने लगा। ऐसा होते ही उनपर चारों ओर से वार होने लगे। इस प्रकार चीन का उगता हुआ शक्तिशाली क्रान्ति-आन्दोलन नीचे ढुलकता नजर आने लगा।

इस नाजुक परिस्थिति पर विचार करने के लिये नवम्बर १९२६ में कोमिनटार्न की कार्य्यकारिणी की बैठक हुई। यह एक महत्वपूर्ण बैठक थी जिसमें सर्व श्री स्टालिन, ट्राट्सकी, एम. एन. राय इत्यादि सब शामिल थे। कामरेड राय उन दिनों कोमिनटार्न

के पूर्वीय-विभाग के प्रधान भी थे। यह सभा उन्हीं के जोर देने पर बुलाई गई थी।

चीन के उलझे प्रश्नों पर कामरेड राय ने अपनी थेसिस पेश की। उन्होंने चीन के कम्यूनिस्टों की नीति का जोरदार खण्डन किया जिसके कारण वहां के क्रान्तिकारी आन्दोलन की ताकत दिनोंदिन कमजोर होती जा रही थी और सामन्तशाही की शक्ति बढ़ रही थी। "जन-आन्दोलन का मूल्य चुकाकर राष्ट्रवादियों से सहयोग" की नीति का उन्होंने विरोध किया। इसी कारण इन्टरनैशनल के बहुत से सदस्य उन्हें left communist (वाम-पक्षी कम्यूनिस्ट) कहने लगे थे और उनपर यह आरोप लगाया जाने लगा था कि वे Leninism (लेनिनिज्म) को revise (पुनरावृत्ति) कर रहे हैं।

उस मौके पर ट्राट्स्की और राय के बीच गर्मागर्म बहस छिड़ गई थी। चीन के बिषय में दोनों के मत दो थे। कमेटी ने राय की थेसिस ही कबूल की। ट्राट्स्की का मत यह था कि "कम्यूनिस्ट पार्टी क्यू-मिन-टांग से सारा सम्बन्ध तोड़ ले और सोवियट की 'पुकार' पर आन्दोलन को आगे बढ़ाया जाय। राष्ट्रवादियों से सारा सम्बन्ध तोड़ लिया जाय। क्रान्तिवादी आन्दोलन का संचालन पूर्ण कम्यूनिस्ट प्रोग्राम पर हो।" ट्राट्सकी की यह ultra-leftist नीति कमेटी को नामंजूर हुई।

सभा ने वोरोडिन * के अवसरवादी (Opportunist) तरीकों को भी गलत ठहराया और उनकी निन्दा की। वोरोडिन

* मिकाएल बोरोडिन रूसी कम्यूनिस्ट थे। आन्दोलन के आरम्भ में ही वह इन्टरनैशनल की ओर से चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी के नेता बना

के नेतृत्व पर यह अपराध लगाया गया कि चीन के कम्यूनिस्ट उनकी रहनुमाइ में वहां की किसान-क्रान्ति का वेग रोक रहे हैं और वहां के युद्ध-प्रभुओं की सहानभूति प्राप्त करने के लिये गन्दी नीति अख्तियार किये हुए हैं।

गर्मागर्म वहस के बाद कामरेड राय की थेसिस ही मंजूर हुई। उनकी दलीलें अटूट साबित हुईं। थेसिस के कुछ अंशों से आरम्भ में, स्टालिन असहमत थे। वह Nationalisation of land (जमीन का राष्ट्रीय-करण) का प्रोग्राम उपयुक्त नहीं समझते थे। लेकिन राय की बहस के बाद स्टालिन ने कामरेड राय के कार्य्यक्रम और तरीकों को बिलकुल कबूल कर लिया। कमेटी ने यह तय किया कि राय के बतलाये तरीकों पर ही चीन का क्रान्ति-आन्दोलन संचालित हो।

कमेटी-मीटिंग में उसी दम स्टालिन का यह प्रस्ताव आया कि कम्यूनिस्ट इन्टरनेशनल की ओर से खास प्रतिनिधि बनाकर कामरेड राय को चीन भेजा जाय। स्टालिन ने बतलाया कि इस गंभीर परिस्थिति में जब चीन के कम्यूनिस्टों की गलत नीति से वहां की हालत नाजुक हो चली है, कामरेड राय ही ऐसे व्यक्ति हैं

कर भेजे गये थे। उन दिनों चीन में उनकी बड़ी ख्याति थी। सामन्तों तथा वहां के राष्ट्रवादी धनिकों से किसी भी मुल्य पर सहयोग कायम रखने की नीति के वे समर्थक थे जिसका कोमिनटार्न की कार्य्य-कारिणी ने विरोध किया था। बोरोडिन के सम्बन्ध में आगे भी लिखा गया है।—लेखक

जो उस राष्ट्रीय क्रान्ति को ठीक रास्ते पर संचालित कर सकते हैं— कमेटी का फैसला भी यही हुआ।

कोमिनटार्न की कार्य्यकरिणी से स्वीकृत कामरेड राय की थेसिस का सारांश यों है—

(१) चीन की उस खास परिस्थिति में राष्ट्रीय-गणतन्त्र क्रान्ति (Bourgeois Democratic Revolution) का ही मौका (स्टेज) है। फलत: सिर्फ कम्यूनिस्ट नेतृत्व में ही वहां की क्रान्ति सफल नहीं हो सकती।

(२) राष्ट्रीय-क्रान्ति की सफलता के लिये मजदूर, किसान तथा निम्न मध्यम श्रेणी के संयुक्त मोर्चे (United front) की आवश्यकता है।

(३) राष्ट्रवादी पूंजीपति, सामन्तों तथा Warlords की सहायता प्राप्त करने के लिये किसान-क्रान्ति (Agrarian Revolution) रोका नहीं जा सकता क्योंकि क्रान्ति की बुनियाद किसान-आन्दोलन है।

(४) मजदूर साम्राज्य-विरोधी युद्ध में मोर्चा लेने के लिये हर वख्त तैयार रहें।

(५) कम्यूनिस्ट पार्टी वूहान (Wuhan) की सरकार *

---

* वूहान की सरकार चांग-काई-शेक के खिलाफ थी। उसे क्रान्ति के लिये उपयोग किया जा सकता था। वूहान सरकार को रेडिकलों तथा क्रान्तिवादी जनता का सहयोग प्राप्त था। सारा चीन उससे सहानुभूति करता था। सरकार के एक मिनिस्टर तो खुद कम्यूनिस्ट थे।

की मदद करे और उसे Democratic Dictatorship (डेमोक्रैटिक-डिक्टेटरशिप) * में परिणत करदे ।

× × × ×

स्टालिन के बार-बार जोर देने पर राय ने चीन जाना स्वीकार कर लिया। उनकी यात्रा के लिये ख़ास प्रबन्ध होने लगा। वे कब और कैसे रवाना होंगे, यह बिलकुल गुप्त रक्खा गया। एक स्पेशल जहाज पर, जिसकी रक्षा के लिये साथ साथ हवाई जहाजें उड़ रही थी, वे चीन के लिये रवाना हो गये।

जहाज जब बीच रास्ते में था, 'बेतार' के जरिये यह मालूम हुआ कि जिस बन्दर पर उनका जहाज रुकनेवाला था, वहां के ब्रिटिश

चांग की क्रान्ति-विरोधी ताकतों का मुकाबला इसी सरकार को मजबूत बना कर किया जा सकता था।

† Democratic Dictatorship (डेमोक्रैटिक डिक्टेटरशिप):—डिक्टेटरशिप किसी खास व्यक्ति या श्रेणी के एकाधिकार को कहते हैं। जैसे जर्मनी का डिक्टेटर है हिटलर, और इटली का मुसोलिनी। यूरोप के प्रजातन्त्रवादी देशों में पूंजीवादी श्रेणी की डिक्टेटरशिप है और रूसमें मजदूर वर्ग की। कामरेड राय का मत है कि इस साम्राज्यवादी युग में औपनिवेशिक देशों की क्रान्ति के फल-स्वरूप किसी एक खास श्रेणी की डिक्टेटरशिप कायम नहीं हो सकती। यह डिक्टेटरशिप नये रंग का होगा। यह सारे शोषित वर्गों—किसान, मजदूर, निम्न मध्यम श्रेणी—की संयुक्त डिक्टेटरशिप होगी। यह सिद्धान्त डेमोक्रैटिक-डिक्टेटरशिप के नाम से प्रसिद्ध है। —लेखक।

अधिकारी राय की गिरफ्तारी की तैयारियां कर रहे थे। उन लोगों में एक ख़ास हलचल थी। हुआ भी वैसा ही। जहाज के पहुंचते ही उसकी तलाशी ली गई। किन्तु राय तो गायब थे। अफसरों को बड़ी निराशा हुई। राय पहले ही चुपचाप दूसरे जहाज में हटा लिये गये थे। रूसी सरकार की ओर से इसका ख़ास प्रबन्ध था। राय १९२७ के आरम्भ में किसी प्रकार सकुशल चीन पहुंच गये।

उस वक्त तक चीन की हालत बिलकुल खराब हो चुकी थी। वोरोडिन की नीति से सारा खेल बिगड़ चुका था। सफलता की उम्मीद कम थी। शीघ्रता पूर्वक किसी निर्णयात्मक (decisive action) कार्य्य से ही परिस्थिति बच सकती थी।

चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी ने कोमिनटार्न की नई नीति को नाम-मात्र को ही मंजूर किया था। उसके नेताओं को यह नया तरीक़ा पसन्द न था। वोरोडिन की यह ख़ास जिद्द थी कि उनकी पुरानी नीति ही ठीक है। उन्होंने कोमिनटार्न के केन्द्रीय कार्य्य-कारिणी (मास्को) के पास इस नई नीति का तार द्वारा विरोध किया था। उनका तर्क यह था कि "चीन की राष्ट्रीय-सेना के सारे अफसर धनिक-श्रेणी के हैं। अतएव यदि किसान-क्रान्ति की नई नीति काम में लाई गई तो फौज राष्ट्रीय-सरकार से वगावत कर देगी।"

यह एक निराधार दलील थी। फौज के अफसरों के प्रति सहानु-भूति का कोई कारण नहीं होना चाहिये था। और फौज के सिपाही तो किसानों के बच्चे थे। वे किसान-क्रान्ति के प्रोग्राम के विरुद्ध

कैसे लड़ते ? वे तो हर समय उसका स्वागत करने को लालायित थे। किन्तु असलियत यह थी कि बोरोडिन की सहयोग-नीति से* उनके हाथ बेतरह बंध गये थे।

कैण्टन में पहुंच कर राय ने विचित्र स्थिति देखी। कम्यूनिस्ट पार्टी सीधा मोर्चा लेने को तैयार न थी। खुद चांग-काई-शेक के विरुद्ध हमला करने में भी हिचक रही थी। इसका फायदा उठाकर चांग-काई-शेक तथा चीन की सारी क्रान्ति-विरोधी शक्तियां अपने मोर्चे को मजबूत करने की तैयारी में संलग्न थीं। कम्यूनिस्टों को कुचलने के लिये उनका विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों से भी समझौता हो चुका था। राष्ट्रवादियों की ओर से खुलेआम क्रान्ति-आन्दोलन का विरोध आरम्भ था। जिस समय शंघाई के मज़दूर अन्तर्राष्ट्रीय साम्राज्य-वाद के खिलाफ बहादुरी से लड़ रहे थे, चांग की फौज बैठी तमाशा देख रही थी। चांग के प्रान्त क्यांग-सी (Kiang-Si) में किसानों पर हर प्रकार का जुल्म और अत्याचार हो रहा था।

चांग के इस रुख का कारण यह था कि वह इस क्रान्तिवादी आन्दोलन को कुचल देना चाहता था और चाहता था क्यू-मिन-टांग में एक भी कम्यूनिस्ट न रहे। इसलिये ही उसने 'वूहान-सरकार' से यह मांग पेश की थी कि वह किसान और मजदूर संगठनों को तोड़ दे वरना उनके राष्ट्रीय-सरकार पर कब्ज़ा कर लिया जायगा।

ऐसी विषम अवस्था में राय की वह नीति जिसे कोमिनटार्न ने चीन के लिये मंजूर किया था, जल्द से जल्द काम में आना बहुत ही आवश्यक

था क्योंकि जितनी देरी हो रही थी, उसका फायदा उठा कर क्रान्ति-विरोधी शक्तियां मजबूत हो रही थीं। किन्तु इस नई नीति को कार्य्यान्वित करने के लिये बोरोडिन तैयार न थे। अपनी हरकतों से वे नई नीति को काम में लाने से रोकने लगे। स्थिति अच्छी न थी। Decisive action की आवश्यकता थी। चांग का विरोध करना बहुत जरूरी था, क्योंकि दिनोंदिन उसकी शक्ति बढ़ रही थी। बोरोडिन की बेरुखी देखकर राय ने कैण्टन के कम्यूनिस्टों की मीटिंग बुलाई और उन्हें इस बात पर राजी किया कि कम्यूनिस्टों की ओर से एक खुला मेनिफेस्टो प्रकाशित हो जिसमें चांग से उसके काले कारनामों के लिये कैफियत तलब की जाय। कामरेड राय ने एक और सुझाव पेश किया। चांग के क्रान्ति-विरोधी नेतृत्व को गिराने के लिये उन्होंने उस अवसर के लिये एक उपयुक्त स्लोगन (पुकार) की सलाह दी। स्लोगन था—'हमारे नेता हैं वांग-ची-वई। उन्हें चीन बुला लिया जाय' (Call back Wang-Chie-Wei)। मेनिफेस्टो में इस पुकार पर अधिक जोर दिया गया। मेनिफेस्टो का खास मकसद था—क्यू-मिन-टांग के उन सारे उग्र-राष्ट्रवादियों को एक मंच पर संगठित कर देना जो चांग-काई-शेक के क्रान्ति-विरोधी कार्य्यों के खिलाफ हों।

राय की यह चाल बड़ी सुन्दर और परिस्थिति के अनुकूल साबित हुई। जनता ने मेनिफेस्टो का स्वागत किया। चारों ओर चांग-विरोधी सभायें और प्रदर्शन होने लगे। कैण्टन और वूहान प्रदेशों में खुद राय इस आन्दोलन का संचालन कर रहे थे।

चांग-विरोधी आन्दोलन के साथ साथ "Call back Wang-Chi-Wei" का स्लोगन सचमुच बड़ा उपयुक्त था। 'वांग' चीन के जवाहरलाल थे। उन्हें चीन की सारी प्रगतिशील राष्ट्रवादी जनता चाहती थी। १६२५ में डा० सन-यात-सेन की मृत्यु के बाद राष्ट्रवादियों के नेता वे ही समझे जाते थे। चांग-काई-शेक तथा प्रगति-विरोधी अन्य शक्तियों के बढ़ते हुए जोर के कारण उन्हें निर्वासन (यूरोप) में रहना पड़ रहा था। चांग के विरोध के लिये वांग का ही नेतृत्व जोरदार हो सकता था क्योंकि वे लोकप्रिय नेता थे।

इसी बीच में वूहान सरकार, टांग-शिन-ची और फेंग के साथ मिलकर, चांग-काई-शेक के खिलाफ फौजी आक्रमण करना चाहती थी। यह एक खतरनाक चाल थी। राय ने इस विचार का विरोध किया क्योंकि फेंग भीतर से चांग से मिला हुआ था और टांग-शिन-ची अवसरवादी था। वह चांग-विरोधी कार्य्यों में इसलिये दिलचस्पी रखता था कि वह चीन का जेनरल बनना चाहता था और चांग के पतन के बाद ही उसे वह पद नसीब हो सकता था।

फौजी हमलों का विरोध करने में राय का मतलब कुछ और गहरा था। वूहान सरकार कम्यूनिस्ट नहीं थी। निश्चित था कि हमले की तैयारी के लिये राष्ट्रीय सेना की फौजी-ताकत बढ़ाई जाती जो अन्त में क्रान्तिवादी जन-आन्दोलन को कुचलने में काम आ सकती थी और क्रान्ति- विरोधी शक्तियों

का हथियार साबित हो सकती थी। उस हमले का दूसरा नतीजा यह होता कि लड़ाई का बहाना दिखला कर देश के भीतर बढ़ती हुई किसान-क्रान्ति की लहर, वर्ग-युद्ध का दौर-दौरा, साम्राज्यविरोधी युद्ध का वेग रोक दिया जाता। क्योंकि दुश्मनों से मुकाबला करने के समय सरकार अपने प्रान्त के भीतर अशान्ति बरदाश्त नहीं कर सकती थी। इन्हीं कारणों से वह फौजी हमला क्रान्ति के लिए बिलकुल खतरनाक साबित हो सकता था।

अतएव राय ने एक दूसरी स्कीम पेश की। उनका मत था कि वूहान सरकार के 'हूपे' (Hupeh) और 'हुनान' (Hunan) प्रान्तों को क्रान्तिवादी ढंग से मजबूत किया जाय। वहां से सारे क्रान्ति-विरोधी प्रभावों का खात्मा कर दिया जाय। अपने इस खास अड्डे को मजबूत बना कर क्वांग-टांग और क्वांग-सी प्रान्तों में क्रान्ति-आन्दोलन फैलाया जाय। उन प्रान्तों की जनता की राजनैतिक-चेतना बहुत बढ़ी हुई थी। लाखों कार्य्य-कर्ताओं और किसानों की जमायत वहां क्रान्ति के लिये तैयार बैठी थी। इस नीति से वूहान-सरकार की बुनियाद क्रान्तिवादी ढंग से मजबूत हो जाती। उन प्रान्तों पर क्रान्तिवादियों का प्रभाव जमते ही शंघाई * चारो ओर से घिर जाता, जिससे वहां अन्त-

* उन दिनों शंघाई में एक दिलचस्प घटना हो गई थी। क्रान्ति के भय से वहां की विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों ने बहुत बड़ी सेना इकट्ठी कर ली थी। शंघाई के बन्दर पर फ्रांस की सरकार की ओर से ९,०००

राष्ट्रीय साम्राज्यवादी शक्तियों तथा चांग की सम्मिलित ताकत की हार निश्चित थी। फिर लुंघाई रेलवे तथा वहां की दोनों ट्रङ्क लाइनों पर अधिकार करके, पेकिंग और यांगटिसि को सैनिक अड्डा बनाया जा सकता था। उससे चांग की शक्ति का बिलकुल खात्मा हो जाता।

क्रान्ति-आन्दोलन को असफलता से बचाने के लिये उस परिस्थिति में और कोई उम्दा उपाय था ही नहीं। चीन के सम्बन्ध में लिखनेवाले बड़े-बड़े विद्वानों का मत तो यह है कि वही एक-मात्र रास्ता था जिससे सफलता की उम्मीद की जा सकती थी। किन्तु वोरोडिन अन्धा हो गये थे। वह इस फिक्र में पड़े थे कि कहीं क्यू-मिन-टांग में फूट न हो जाय। उन्हें इसकाखयाल न था कि उनकी गलत नीति से आन्दोलन को कितना धक्का लग रहा है। असलियत ये थी कि वूहान में कम्यूनिस्टों के लिये इतना अनुकूल मौका था,

लड़ाकू जहाजों का प्रबन्ध हुआ था। राय को ज्योंही ये बात मालूम हुई, उन्होंने जहाज के सैनिकों तथा अन्य अफसरों से सम्बन्ध स्थापित किया। फल यह हुआ कि सैनिकों ने चीन के स्वाधीनता-संग्राम का महत्व समझा। दूसरे दिन शाम को जब वे जहाजी सैनिक फ्रांस का राष्ट्रीय-गान (National Anthem) गाने को इकट्ठे हुए, उन्होंने उसके बदले मजदूरों का अन्तर्राष्ट्रीय-गान (Internationale) शुरु कर दिया। इस पर उनके अफसरों के क्रोध की सीमा न रही। उन्हें हुक्म हुआ कि वे जहाज पर लौट जायं। उत्तेजित सैनिकों ने अपने अफसरों को ही गिरफ्तार कर लिया। —लेखक

उनकी ताकत इतनी जबरदस्त थी कि बिना उनकी मदद से वूहान की राष्ट्रीय-सरकार कुछ भी नहीं कर सकती थी। अतएव आवश्य-कता यह थी कि राष्ट्रीय-सरकार से कम्यूनिस्ट अपना कार्य्यक्रम मन-वाते। बोरोडिन ने उल्टा किया। बिना किसी शर्त के उन्होंने चांग-विरोधी फौजी हमले का साथ दिया। यह सबसे बड़ी गलती थी।

इसका नतीजा वही हुआ जो कामरेड राय ने बतलाया था। चांग-विरोधी युद्ध की तैयारियां होते ही वूहान सरकार ने अपने प्रदेश में सारे क्रान्तिकारी आन्दोलनों पर रोक लगा दी। मजदूरों को हड़ताल करने का अधिकार न रहा। राष्ट्रीय-सरकार की ओर से यह कहा जाने लगा कि हड़ताल से ट्रांसपोर्ट और तिजारत पर ऐसा धक्का लगेगा कि राष्ट्रीय-सेना की आवश्यकताएं पूरी नहीं हो सकेंगी। फौज का खर्च पूरा करने के लिये बड़े बड़े लोन लिये गये और नये-नये टैक्स भी बढ़ाये गये। जनता घबड़ा उठी। उसपर भी राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय इकोनोमी के नाम पर मजदूरों के काम के घंटे बढ़ा दिये गये। उनकी मजदूरी बिलकुल कम कर दी गई और उनसे कहा गया कि राष्ट्रीय-युद्ध के समय में प्रत्येक चीनी नागरिक का फर्ज है कि कम दाम पर ज्यादा से ज्यादा काम करे। किसानों को मजबूर किया गया कि वे अपने यहां अनाज इकट्ठा न कर, कम कीमत पर उसे बेच दें ताकि समय पर सैनिकों को रसद मिल सके। इस प्रकार वूहान की राष्ट्रीय सरकार, किसान और मजदूरों के क्रान्तिकारी जोश की कतई परवा न कर उन्हें कमजोर बनाती चली गई। सरकार ने बिदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों के विरुद्ध

आन्दोलनों पर भी रोक लगा दी। वे कहने लगे कि चांग के खिलाफ युद्ध के समय में राष्ट्रीय-सरकार विदेशी ताकतों के साथ अपना सम्बन्ध तीखा नहीं बना सकती।

इसका परिणाम बड़ा भयंकर हुआ। वूहान का वह शक्तिशाली जन-आन्दोलन बिलकुल कमजोर हो गया। जनता का कम्यूनिस्टों में विश्वास जाता रहा क्योंकि राष्ट्रीय-सरकार को खुश करने के लिये खुद वोरोडिन किसान-क्रान्ति के वेग को रोक रहे थे। सारे प्रदेश के किसान और मजदूर बेचैन थे। कितने ज़गह वोरोडिन के मना करने पर भी वलवे हो गये। उस आन्दोलन को और भी शक्तिशाली बनाने के बदले, राष्ट्रीय सरकार का कठपुतला बन, वहां के कम्यूनिस्ट, वोरोडिन की रहनुमाई में, उस क्रान्तिकारी आन्दोलन का गतिरोध कर रहे थे।

इधर जन-आन्दोलन तो कमजोर हो ही गया, युद्ध के समय में पूंजीपतियों का बड़ा फायदा हुआ। उन्होंने अपनी ताकत बना ली। चांग के खिलाफ लड़ाई का भी अच्छा नतीजा नहीं निकला। फेंग और टांग ने ठीक मौके पर धोखा दिया। कैण्टन की सारी सेना तहस-नहस हो गई। इसका फल यह हुआ कि चारो ओर खुलेआम किसान-आन्दोलन के विरुद्ध जुल्म और अत्याचार की चक्की चल पड़ी। हूनान प्रान्त में तो जन-आन्दोलन को बिलकुल कुचल डाला गया।

वोरोडिन को अब भी संभलना चाहिये था। हूनान प्रान्त के स्वायत शासन तथा पुलिस विभाग के मिनिस्टर, टाम-पिन-

शान कम्यूनिस्ट थे। राय का प्रस्ताव था कि 'वे गांवों में जाकर किसान-क्रान्ति के वेग को और भी तीव्र कर दें। हर जगह के किसान-सभाओं को अपने-अपने क्षेत्र का पूरा राजनैतिक अधिकार तथा पुलिस ड्यूटी का हक दे दिया जाय।' निश्चय ही इस चाल से सारी परिस्थिति बदल जाती। कम्यूनिस्ट-मिनिस्टर इसे आसानी से कर भी सकते थे। किन्तु वोरोडिन की सलाह से उन्होंने उल्टा ही किया।

स्थिति बड़ी भयंकर हो गई। क्रान्ति-विरोधी शक्तियों का खुला ताण्डव आरम्भ हुआ। खुद क्यू-मिन-टांग जन-आन्दोलन को कुचलने पर आमादा हो गई। ऐसी हालत में धनिकों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिये जन-आन्दोलन के वेग को रोकना, सरासर कम्यूनिस्ट नीति के प्रतिकूल था। वह जनता के स्वाधीनता-संग्राम के साथ दगा करना था। किन्तु वोरोडिन अपने जिद्द पर अड़ा था।

उस भीषण परिस्थिति में भी राय ने क्रान्ति को बचाने की आखिरी कोशिश की। वोरोडिन की नीति की निस्सारता बतलाते हुए उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि (१) 'अल्टिमेटम' के रूप में क्यू-मिन-टांग को एक खुली चिट्ठी लिखी जाय जिसमें जन-आन्दोलन के खिलाफ उसकी अनुचित और विरोधात्मक कारवाइयों का वर्णन हो। (२) कम्यूनिस्ट पार्टी अपने स्वतंत्र नेतृत्व में जन-आन्दोलन को संचालित करने की जिम्मेदारी ले ले।

इसके लिये उन्होंने एक खास कार्य्यक्रम पेश किया—

(१) कम्यूनिस्टों और उग्रवादियों के नेतृत्व में शीघ्रता से एक फौज तैयार करके चांगशा पर चढ़ाई की जाय।

(२) हनयांग के शस्त्रागार के कारखाने में हड़ताल, जिसकी मांग यह हो कि कारखाने के बने बन्दूकों तथा हर युद्ध-सामग्रियों का २५% भाग मजदूर-यूनियन के हवाले किया जाय जिससे वे क्रान्ति-विरोधी आक्रमणों से अपनी रक्षा कर सकें।

(३) शस्त्रागार के कारखाने में काम करनेवाले मजदूरों की मांगों का समर्थन करने, कम्यूनिस्ट पार्टी की खुली चिट्ठी की ताइद करने तथा इस मांग को पेश करने के लिये कि क्यू-मिन-टांग और राष्ट्रीय-सरकार तुरन्त ही चांगशा के क्रान्ति-विरोधी बागियों को उखाड़ फेंकने के लिये किसानों को आदेश करे, एक विराट प्रदर्शन का संगठन हो।

(४) प्रदर्शन के मांगों को प्राप्त करने के लिये आम हड़ताल और अन्त में शस्त्रागार और उसके कारखाने पर कब्जा करके खुली सशस्त्र-क्रान्ति का एलान कर दिया जाय।

राय ने यह भी बतलाने की कोशिश की कि ज़रा भी देर करने से काम खराब हो जायगा। किन्तु बोरोडिन और उसके साथी, कम्यूनिस्ट नेताओं को उस राह पर चलना मंजूर न था। उनमें इतनी पस्त-हिम्मती आ गई थी कि इस कार्य्यक्रम को वह असम्भव बतलाने लग गये थे। उनकी कायरता इतनी बढ़ी कि कोमिनटार्न के विशेष प्रतिनिधि श्री एम. एन. राय के आदेशों की परवा न कर उन लोगों ने क्यू-मिन-टांग की सलाह कबूल की। परिस्थिति और भी बिगड़ गई। मजदूर-संघों के स्वयं सेवक दल (Volunteer Corps) बन्द कर दिये गये। Young Pioneers (उग्रवादी नौजवान दल)

की लाठियां तक छीन ली गई। श्रेणी-संग्राम को हर प्रकार से गैर-कानूनी करार कर दिया गया। ये सब बातें कम्यूनिस्टों की मदद से हो रही थी। निर्लज्जता की सीमा यहीं तक नहीं रही। खुद मजदूर यूनियन की ओर से ऐसे को सजा देने की व्यवस्था की गई जो हड़ताल वा इसी प्रकार के किसी अन्य काम में किसी प्रकार की सहायता करें। फल यह हुआ कि जन-आन्दोलन की रीढ़ टूट गई। दुश्मनों की बन आई। विदेशियों के हाथ मजबूत हो गये।

बिचित्र तमाशा था। बोरोडिन को न स्थिति की गंभीरता का ख्याल था और न कोमिनटार्न के साफ साफ आदेशों की परवाह। कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के खास और प्रधान प्रतिनिधि (एम. एन. राय) के आदेशों के सर्वथा प्रतिकूल वह मनमानी कर रहे थे। उनके साथी चीन के अन्य कम्यूनिस्ट नेताओं में भी ऐसी पस्त-हिम्मती आ गई थी कि राय के उस साहसी प्रोग्राम का साथ देने को वे तैयार न थे। खुद पार्टी की ओर से उनकी हरकतें ऐसी हो रही थीं जो उस क्रान्तिकारी कार्य्यक्रम में बाधा पहुंचा रही थी। ऐसी हालत में कामरेड राय के लिये आन्दोलन संभालना गैरमुमकिन था।

आखिरी समय में भी परिस्थिति ऐसी थी कि कम्यूनिस्टों के स्वतंत्र नेतृत्व में भी आन्दोलन बढ़ सकता था। किसानों के भीतर तो इतनी जागृति थी कि कई जगह पार्टी के अनुशासन के खिलाफ उनलोगों ने जमीन पर कब्जा कर लिया था और कानून अपने हाथ में। मजदूर बेचैनी से पार्टी के इशारे की इन्तज़ार कर रहा था। खुद कम्यूनिस्ट पार्टी के आम-सदस्य राय के ही प्रोग्राम को उपयुक्त

मानते थे। कामरेड गैलेन (मार्शल ब्लूचर) * तथा रूस के अन्य बोलशेविक नेता जो चीन भेजे गये थे, इस बात में एकमत थे कि कामरेड राय की नीति ही चीन को बचा सकती है, अन्यथा क्रान्ति-विरोधी शक्तियों की निश्चय ही जीत होगी।

पार्टी के नेताओं का प्रतिगामी और कमज़ोर रूख देखकर राय ने एकबार फिर यह कोशिश की कि कम्यूनिस्ट पार्टी की आम-सभा बुलाई जाय। सबों को यह यकीन था कि आम-सभा कामरेड राय के कार्य्यक्रम को ही मंजूर करेगी। वोरोडिन इससे भयभीत हो गया। उसने आम-सभा होने ही न दिया।

राय के सन्मुख अब और कोई उपाय न था। अवसरवादी नेताओं के अक्षम्य भूल और बेहूदे जिद्द से चीन का वह महान शक्तिशाली इनकलाबी तहरीक अपने दुश्मनों पर बिना किसी प्रकार

* कामरेड गैलेन रूस के एक Metal worker थे। धीरे धीरे वे वहां के बहुत बड़े फौजी कमाण्डर हो गये और मार्शल ब्लूचर (Marshal Blutcher) के नाम से प्रसिद्ध हुए। चीन की क्रान्ति के समय वे रूस की ओर से चीन भेजे गये थे। चीन की राष्ट्रीय सेना का उन्होंने ही संगठन किया था। उन्हीं के सैनिक नेतृत्व में चांग-काई-शेक का North Expedition हुआ था। आदेश पाते ही वे वूहान के राष्ट्रीय-सरकार से मिल गये और कई मौकों पर क्रान्ति-विरोधी आक्रमणों से उन्होंने वूहान को बचाया था। आप राष्ट्रीय-सरकार के सबसे बड़े जेनरल थे। आपका भी कथन है कि वोरोडिन की गलत नीति से ही चीन की क्रान्ति असफल हुई। उन्होंने सदा राय की नीति का ही पक्ष लिया था।—लेखक

की चोट लगाये, सफलता के लिये बिना कुछ प्रयत्न किये, नीचे ढुलकने लगा। राय की सारी कोशिशें फिजूल गई। अन्त में वोरोडिन, चेन प्रभृति नेताओं के गन्दे रूख से तंग आकर कामरेड राय, मार्शल ब्लूचर तथा अन्य रूसी नेताओं के साथ मास्को के लिये रवाना हो गये।

इधर चीन में वही हुआ जो वोरोडिन की गलत नीति का नतीजा हो सकता था। क्रान्ति-विरोधी शक्तियां जोर पकड़ती गई। राय के चीन से चले जाने के बाद वोरोडिन ने और भी मनमानी आरम्भ किया। फल यह हुआ कि सारे कम्यूनिस्ट और किसान आन्दोलन पर क्रान्ति-विरोधी शक्तियों का खुला ताण्डव आरम्भ हुआ। कुछ ही महीनों के बाद सारे कम्यूनिस्ट पार्टी को ध्वंस कर दिया गया। वोरोडिन वगैरह को भी जान ले कर भागना पड़ा। ३५,००० कम्यूनिस्ट तथा किसान-मज़दूर दस रोज के भीतर मार डाले गये। बारेआम सड़कों पर कम्यूनिस्ट होने के सन्देह में युवतियों तक को शूट किया जाने लगा। अत्याचार और जुल्म का नंगा-नाच आरम्भ हुआ। चांग-काई-शेक की मौजूदा नानकिंग-सरकार की इमारत उन्हीं हजारों किसान और मजदूरों के खून पर खड़ी है।

× × ×

कामरेड राय के सम्बन्ध में स्टालिन के एक टेलिग्राम का किस्सा इन दिनों बड़ा प्रचलित हैं। उसकी हकीकत यों है—

चीन छोड़ने के पहले, जब वोरोडिन की अवसरवादी नीति से क्रान्ति की सफलता की सारी आशाएं खत्म हो चुकी थीं, राय

ने अन्तिम प्रयत्न करने की ठानी। स्थिति ऐसी थी कि चांग-काई-शेक क्यू-मिन-टांग को कम्यूनिस्टों से बिलकुल खाली कर देना चाहता था। ऐसी हालत में जब कम्यूनिस्टों की हस्ती ख़तरे में थी, उनलोगों के लिये उग्र-राष्ट्रवादियों तथा शहर के निम्न-वर्ग के लोगों से ख़ास समझौते की आवश्यकता थी। और, इसके लिये श्री वांग-ची-वई (Wang-Chie-Wie) को अपनी ओर मिला लेना बहुत जरूरी था क्योंकि वांग राष्ट्रवादी जनता में बहुत ही लोकप्रिय थे।

वांग की लोकप्रियता का कारण यह था कि वे श्री सन-यात-सेन के विश्वास पात्र और सच्चे साथी थे। वे किसान-आन्दोलन के जबरदस्त हिमायती थे और कम्यूनिस्टों का भी सदा साथ देने को तैयार रहते थे। वस्तुतः डाः सन-यात-सेन के बाद चीन के राष्ट्रीय-आन्दोलन के वे ही नेता माने जाते थे। अपने उग्र-विचारों के कारण उन्हें चांग वग़ैरह के षड़यन्त्र से चीन से निर्वासित रहना पड़ा था। चांग के नेतृत्व को ख़त्म करने के लिये राय ने यही स्लोगन दिया था कि वांग बुला लिया जाय। यह राय ही के आन्दोलन का फल था कि वांग चीन में आये।

अपने निर्वासन के बाद चीन लौटते समय मास्को में वांग को कोमिनटार्न के जिम्मेदार व्यक्तियों से मुलाकात हुई थी। चीन के सामन्तों तथा प्रतिगामी शक्तियों के खिलाफ वांग को हर प्रकार की सहायता देने का वादा भी रूसी अधिकारियों ने किया था। उन्हें कोमिनटार्न की नई नीति के सम्बन्ध में भी आगाह किया

गया था जिसके लिये कामरेड राय खुद चीन भेजे गये थे। यही कारण था कि वांग हिम्मत और उत्साह के साथ चीन लौटे।

चीन पहुंच कर वांग ने उल्टा ही किस्सा देखा। कम्यूनिस्ट लोग खुलेआम Warlords (युद्ध प्रभुओं) की मदद कर रहे थे। वांग को और भी आश्चर्य्य हुआ, जब उन्होंने देखा कि कम्यूनिस्ट नेता वोरोडिन, अपने चीन के कम्यूनिस्ट अनुयायियों के साथ खुद उनके खिलाफ क्रान्ति-विरोधी तथा अवसरवादी सैनिक-नेता टांग-सेन-ची (Tang Shen Chi) के साथ मिल गये हैं। नतीजा इसका यह हुआ कि वांग का कम्यूनिस्टों पर विश्वास न रहा और वे प्रतिगामी राष्ट्रवादी शक्तियों से मेल करने पर बाध्य हुए।

राय इसे रोकना चाहते थे क्योंकि वांग के नेतृत्व में ही चांग को हराया जा सकता था। अतएव वे वांग से मिले और उन्हें अपने पक्ष में राजी किया। वांग ने वोरोडिन, चेन इत्यादि कम्यूनिस्ट नेताओं की बड़ी शिकायत की। वे राय के क्रान्तिकारी कार्य्यक्रम में मदद देने को तैयार तो होगये लेकिन वे रूस की सहायता का लिखित आश्वासन चाहते थे, क्योंकि वोरोडिन की गलत नीति से उन्हें कम्यूनिस्टों में विश्वास नहीं रह गया था। राय ने वांग को अपने यहां बुला कर हर प्रकार का आश्वासन दिया, किन्तु वांग बार बार मास्को से ही सीधा आश्वासन चाहते थे।

अवसर चूकने का नहीं था। राय ने रेडियो द्वारा मास्को में इसकी खबर की। उसके उत्तर में स्टालिन की ओर से राय के पास आश्वासन का टेलिग्राम आया। राय, मार्शल ब्लूचर तथा अन्य

कम्यूनिस्टों की यह राय हुई थी कि वांग को वह टेलिग्राम दिखला कर उनकी सहायता प्राप्त की जाय। वांग को राय ने अपने यहां बुलवा कर उन्हें टेलिग्राम का लिखित अनुवाद दिया। यह सच है कि आश्वासन पर भी वांग ने कम्यूनिस्टों का साथ नहीं दिया। कारण यह था कि टेलिग्राम आने में इतनी देरी हुई कि वे तबतक विरोधियों से मिल चुके थे।

कई लेखक इस टेलिग्राम का बहुत महत्व देते हैं। उनका मत है कि वह टेलिग्राम वांग को नहीं दिखलाना चाहिये था। किन्तु यह विचार बिलकुल गलत है। पहली बात तो यह कि वांग को खुद मास्को में व्यक्तिगत आश्वासन मिल चुका था। दूसरी बात यह कि वह टेलिग्राम तो वांग के लिये ही भेजा गया था। वांग तथा स्टालिन में कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। इसलिये वह राय के पास भेजा गया। अतएव यदि उस आश्वासन के टेलिग्राम को वांग से दिखलाना भूल थी तो वह स्टालिन की गलती थी। उसने वांग के लिये ही तो टेलिग्राम भेजा था।

और तो और, उस टेलिग्राम से क्रान्ति की असफलता का कुछ सम्बन्ध ही नहीं हो सकता है। क्रान्ति-विरोधी शक्तियां पहले से अपना काम कर रही थीं और बिलकुल शक्तिशाली हो चुकी थीं। टेलिग्राम का मामला तो सफलता के लिये अन्तिम प्रयत्न था।

× × ×

इन दिनों कुछ अधकचरे समाजवादी इस बात का गन्दा प्रचार करते पाये गये हैं कि "चीन की क्रान्ति की असफलता के

कारण राय हैं। उन्होंने वहां धोखेबाजी की। और, उसी के फल-स्वरूप वे कोमिनटार्न से निकाले भी गये।"

इन मिथ्या प्रचारों का उत्तर इतिहास ही दे सकता है। आज तक कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के किसी एक भी सदस्य ने कामरेड राय के विरुद्ध ऐसा दोषारोपण नहीं किया है। इतिहास तथा कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के कागजातों के एक चिट से भी यह जुर्म साबित नहीं हो सकता। मिथ्या प्रचार करने वाले गुण्डों को चाहिये कि वे कामरेड राय का खुलेआम चैलेञ्ज मंजूर करें—

"मैं उन झूठों को यह चैलेञ्ज देता हूं कि वे कम्यूनिस्ट इन्टर-नैशनल के कागजातों में से एक वाक्य भी सामने लावें जिससे मेरे ये जुर्म सावित हो सकें।"*

क्रान्ति की असफलता तथा वहां के हजारों किसान और मज-दूरों की हत्याओं का दोष निसन्देह चीन के कम्यूनिस्ट पार्टी के सिक्रेटरी चेन और उनके रूसी सलाहकार वोरोडिन के ऊपर है। उनलोगों ने किस प्रकार अवसरवादी तरीकों से क्रान्ति-आन्दोलन को खत्म कर दिया, इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया जा चुका है। सोवियट-चीन के प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट नेता 'माओ' (Mao Tse-tung) ने बड़े तीखे शब्दों में इन्हीं दोनों को दोषी ठहराया है

---

* "I challenge those liars to produce one single sentence from any official document of the Communist International bearing out the charge they bring against me"—M. N. Roy's "My Experience in China".

और उन पर वही सारे जुर्म लगाये हैं जिसे राय ने बतलाया था। वे लिखते हैं—"वोरोडिन चेन से भी अधिक प्रतिगामी था और धनिक-वर्ग को खुश करने के लिये सब कुछ करने को तैयार था। वह मजदूरों को निहत्था वना देने के लिये भी आमादा था और अन्त में उसने इसे करवाया ही। १९२६ में वोरोडिन भूमि-वितरण की रैडिकल नीति का समर्थन कर रहा था, जिसका १९२७ में ही बिना कोई उपयुक्त दलील दिये, उसने विरोध करना आरम्भ कर दिया..........."*

क्रान्ति की असफलता का कारण बतलाते हुए माओ ने साफ शब्दों में लिखा है कि "वोरोडिन ने भयङ्कर भूल की और चेन ने एक अनजान दगावाज के तरह व्यवहार किया (Borodin, a blunderer and Chen, an unconscious betrayer)।" रूस पहुंचने के बाद कामरेड राय ने भी इसके सबूत में वोरोडिन का 'Platform of Retreat' पेश किया था जो कोमिनटार्न द्वारा स्वीकृत है।

चीन की क्रान्ति में यदि राय ने दगावाजी की होती तो वे अपना गर्दन लेकर रूस के बाहर निकल न पाते। सच तो यह है कि राय

* "Borodin stood a little right of Chen and was ready to do everything to please the bourgeousie, even to the disarming of the workers, which he finally ordered. In 1926, Borodin had supported a radical land distribution which he now (1927) strongly opposed without any logical ground for this complete reversal"

—Edgar Snow's 'Red Star over China.'

के मास्को पहुंचते ही कोमिनटार्न के प्रिसीडियम (Presidium of the C. I.) तथा रूसी कम्यूनिस्ट पार्टी के पोलिटिकल ब्यूरो (Political Bureau के सम्मिलित कमिशन की बैठक, चीन की रिपोर्ट का जांच करने के लिये हुई। स्टालिन भी उस कमिशन के सदस्य थे। कमीशन ने एकमत से राय की रिपोर्ट मंजूर की और उनकी प्रशंसा की।

चीन से लौटने के बाद राय करीब एक साल तक रूस में रहे। १६२८ के फर्वरी में उन्हें फिर से कोमिनटार्न के खास प्रतिनिधि बनकर ब्रूसल्स-कान्फरेन्स में शामिल होना पड़ा। यदि वे चीन के सम्बन्ध में दोषी होते तो क्या कोमिनटार्न की ये जिम्मेदारियां उनके हाथों में सौंपी जातीं ?

छठों विश्व-कांग्रेस—

कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल का छठां विश्व-कांग्रेस* कई दृष्टिकोण से बहुत ही मशहूर हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक तथा मजदूर आन्दोलनों में इसकी चर्चा अक्सर रहती है। १९२८ की गर्मियों में इसका अधिवेशन, मास्को में प्रारम्भ हुआ।

कांग्रेस में प्रत्येक देशों के डेलिगेट हाज़िर थे। एशिया के राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व भी समुचित रूप से हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस की बैठक ऐसे समय पर हो रही थी जब कम्यूनिज्म के फैलने का बिलकुल अनुकूल मौका था। यदि परिस्थितियों के

---

* कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल का रूस में समय समय पर विश्व-कांग्रेसके रूप में अधिवेशन हो रहा है। कांग्रेस में संसार के प्रत्येक देशों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं, जहां जहां इन्टरनैशनल की शाखायें हैं। लेनिन के समय में यह अधिवेशन बहुत ही ठाठ बाट से हुआ करता था जहां प्रत्येक देशों के डेलिगेट अन्तर्राष्ट्रीय जटिल प्रश्नों पर क्रान्तिकारी ढंग से विचार करते थे। इनदिनों यह कुछ शिथिल-सा हो गया है। —लेखक।

अनुकूल कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल का प्रोग्राम बनता और लेनिन के बतलाये रास्तों का अवलम्बन होता तो कम्यूनिज्म की सफलता निश्चित थी। क्योंकि एक ओर जहां पूंजीवादी देशों में वेइन्तहा गरीबी, फाका, ज़हालत, मन्दी और साम्राज्यवादी युद्धों की खुलेआम तैयारियां हो रही थीं, भीषण असन्तोष था, वहीं सोवियट-यूनियन की जनता क्रान्ति की सफलता के बाद बेरोजगारी, गरीबी, फाका तथा अन्य सामाजिक और आर्थिक बन्धनों से मुक्त हो चुकी थी। वहां व्यवसाय का विस्तार हो रहा था। समाजवाद की रचना आरम्भ थी। जनता दिनों-दिन तरक्की कर रही थी।

पूंजीवादी राष्ट्रों तथा सोवियट के बीच ऐसा अन्तर देखकर संसार के करोड़ों मनुष्य सोवियट-यूनियन तथा कम्यूनिज्म की ओर आशा-भरी नज़रों से देखते थे। वे तथाकथित प्रजातन्त्रवाद की ढोंगों से ऊब गये थे। कम्यूनिज्म के प्रचार के लिये इससे अधिक अनुकूल अवसर तो कभी आया न था। फिर भी कम्यूनिज्म आगे बढ़ न सका। देखते ही देखते कई स्थानों में उसकी शक्ति बिलकुल कमजोर हो गई। इसका कारण हम छठे कांग्रेस की नई नीति में ढूंढ़ सकते हैं। कहना नहीं होगा कि यह महत्वपूर्ण अधिवेशन चीन की क्रान्ति की ताज़ी असफलता के कारण हताश-वायुमण्डल में हो रहा था।

कामरेड राय इस अधिवेशन में शरीक नहीं हो सके। चीन से लौटने के बाद भी लगातार उन्हें इन्टरनैशनल के कार्य्यों में इस

प्रकार व्यस्त रहना पड़ा कि उनका स्वास्थ्य बिलकुल उखड़-सा गया। वे बहुत बीमार पड़ गये । अच्छे भी नहीं होने पाये थे कि कान की एक सख्त बिमारी से वे लाचार होगये। रूस ही में उनके कान का आपरेशन हुआ। किन्तु हालत सुधर न सकी। उनके मित्रों को बड़ी चिन्ता हुई और वे शीघ्र ही सोवियट हवाई-जहाज द्वारा जर्मनी पहुंचाये गये । १९२८ साल का अधिकांश भाग उन्हें वहां के एक प्राइवेट "नर्सिंग होम" (चिकित्सालय) में बिताना पड़ा। जर्मनी के एक प्रसिद्ध विशेषज्ञ डा: कोब्राक (Dr. Kobrack) ने उनके कान का फिर से आपरेशन किया। धीरे धीरे वे अच्छे होने लगे।

इसी अरसे में, जब वे जर्मनी में लाचार और बीमार थे—रुग्ण शय्या पर गिरफ्तार थे, मास्को में छठें विश्व-कांग्रेस का अधिवेशन शुरू हुआ। इस कांग्रेस ने स्टालिन-गुट के नेतृत्व में कुछ कुछ ऐसी नई नीतियां मंजूर की जो दूसरे और तीसरे विश्व-कांग्रेस के उन थिसिसों के प्रतिकूल था । इस नई वायीं-रुख से संसार के सारे क्रान्तिवादी आन्दोलनों को भारी धक्का लगने की सम्भावना थी। कामरेड राय को जब इन बातों का पता मिला तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। एक अनुभवी मार्क्सवादी तथा लेनिन के सच्चे अनुयायी होने की हैसियत से उन्होंने छठें-कांग्रेस की ग़लतियों का विरोध किया। यह स्टालिन-गुट के बर्दाश्त के बाहर की बात थी। राय यह जानते थे कि स्टालिन तानाशाह-जैसा व्यवहार कर रहा था। किन्तु एक सच्चे मार्क्सवादी को इसका क्या खौफ! उन्होंने नई

नीति का खुला विरोध किया और उसे लेनिन-विरोधी बतलाया। उसी समय से राय का इन्टरनैशनल और उसके नेताओं से गहरा मतभेद आरम्भ हुआ।

अभी तक कोमिनटार्न में ऐसा भीषण मतभेद नहीं हुआ था। ट्राट्सकी और स्टालिन का मतभेद भी अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट आन्दोलन पर इतना बड़ा धक्का नहीं पहुंचा सका। स्टालिन के साथ ट्राट्सकी तथा राय के मतभेदों में बड़ा अन्तर था। यह तो अटल सत्य है कि ट्राट्सकी के सिद्धान्त पर रूस एक कदम भी आगे बढ़ नहीं सकता था। * सोवियट रूस का समाजवादी नकशा शायद

---

*ट्राट्सकी का सिद्धान्त (Theory of Permanent Revolution) रूस के लिये बड़ा खतरनाक होता। उनके अनुसार समाज के क्रान्तिकारी नव-निर्माण में किसानों का हाथ नहीं होना चाहिये था। वे किसानों की क्रान्तिवादी शक्ति में विश्वास नहीं रखते थे। उन्हें इसमें भी विश्वास न था कि सिर्फ एक देश में ही सफलता पूर्वक सामाजवाद की स्थापना हो सकती हैं। फलतः वह बिना रूस को मजबूत किये ही दुनियां के और देशों में क्रान्ति की आग भड़काना चाहते थे। आगे चलकर उन्होंने कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल को ही प्रतिगामी बतलाना आरम्भ किया। राय ने ट्राट्सकी के इन सिद्धान्तों का विरोध किया था।

इन मतभेदों के बावजूद राय और ट्राट्सकी में व्यक्तिगत मित्रता थी। अपनी एक पुस्तक 'What Next' में ट्राट्सकी ने स्टालिन की इस बात पर शिकायत की है कि राय के जेल जाने पर उसने समवेदना तक प्रकट नहीं की। —लेखक।

आज दुनिये में होता ही नहीं, यदि रूस ट्राट्सकी के लाइन पर चलता। ट्राट्सकी तो सोवियट-यूनियन तथा कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल को प्रतिगामी बतला रहे हैं। कामरेड राय ने ट्राट्सकी के इन सिद्धान्तों के बिरोध में स्टालिन का साथ दिया है। मतभेद होने पर भी आज तक कामरेड राय ने कोमिनटार्न को प्रतिगामी वा क्रान्ति-विरोधी नहीं बतलाया। उन्होंने छठें-कांग्रेस से उपजे हुए स्टालिन के उन तरीकों का विरोध किया था जिससे आज संसार के क्रान्तिवादी आन्दोलन की घोर दुर्दशा हो गई है। ट्राट्सकी के सम्बन्ध में तो उन्होंने साफ शब्दों में यों कहा है—

"कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल किसी प्रकार भी प्रतिगामी वा क्रान्ति-विरोधी नहीं रहा है। यह तथ्यहीन आरोप तो उस पर ट्राट्सकी द्वारा किया गया है। मैं उनसे कभी भी सहमत नहीं रहा। यदि रूस की पार्टी स्टालिन के वदले ट्राट्सकी का रास्ता अख्तियार करता तो आज सम्भवतः सोवियट-यूनियन का पता भी न होता। ट्राट्सकी के इस Permanent Revolution के सिद्धान्त को मैं बिलकुल अस्वीकार करता हूं। मेरे और ट्राट्सकी के बीच मतभेदों का सार यही है। फिर भी मैं ट्राट्सकी के साथ किये गये व्यवहारों का समर्थक नहीं।...........उनकी इनकलाबी योग्यता को क्रान्ति के लिये बचाने की कोशिश होनी चाहिये थी।"*

राय के इन वाक्यों से पता चलता है कि उन्होंने ट्राट्सकी की घातक-नीति के खिलाफ सदा स्टालिन का पक्ष लिया था। वे

* Vide Independent India—27th June, 1937.

स्टालिन की गृहनीति के भी बड़े समर्थक थे। वे आज तक कोमिन-टार्न के सच्चे भक्त हैं। उनका मतभेद तो कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल के उन खतरनाक नीतियों से था जिसे छठें विश्व कांग्रेस ने स्टालिन की रहनुमाई में स्वीकार किया था।

मतभेदों के मुख्य आधार छठें कांग्रेस से स्वीकृत ये तीन ख़ास सिद्धान्त थे—

(१) सोशल फेसिज्म (Social Fascism)

(२) यूनाइटेड फ्रंट फ्रॉम बिलो (United Front from Below)

(३) डूयेल यूनियनिज्म (Dual Unionism)

कामरेड राय के अनुसार ये तीनों सिद्धान्त तीसरे विश्व-कांग्रेस तथा लेनिनिज्म के प्रतिकूल थे। और, निस्सन्देह इनसे कम्यूनिस्ट आन्दोलन पर ज़ोरदार धक्का लगने की सम्भावना थी।

इन तीनों सिद्धान्तों में पहला ही मुख्य है। दूसरा और तीसरा सिद्धान्त तो उसकी शाखाएं हैं। 'सोशल-फेसिज्म' के सिद्धान्त की व्याख्या खुद स्टालिन ने यों की है—

"सोशल-डेमोक्रेटों और फैसिस्टों में तनिक भी अन्तर नहीं। दोनों ही समान हैं और एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। जनता के लिये फैसिज्म उतना ही बड़ा ज़ालिम दुश्मन है जैसा सोशल-डेमोक्रैसी।"*

* These organizations (Fascism and Social Democracy) do not contradict each other but complete each other. They are not antipodes but twins."—J. Stalin.

इस सिद्धान्त ने कम्यूनिस्टों को यह भी सिखलाया कि सोशल-डेमोक्रैट * फैसिस्टों से भी खतरनाक दुश्मन हैं, क्योंकि दोस्त के रूप में शत्रु अधिक भयङ्कर होता है। इस सिद्धान्त ने कम्यूनिस्टों को उन सारे मजदूर नेताओं, समाजवादियों और प्रगतिशील विचार-वालों का दुश्मन बना दिया जो सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण कम्यूनिज्म के झण्डे के नीचे नहीं आ सकते थे। इस सिद्धान्त के कारण वे यह भी समझने लगे कि फैसिस्ट-विरोधी आन्दोलन वा साम्राज्य-विरोधी जंग, कम्यूनिस्टों के एकाधिकार नेतृत्व में ही सफल हो सकता है।

सोशल-फेसिज्म का तरीका, सिद्धान्त और नीति दोनों खयालों से गलत था। यह सच है कि सोशल-डेमोक्रैटों ने समय-समय पर ऐसी नीति अख्तियार की है जिससे मजदूर वर्ग को धोखा हुआ है। ऐन मौकों पर वे क्रान्तिवादी रास्तों से अलग कर दिये गये हैं। फिर भी फेसिज्म और सोशल-डेमोक्रैसी एक नहीं हैं; दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। फैसिस्टों की तरह वे जन-संगठन अथवा जन-आन्दोलन के विरुद्ध नहीं। उनकी शक्ति, लोक-प्रियता और उनके प्रभाव का आधार ही है जनसंगठन। वे सदा

* सोशल-डेमोक्रैट भी समाजवाद में विश्वास करते हैं किन्तु वे कम्यूनिस्ट नीति के समर्थक नहीं। उनके मतानुसार बिना किसी क्रान्ति-कारी उथल-पुथल के ही समाज का नवनिर्माण और समाजवाद की स्थापना सम्भव है —लेखक।

इसके हिमायती रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि सोशल-डेमोक्रेसी जन-आन्दोलन से बंधा है। किन्तु फेसिज्म शोषित-जनता के संगठन और उनके आन्दोलन को हर्गिज बरदाश्त नहीं कर सकता। वह तो जनता की स्वतंत्रता के मुल्य पर शोषक-वर्ग की तानाशाही है। उसका आधार है सैनिक-बल। वह जनता की स्वतंत्रता में विश्वास नहीं करता। फैसिज्म और सोशल-डेमोक्रैसी में यही सबसे बड़ा अन्तर है। आज इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, अमेरिका इत्यादि डेमोक्रैटिक (प्रजातन्त्रीय) राज्यों में इतनी राजनैतिक स्वतंत्रता है कि कम्यूनिस्ट भी अपनी संस्था कायम रख सकते हैं। उन्हें प्रचार की भी सुविधायें हैं। किन्तु जर्मनी वा इटली के फैसिस्ट राज्यों में किसी प्रकार के जन-आन्दोलन की स्वतंत्रता नहीं। वे सोशल-डेमोक्रैसी के वैसे ही दुश्मन हैं जैसे कम्यूनिज्म के।

इन्टरनैशनल ने इन बातों पर ज़रा भी ध्यान न दिया। डेमोक्रैटों के सुधारवादी (और कभी-कभी क्रान्ति-विरोधी) कारनामों से चिढ़कर इन्टरनैशनल ने बाईं-रुख अख्तियार की। वे सोशल-डेमोक्रैटों को दुश्मन मानने लगे। उन्हें मजदूरों का दुश्मन, पूंजीपतियों का एजेण्ट, साम्राज्यवादियों का दलाल, फासिस्टों का भाई कहकर पुकारा जाने लगा। नीति के लेहाज से यह बहुत बड़ी भूल थी। सच्ची बात यह थी कि जनता पर सोशल-डेमोक्रैटों का ही प्रभाव था। मजदूर श्रेणी पर तो उनका ही नेतृत्व था। इसके अतिरिक्त वे फेसिस्टों के खिलाफ कम्यूनिस्टों से संयुक्त मोर्चा कायम कर सकते थे। समय का तकाजा था डेमोक्रैटों से मिलकर फैसिज्म की बढ़ती

हुई शक्ति का नाश करना और उसके बाद डेमोक्रैटिक जनता को धीरे-धीरे कम्यूनिज्म के प्रभाव में लाना । लेकिन सोशल-फेसिज्म की आत्मघातक नीति ने डेमोक्रैटों और फेसिस्टों को एकबारगी अपना दुश्मन बना कर कम्यूनिज्म की बढ़ती हुई शक्ति को रोक दिया । उसे कमजोर बना दिया ।

सोशल-फेसिज्म के सिद्धान्त के कारण इन्टरनेशनल को "United Front from below" की नीति भी अपनानी पड़ी । क्योंकि, यदि 'सोशल-डेमोक्रैट' और उनके नेता फेसिस्ट थे और यदि उनका जन-संगठन तथा उनकी राजनैतिक पार्टी धोखे की टट्टियां वा पुंजीवाद और साम्राज्यवाद की मेशीनें थीं, तो उनसे किसी प्रकार का सहयोग असम्भव था। किन्तु हालत ऐसी थी कि जनता उन्हीं सोशल-डेमोक्रैटों के साथ थी । उन्हीं के संगठन के झण्डे के नीचे अधिकांश मजदूर मौजूद थे । कम्यूनिस्टों के पीछे जनता नहीं थी। किन्तु उन्हें जनता का सहयोग प्राप्त करना आवश्यक था । जनता से सम्बन्ध जोड़ने का सबसे अच्छा, आसान और अमली तरीका यह था कि उनके नेताओं और उनकी संस्था के मार्फत ही उनसे सहयोग कायम किया जाय। कामरेड राय का मत भी यही था। वे कहते थे कि यदि मजदूर जनता डेमोक्रैटों के साथ है तो कम्यूनिस्टों को चाहिये कि उन्हीं संस्थाओं में शामिल होकर, उनकी लड़ाई में उनका साथ देकर अपना प्रभाव कायम करें और उन्हें क्रान्तिवादी रास्तों पर लावें । लेनिन ने भी ऐसा ही रास्ता बतलाया था। किन्तु जब उन डेमोक्रैट नेताओं और उनकी संस्था को

फैसिस्ट समझा जाने लगा, तो उनके मार्फत जनता से सम्बन्ध कायम करना सर्वथा असम्भव हो गया। इसलिये ये कम्यूनिस्ट बिना उनकी संस्थाओं में शामिल हुए, उनकी संस्था और नेताओं को गालियां देकर भी सीधा जनता के नाम अपील निकालते थे कि वे मज़दूर अपनी संस्था, संगठन और नेताओं की इच्छा के प्रतिकूल भी कम्यूनिस्टों से सहयोग करें। वे उस संस्था से संयुक्त मोर्चा स्थापित करना नहीं चाहते थे जिसमें मजदूर वर्ग शामिल था। वे उनकी संस्थाओं और नेताओं को कूदकर सीधा जनता के सम्पर्क में आना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि मजदूर अपने नेता और अपनी संस्था के खिलाफ भी उनका साथ देंगे। यह सिद्धान्त भी छठें विश्व-कांग्रेस का नतीजा था। इसी को 'United Front from below' (यूनाइटेड-फ्रंट फ्राम बिलो) कहते हैं।

अभी तक United Front (संयुक्त मोर्चा) का तरीका यह था कि एक संस्था वा संगठन, वह राजनैतिक पार्टी हो वा ट्रेड-यूनियन (मजदूर दल), दूसरे दूसरे संस्थाओं से किसी एक खास विषय पर सहयोग कायम कर सकता है। एक तीसरे दुश्मन का सामना करने के लिये, फैसिज्म, पूंजीवाद वा साम्राज्यवाद का आक्रमण रोकने के लिये, उन संस्थाओं के मेम्बरों का एक हो जाना जरूरी है। किन्तु इस सहयोग का यह अर्थ नहीं कि वे संस्थायें आपस में बिलकुल मिल जायं और दोनों मिलकर एक संगठन बन जाय। ऐसा सम्भव नहीं क्योंकि उनके आपस में कई बड़े-बड़े सैद्धान्तिक मतभेद हैं। फलतः जब कोई ऐसे दुश्मन से मुकाबला

हो जो जन-अन्दोलन को कुचलना चाहता हो वा जनता के हितों के प्रतिकूल चल रहा हो, वैसे समय में प्रत्येक प्रगतिशील-संस्थायें अपनी अलग-अलग हस्ती कायम रखते हुए भी अपने दुश्मनों का मुकाबला करने के लिये आपस में संयुक्त मोर्चा (United front) कायम कर सकते हैं। लेनिन ने ऐसे ही United front का समर्थन किया था। तीसरे विश्व-कांग्रेस ने इसी सिद्धान्त की सिफारिश की थी।

छठें कांग्रेस ने इस नीति को छोड़ दिया। सोशल-डेमोक्रैटिक पार्टी और उनके नेताओं से इसने सारा सम्बन्ध तोड़, दुश्मनी लेली। वे सीधे उन संस्थाओं के आम-सदस्यों से सहयोग के लिये अपील करते थे। यह नीति बिलकुल असफल साबित हुई। कम्यूनिस्टों को अपनी संस्था के खिलाफ पाकर मजदूर उन्हें अपना दुश्मन समझने लगे। कम्यूनिस्टों का प्रभाव जनता से उठने लग गया। जिस संगठन को मजदूरों ने वर्षों से बनाया था, जिस नेता के प्रभाव में वे अबतक थे, उससे अलग होकर कम्यूनिस्टों से मिल जाना वे बरदाश्त नहीं कर सकते थे। लाख प्रयत्न करने पर भी कम्यूनिस्ट पार्टी मजदूरों की पुरानी संस्था से अलग रहकर उनका सहयोग प्राप्त न कर सकी। यह नीति सर्वथा असफल सिद्ध हुई। लेनिन के मतानुसार यह 'United front from below' हर्गिज सच्चा United front (संयुक्त मोर्चा) नहीं था।

इस घातक नीति के साथ छठें विश्व कांग्रेस ने Dual unionism की नीति भी कबूल की। कहा जा चुका है कि सुधारवादी

(reformist) ट्रेड-यूनियनों (मजदूर-संघों) को पूंजीवाद की मशीन समझा जाने लगा था। बावजूद इसके कि मजदूर-वर्ग की भक्ति उन्हीं संघों के साथ थी, कम्यूनिस्ट लोग उसे प्रतिगामी संस्था समझ कर उससे अलग हो गये। उन्होंने उन 'प्रतिगामी' संस्थाओं के मुकाबले मजदूरों के क्रान्तिवादी श्रेणी-युद्ध के लिये 'लाल-ट्रेड-यूनियनों' की स्थापना की। उनका ध्येय यह था कि मजदूरों को उनकी प्रतिगामी संस्था से हटा कर नये क्रान्तिकारी संस्था में शामिल किया जाय। इसलिये मजदूरों के प्रत्येक केन्द्रों में उनकी अलग अलग संस्थायें कायम हुईं। इसका फल यह हुआ कि पुराने संघों से इन लाल-ट्रेड-यूनियनों की आपस में लड़ाई शुरू हुई। मजदूरों में उतनी राजनैतिक जागृति नहीं आई थी। वे अपने सोशल-डेमोक्रैट नेताओं के प्रभाव से मुक्त न थे। नये यूनियनों की रचना से उनपर अच्छा असर न हुआ। उन्होंने इन लाल-यूनियनों को अपनी पुरानी संस्थाओं का दुश्मन समझ बायकाट किया। वे कम्यूनिस्ट नेताओं को दुश्मन समझने लगे। यही कारण है कि पुराने यूनियनों के मुकाबले नये लाल-ट्रेड-यूनियनों को सफलता नहीं मिली।

पुराने संगठित संघों से अलग होकर कम्यूनिस्टों ने मजदूर-वर्ग से सारा सम्बन्ध खो दिया। नव-स्थापित लाल-ट्रेड-यूनियनों में मजदूर शामिल न हुए। अलग संगठन कायम करने का नतीजा यह निकला कि संगठित मजदूर वर्ग सुधारवादी नेताओं के हाथों में चले गये। वे कम्यूनिस्टों के क्रान्तिवादी सम्पर्क से दूर हट गये।

लेनिन इस नीति के सर्वथा खिलाफ थे। इन्टरनैशनल के आरम्भ में ही उन्होंने उन कम्यूनिस्टों का विरोध किया था जो सुधारवादी ट्रेड-यूनियनों में जाकर काम करना नापसन्द करते थे। उन्होंने साफ शब्दों में कहा था कि कम्यूनिस्टों को उन सारे संघों में शामिल होना चाहिये जहां मजदूर संगठित रूप में वर्तमान हैं और उन्हें धीरे धीरे मजदूरों को क्रान्तिवादी रास्ते पर लाना चाहिये। अपनी एक पुस्तक–Left Communism, an infantile sickness—में लेनिन ने जोरदार शब्दों में लिखा था—

"प्रत्येक देश के वैसे सुधारवादी मजदूर-संघों को, पूंजीवाद का नाश तथा कम्यूनिज्म की स्थापना के हेतु, उसे कामयाब अस्त्र बनाने के लिये, कम्यूनिस्टों को उसमें जरूर शामिल होना चाहिये।"

"उन आर्थिक आन्दोलनों से अलग हो जाना अथवा उनके मुकाबले कृत्रिम संघों को संगठित करना, उन प्रगतिशील, उन्नत, और जागृत कामगारों को जनता से अलग कर देना है जो कम्यूनिस्ट-राह के मुसाफिर हैं। ऐसा करना पूंजीपतियों के धोखे में पड़ना तथा जनता को उन अवसरवादी नेताओं के हाथों में छोड़ देना है। ...."

"कम्यूनिस्टों को उन प्रतिगामी मजदूर-संघों से हर्गिज अलग होना न चाहिये, बल्कि उनलोगों को उन पुराने ट्रेड-यूनियनों में शामिल होकर उसे क्रान्तिवादी बनाना चाहिये।"*

---

* "The Communists must join such unions in all countries in order to make of them efficient and cons-

छठें कांग्रेस ने लेनिन के इन सारगर्भित बातों का कुछ भी ख्याल न कर, विपरीत मार्ग अवलम्बन किया। इसका परिणाम बड़ा ही भीषण हुआ। मजदूर-आन्दोलन सुधारवादियों के हाथ में चला गया। कम्यूनिस्ट-आन्दोलन बिलकुल पीछे पड़ गया। जर्मनी में तो ऐसा हुआ कि आज भी उसी के फलस्वरूप वहां की जनता खूनी-फेसिस्टों के कब्जे में बेहाल है।

छठें कांग्रेस के इन आत्मघातक नीतियों का ब्रान्डलर, लवस्टोन, थाल्हमर, एम. एन राय जैसे महान कम्यूनिस्टों ने विरोध किया। पार्टी के भीतर रहकर उनलोगों ने कोमिनटार्न की गलतियां सुधारने की कोशिश की। किन्तु पार्टी के भीतर बहस की गुंजाइश न थी। जरा सा मतभेद जाहिर करने पर कोई भी पार्टी से निकाल दिया जाता था। जिसने भी छठें कांग्रेस की खतरनाक नीति का विरोध

cious organs of struggle for the abolition of Capitalism and the establishment of Communism. Any voluntary withdrawal from the economic movement, any artificial attempt to organise special Unions.........threatens to isolate the most advanced and most conscious workers from the masses who are on the road to Communism. It threatens to hand over these masses to the opportunist leaders, thus playing into the hands of the bourgeoisie........."

"Communists must on no account leave the ranks of the re-actionary federation of labour. On the contrary, they should go into the old trade unions in order to revolutionize them." —Lenin

किया, वह "सोवियट-यूनियन का दुश्मन," "मजदूरों का शत्रु," "पूंजीवादी" इत्यादि नामों से पुकारा जाने लगा । ये नीति प्रत्येक देशों में जारी की गई । हजारों की संख्या में वे पुराने कम्यूनिस्ट निकाल दिये गये । लाखों सदस्य घबड़ाकर पार्टी से अलग होगये । कुछ थोड़े से नये सदस्य पार्टी में शामिल भी हुए तो उन्हें ये हिदायत की गई कि वे उन क्रान्ति-विरोधियों की बातें न सुनें । इससे कम्यूनिस्टों में स्वतंत्र-विचार की माद्दा टूट-सी गई । नतीजा यह हुआ कि ऐसी परिस्थिति में जब कम्यूनिज्म के बढ़ने का अवसर था, वह शक्तिहीन होता गया । स्वीडन, स्पेन, हिन्दोस्तान, स्वीटजरलैण्ड, अलसेक के देशों की कम्यूनिस्ट पार्टियों से अधिकांश सदस्य निकाल दिये गये । इस नई नीति के कारण १८ महीनों के भीतर जेको-स्लोवेकिया की पार्टी से ८०% तथा दक्षिण-अफ्रिका की पार्टी से ६०% मेम्बरों की संख्या कम होगई । फ्रान्स की पार्टी नाम-मात्र को रह गई । उसका सारा प्रभाव नष्ट होगया । इङ्गलैण्ड की पार्टी में जहां १६,००० सदस्य थे, वहां सिर्फ २००० बच गये । जर्मनी की इतनी बड़ी शक्तिशाली पार्टी भी सोशल-डेमोक्रैसी को परास्त नहीं कर सकी । और तो और, वहां के बड़े बड़े योग्य नेता जो कम्यूनिस्ट आन्दोलन के अग्रदूत थे, निकाल दिये गये । इन्टरनैशनल कमजोर होती चली गई । इन्टरनैशनल के अपने गलत जिद्द पर अड़े रहने से तमाम मुल्कों में असन्तोष फैल रहा था । कम्यूनिस्ट पार्टी दिनों-दिन कमजोर होती जा रही थी । मजदूर-आन्दोलन शक्तिविहीन होता जा रहा था ।

छठें कांग्रेस की नई नीति करीब सात वर्षों तक जारी रही। इस अरसे में संसार के क्रान्तिवादी आन्दोलनों की जो दुर्दशा हुई, उसका दयनीय वृतान्त न लिखना ही अच्छा है। चारों ओर फेसिज्म जोर पकड़ने लगा। जर्मनी में तो ऐसा हुआ कि कम्यूनिज्म को उखाड़ फेंका गया और हिटलर की तानाशाही कायम हुई।

जर्मनी की कम्यूनिस्ट पार्टी, रूस के सिवा दुनियें में सबसे बड़ी पार्टी थी। जनता में इसका बड़ा प्रभाव था। उसे देख कर, कोई भी ऐसा सोच नहीं सकता था कि वहां फैसिज्म (नात्सी-सरकार) की जीत होगी। किन्तु Social Fascism के नये सिद्धान्त को धन्यवाद! —कि वह सम्भव हो सका। राय तथा उनके साथियों ने बार बार जर्मन-कम्यूनिस्ट पार्टी तथा कोमिनटार्न को इसकी चेतावनी दी थी कि यदि शीघ्र ही नीति बदली न गई तो हिटलरशाही कायम हो जायेगी। कोमिनटार्न ने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया। बल्कि राय और उनके साथियों को अलग कर दिया गया। कम्यूनिस्ट पार्टी सोवियट-जर्मनी का ख्वाब देख रही थी, किन्तु चक्की दूसरी ओर चल पड़ी।

सोशल-फेसिज्म के कारण कम्यूनिस्टों ने हिटलर के विरुद्ध सोशल-डेमोक्रैट सहयोग से इनकार कर दिया था। Red Trade Union International (अन्तर-राष्ट्रीय लाल मजदूर संघ) के इशारे पर बड़े बड़े प्रभावशाली और संगठित ट्रेड-यूनियनों को सुधारवादी डेमोक्रैटों के हाथों में छोड़, नये नपुंसक

लाल-यूनियन (R. G. O. Rote Gewerkschatts-Opposition) की रचना की गई थी। इससे वे क्रान्तिवादी मजदूर-वर्ग के सम्पर्क से इतना अलग हो गये थे कि उन संगीन मौकों * पर जब हिटलर के भूरी-कमीज़-वालों का दल, अपनी शक्ति कायम करने के लिये आगे बढ़ रहा था, वे कुछ भी कर न सके। यहां तक कि जब हिटलर के वेग को रोकने के लिये कम्यूनिस्ट पार्टी ने जर्मनी के मजदूरों का हड़ताल एलान किया, तो एक मिल भी बन्द न हो सका। हड़ताल बिलकुल असफल रहा। संगठित ट्रेड-यूनियनों से अलग होकर, बाजारों और सड़कों पर कुछ परचे बांट देने से कहीं हड़ताल होता है ? कोमिनटार्न की बांई-नीति का यह भीषण परिणाम !

हिटलर को कोई रोक न सका। अपनी गलतियों से कम्यूनिस्ट पार्टी की हार हुई। और ऐसी बुरी हार आज तक कम्यूनिस्टों की कभी नहीं हुई थी। उस महान शक्तिशाली कम्यूनिस्ट पार्टी का इतनी आसानी से हार, इतिहास के लिये आश्चर्य्य का विषय है। आज जर्मनी का मज़दूर आन्दोलन खून से लथपथ है। कम्यूनिस्ट पार्टी और Communist (Opposition) Party (ब्रान्डलर की कम्यूनिस्ट पार्टी) अपनी हस्ती कायम रखने के लिये प्राणपण से

---

* आधुनिक जर्मनी के इतिहास में तीन तारीखें बड़ी प्रसिद्ध हैं— २० जुलाई १९३२, १२ सितम्बर १९३२, ३० जनवरी १९३३; इन्हीं मौकों पर हिटलर ऊँचा उठता गया और अन्त में वहां का डिक्टेटर हो गया।

कोशिश कर रही है यद्यपि उनमें से हजारों गोलियों के घाट उतार दिये गये हैं।

जर्मनी के इस भीषण तजुरबे के बाद कोमिनटार्न को होश हुआ। उसने अपनी नीति बदल डाली। १६२८ के बाद १६३५ में सातवें-विश्व-कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया गया। जर्मनी के अलावा और देशों के अनुभवों ने उन्हीं पुराने सिद्धान्तों को ठीक बतलाया, जिसका समर्थन कामरेड राय कर रहे थे। Social Fascism, Dual Unionism तथा United front from below की खतरनाक नीतियों को छोड़ दिया गया। फेसिज्म के बढ़ते हुए वेग को रोकने के लिये कोमिनटार्न ने सारे सोशल-डेमोक्रैटिक पार्टी तथा 'दूसरे-इन्टरनैशनल' * को भी सहयोग के लिये निमन्त्रित किया। लाल ट्रेड-यूनियनों को तोड़ कर मजदूर-वर्ग की एकता कायम करने की कोशिश की गई। कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल की नीति इन दिनों यही है और इसमें बड़ी सफलता मिली है। यूरोप, एशिया, अमेरिका इत्यादि देशों के सारे लाल-ट्रेड-यूनियन अब बन्द कर दिये गये हैं। फ्रान्स में भी C. C. T. U. (the Communist Central Trade Union Organisation) को C. C. T. (सुधारवादी) में मिला दिया गया। १६३६ का वह विशाल शक्तिशाली Popular Front (पोपुलर फ्रान्ट) † आन्दोलन,

* देखिये पृष्ठ ६२

† फ्रान्स में पोपुलर-फ्रंट के जरिये ही फैसिज्म को रोका जा सका। पूंजीवाद के आक्रमण का सामना वहां की प्रत्येक प्रगतिशील

जिसने फ्रान्स को फेसिज्म से बचाया, कोमिनटार्न की नई नीति (ट्रेड-यूनियनों का सहयोग) का ही फल था ।

सात वर्षों के लम्बे अरसे के बाद स्टालिन और कोमिनटार्न के नेताओं ने राय के सिद्धान्तों और नीतियों को अधिकांश रूप में कबूल कर लिया । निस्सन्देह यह कामरेड राय की सब से बड़ी विजय है ।

संस्थाओं ने मिल कर की । क्रान्ति-विरोधी ताक़तों के विरुद्ध प्रत्येक प्रगतिशील संस्थाओं के सहयोग को पापुलर फ्रंट कहते हैं । —लेखक ।

कोमिनटार्न से अलग

छठें विश्व-कांग्रेस के बाद कामरेड राय रूस नहीं लौटे। वे लिखते हैं :—"अच्छे होने पर मैं रूस नहीं लौटा। मेरे लिये अब वहां कोई काम भी नहीं रह गया था। छठें विश्व-कांग्रेस ने मेरे दृष्टि-विन्दु को ठुकरा दिया था और इन्टरनैशनल की कार्य्यकारिणी में मेरा फिर चुनाव भी नहीं हुआ। लेकिन बाद को १६२६ में मेरे निकाले जाने के जो कारण बतलाये गये उन में न तो हिन्दुस्तान की परिस्थिति के बारे में मेरे विचार थे और न चीन में मुझ से घटित कोई अपराध ही। कारण तो जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी की बाम पक्षीय (Blanquist) नीति का मेरे द्वारा विरोध किया जाना ही था। असल बात तो यह है कि मैं कोमिनटार्न से कभी भी बाक़ायदा तरीके से निकाला न गया और न कभी कोई खास इलजाम मेरे ऊपर लगाया गया। हां, पर बात कही गई थी कि मैं ने जर्मनी के कम्युनिस्ट इन्टरनैशनल विरोधी (ब्रैन्डलर-प्रेस) पत्रों में कुछ लेख लिखे थे।*

(*Vide, Kusinens report at the tenth Plenum of the Executive of the C. I.*)

१६२६ में कामरेड राय इन्टरनैशनल से अलग कर दिये गये। उसका संक्षिप्त किस्सा यह है कि छठें विश्व-कांग्रेस के लेनिन-विरोधी सिद्धान्तों को कबूल करने को वे तैयार न थे। और तो और, हिन्दोस्तान, चीन इत्यादि औपनिवेशिक देशों के सम्बन्ध में भी इन्टरनैशनल ने ऐसी नीतियों को स्वीकार किया था जिससे कामरेड राय का गहरा मतभेद था। अपने रुग्ण शय्या से भी उन्होंने हिन्दोस्तान इत्यादि देशों के लिये एक थेसिस भेजा था। तज्जुब यह है कि वह छठें कांग्रेस के सन्मुख लाया तक न गया और उनके सिद्धान्तों की कड़ी आलोचना की गई। इतना होने पर भी उन्होंने कोमिनटार्न के अनुशासन के खिलाफ कुछ भी नहीं किया। वे एक साल तक चुप रहे। उन्हें उम्मीद थी कि कोमिनटार्न अपनी भूल जल्द ही सुधार लेगी। किन्तु ऐसा न हुआ। स्टालिन की बाईं-बहक दिनों दिन बढ़ती ही गई।

कामरेड राय उन दिनों जर्मनी में ही थे। इन्टरनैशनल की नई नीति से जर्मनी के कम्यूनिस्ट आन्दोलन पर कितना धक्का लग रहा था, इसे वे आंखों देख रहे थे। कम्यूनिस्ट पार्टी के नये तरीकों से जर्मनी में हिटलर को आगे बढ़ने का मौका मिल रहा था। कम्यूनिस्ट-क्रान्ति की सारी सम्भावना धुंधली होती जा रही थी। वैसे समय में किसी भी सच्चे मार्क्सवादी का यह फर्ज था कि वह फेसिज्म से जर्मनी को बचावे तथा कम्यूनिस्ट क्रान्ति की सम्भावना को नष्ट न होने दे। राय ने अपने क्रान्तिकारी फर्ज को अदा किया। जर्मनी की हालत इतनी शोचनीय हो चली थी कि वे चुप

बैठ न सके। उन्होंने जर्मनी की कम्यूनिस्ट पार्टी की कड़ी आलोचना की। ब्रैन्डलर प्रेस में उन्होंने अपने कई लेखों द्वारा कम्यूनिस्ट-नीति की मुखालफत की। यही उनका अपराध था जिससे वे कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल से अलग कर दिये गये। इसके सम्बन्ध में उनका 'मेरा जुर्म' (My crime) शीर्षक एक लेख निकला था जिसका हिन्दी अनुवाद यों है—

"कुछ समय से मैं उस निरंकुश जुल्म का शिकार हो रहा हूं जिसके उद्दाम प्रयोग ने अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट आन्दोलन में इतना आतंक मचा रखा है। अपने प्राणों से बेपरवाह मैं इस अवस्था में करीब एक साल से हूं। अपनी चिन्ता मुझे नहीं; किन्तु मैं उनलोगों की अयोग्यता पर अवाक् हूं जिन्होंने कम्यूनिस्ट आन्दोलन का नेतृत्व इस निर्भीकता से हड़प लिया है और जिनकी दायित्वहीन नेतागिरी से आन्दोलन इस प्रकार नष्ट-भ्रष्ट हो रहा है। अन्त में मेरी बारी आई है—शायद असाधारण विलम्ब के साथ। कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल की कार्य-समिति की १० वीं बैठक में कुसीनेन (Kusenin) ने मेरे तुच्छ मस्तक की मांग की थी। मेरे नवीनतम 'अपराध'—अर्थात् जर्मन कम्यूनिस्टों के अन्तर्राष्ट्रीय विरोधी पार्टी (Communist Opposition) के पत्रों में मेरे लेख लिखने का उल्लेख करके, कुसीनेन ने अचरज जाहिर किया कि ऐसे घोर जुर्म के बाद भी कोई कैसे उनलोगों के साथी होने का दावा कर सकता है जिनके विचारों की निष्ठापूर्वक नुमाइंदगी करना उसका परम पुनीत कर्त्तव्य होना चाहिये! सभी बातें पहले से

ठीक थीं। "जनता" की अनुमति-प्राप्ति का नाट्य हुआ। किसी निभृत कोने से 'भीषण दण्ड' की आवाज उठवाई गई; और एक वह व्यक्ति जो कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के लगभग जन्मकाल से ही उसके साथ था, जो क्रान्तिकारी आन्दोलन में वर्षों से काम कर रहा था और जिसपर पहले कभी भी इस प्रकार का कोई तोहमत नहीं लगाया गया था, आप से आप इन्टरनैशनल के दायरे से बाहर हो गया। लोसोवस्की (Losowsky) तथा शुबिन्स (Schubins) के कुछ थोथे और निराधार आक्षेपों के बाद, मैनुइल्स्की (Manuilsky) ने—शायद रूसी प्रतिनिधियों के आधार पर—मुझे सीधे 'विश्वासघाती' बतलाकर सारे मामले पर जैसे सचाई की मुहर बैठा दी। यह सब बहुत आसानी से सम्पन्न हो गया। इसके लिये कोई सबूत पेश करने की आवश्यकता नहीं हुई कि एक पुराना 'वामपक्षीय' सहसा सीधे अवसरवादी कैसे बन गया; २० वर्षों से भी ऊपर क्रान्ति का एकनिष्ठ पुजारी रहकर कोई अचानक 'विश्वासघाती' कैसे हुआ। कुसीनेन ने सिर्फ इस बात का ऐलान किया कि मैंने भारत के 'राष्ट्रवादी धनिकों से सहयोग की नीति' प्रस्तावित की थी और मैनुइल्स्की के खयाल में तो मैं बिलकुल 'विश्वासघाती' ठहरा ही।

संभव है यह घटना स्वतः इतनी प्रधानता नहीं रखती हो कि इन्टरनैशनल का ध्यानाकृष्ट करे। किन्तु इन्टरनैशनल के आन्दोलन के शिखर पर आज जो स्थिति है उसका एक लक्षण होने की हैसियत से यह महत्वपूर्ण है, और हमारा खयाल शीघ्र इस तरफ मुड़ना चाहिये। अस्तु, इस मामले से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों को इन्टरनैशनल के सामने रखना मैं जरूरी समझता हूं।

मुझ पर ये आक्षेप अचानक इन्टरनैशनल के छठें विश्वकांग्रेस से शुरू हुए, जिसमें अस्वस्थता के कारण मैं उपस्थित नहीं हो सका था। औपनिवेशिक मसले पर अपनी रिपोर्ट में कुसीनेन ने मुझे तथा-कथित 'अनुपनिवेशीकरण (De-colonisation)' सिद्धान्त का जन्मदाता कहा। कुसीनेन के कथनानुसार मैंने यह विचार पेश किया था कि "ब्रिटिश साम्राज्यशाही स्वतः भारतीय जनता को आजादी की तरफ ले जाने को मजबूर होगी।" इस इलजाम की बुनियाद पर मुझे रिपोर्ट में, तथा थिसिस में भी,—(हां, रिपोर्ट तथा थिसिस दोनों में ही, कहने का ढंग पीछे जरा परिमार्जित कर दिया गया था)—'साम्राज्यशाही का गुलाम' बतलाया गया। यह नामकरण आक्षेपों से प्रमाणित होने पर निश्चय ही बहुत सही होता। किन्तु ऐसा किया नहीं गया—यद्यपि कुसीनेन ने यहां तक घोषणा कर दी कि इस सोशल डेमोक्रेटिक सिद्धान्त की, 'वैनगार्ड' तथा 'मासेज' के सम्पादक की हैसियत से, मैंने वर्षों तक ताईद की थी। इन आक्षेपों की एकदम निराधारता का सबूत उक्त पत्रों की फाइलों में है। मेरी यह चुनौती है कि कोई भी उन पत्रों में कुसीनेन के आक्षेपों के समर्थन में एक पंक्ति भी निकाल दे। उक्त पत्र मेरे सम्पादकत्व में १९२२ से १९२८ ई० तक छपे थे और हिन्दुस्तान में कम्यूनिस्ट आन्दोलन के प्रचार के मुख्य-पत्र थे। (इस बीच में १९२७ के आठ महीनों तक मैं चीन में था और उस अरसे में मैं पत्र प्रकाशन के लिये जिम्मेदार नहीं था)। मेरे सम्पादकत्व की समूची अवधि में दाईं ओर विचलित होने का मुझ पर कभी आरोप नहीं

हुआ। कुछ थोड़े से छोटे-मोटे साथियों की यह निराधार शिकायत जरूर थी कि राष्ट्रवादी-धनिकों की क्रान्तिकारी शक्ति का मैं कुछ ज्यादा अन्दाजा लगाता था। अभिप्राय यह है कि करीब ५ वर्षों तक मेरे दृष्टिकोण को इन्टरनैशनल ने अमूमन सही माना; नहीं तो मैं जिस पद पर था उससे बहुत पहले ही जुदा कर दिया गया होता। अब अचानक इस रहस्य का उद्घाटन हुआ है कि मैं इन सभी दिनों में "ब्रिटिश साम्राज्यशाही का एक सोशल डेमोक्रैटिक गुलाम" था। अस्तु यह मानना तर्क-सम्मत होगा कि छठें विश्व-कांग्रेस तक अन्तर्राष्ट्रीय का दृष्टिबिन्दु हिन्दुस्तान के प्रति भ्रामक था। यदि छठें कांग्रेस में पासशुदा रिपोर्ट और थिसिस ही लेनिनवाद के सर्वोच्च ज्ञान के भण्डार माने जायं, तो जहां तक औपनिवेशिक प्रश्न का सम्बन्ध है, बारी बारी से लेनिन, जिनोविफ, बुखारिन तथा स्टालिन सभी ही अ-लेनिनवादी और "साम्राज्यशाही के सोशल डेमोक्रेटिक-गुलाम" रहे। छठें कांग्रेस में औपनिवेशिक तथा दूसरे प्रश्नों पर स्वीकृत प्रस्तावों का यही प्रत्यक्ष अर्थ हो सकता है। वे लेनिन के कथनों से बहुत ही दूर चले गये हैं। इस कारण मैंने उनसे अपनी मुखालफत जाहिर की। यह भी मेरे एक उन अपराधों में से है जिनके लिये मैं कम्यूनिज्म का 'विश्वासघाती' कह कर इन्टरनैशनल से बहिष्कृत हुआ।

यहां मैं 'अनुपनिवेशीकरण (डिकोलोनाईजेशन)' के सिद्धान्त के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं, जिसका जन्मदायक होने का पाप ही मुझे दण्डित करने का सब से बड़ा अस्त्र बना है। इस अभागे शब्द के

पीछे थोड़ा इतिहास है। जब मैं १९२७ में चीन में था तो हिन्दोस्तान से एक नये कामरेड मास्को में आये। इन्होंने अपनी रिपोर्ट में हिन्दोस्तान के वर्तमान उद्योग-धंधों के आकस्मिक विकास पर काफी जोर दिया। इस प्रकार का विकास-जिसको मैंने हमेशे महायुद्ध के बाद (Post-war) के भारत की एक खास स्थिति बतलाई थी—अनिवार्यतः हमारा खयाल दो बातों की तरफ आकृष्ट करता है। अपने कार्यक्रम को वस्तुस्थिति के अनुकूल रखने के लिए हमें इनकी सावधानी से परीक्षा करनी चाहिये। इनमें पहली बात राष्ट्रीय आन्दोलन के भीतर वर्ग-संघर्ष की उत्तरोत्तर तीव्रता तथा दूसरी, राष्ट्रवादी धनिकों का विदेशी साम्राज्यवाद से अधिकाधिक मेल है।

देश का औद्योगीकरण (Industrialisation)—साम्राज्यवादियों की पूंजी के सहारे होने पर भी, (जो बात हिन्दोस्तान में नहीं है)—देश के धनिकों के लिये नफे की चीज है। ये लोग साम्राज्यशाही से सिर्फ इसलिये झगड़ते हैं कि वह उनके वर्ग के स्वच्छन्द विकास में रुकावट डालती है। फलतः जब साम्राज्यशाही अपने आन्तरिक विरोधों से मजबूर होकर औपनिवेशिक देश का आंशिक औद्योगीकरण होने देती है, और कुछ दूर तक उसे प्रोत्साहित भी करती है—जैसा कि हिन्दोस्तान में थोड़े अरसे से होता रहा है—तो देश के धनिकों तथा विदेशी साम्राज्यशाही के बीच मुखालफत का आधार कमता जाता है। राष्ट्रीय सम्मिलित मोर्चा टूटने लगता है और उसकी जगह में देश के धनिकों और विदेशी साम्राज्यशाही का श्रमजीवी वर्ग के खिलाफ एक नया मोर्चा निर्मित होता है। ऐसी परिस्थिति में देश

का धनी वर्ग 'मोकम्मिल औपनिवेशिक पददलन' (absolute colonial oppression) की पूर्ववर्ती स्थिति से बरी हो जाता है। उक्त भारतीय प्रतिनिधि की रिपोर्ट पर बहस के सिलसिले में बुखारिन ने यह सलाह दी कि इस प्रश्न पर जांच करने के लिये जिस कमीशन की नियुक्ति हो वह इस 'अनुपनिवेशीकरण (डि-कोलोनाइजेशन)' की विस्तार-विधि पर भी अपनी राय पेश करे। बुखारिन ने प्रत्यक्षतः इस शब्द का प्रथम-प्रथम प्रयोग तत्काल के लिये तथा सापेक्षिक अर्थ (tentative and relative sense) में किया।

चीन से लौटने के बाद, उक्त कमीशन की जांच-पड़ताल के आधार पर मुझे एक प्रस्ताव तैयार करने का काम सौंपा गया। मेरे द्वारा लिखित यह प्रस्ताव ही, जो विधिवत् कभी स्वीकृत नहीं हुआ, मेरे विरुद्ध सब से बड़ा अस्त्र बना। प्रस्ताव के स्वीकृत नहीं होने का कारण कुछ उसके खिलाफ एतराज नहीं, प्रत्युत इस विषय में घटती हुई दिलचस्पी था। बाद को, किसी अज्ञात जुर्म के कारण, मेरे विरुद्ध गुप्त रूप से तथा आगे से ही तय-शुदा निर्णय के समर्थन में जब सुबूत ढूंढ़ने की आवश्यकता हुई, तो मेरी सैद्धान्तिक प्रतिकूलताओं का इसी प्रस्ताव से आविष्कार हुआ। यदि इस प्रस्ताव में मेरे अपराधों का प्रमाण था तो इसे प्रकाशित क्यों नहीं किया गया? शायद इसलिये ऐसा करना वांछित नहीं हो कि प्रस्ताव मुझ पर लगाये गये आक्षेपों की अप्रच्छन्न निराधारता को व्यक्त कर देता। स्थानाभाव मुझे प्रस्ताव से विस्तृत उद्धरणों के देने से मजबूर करता है, और ऐसे लम्बे लेख—टाइप किये हुए ४० पृष्ठ को प्रका-

शित करने के साधन भी मुझे प्राप्त नहीं हैं। इसलिये मैं सबसे जरूरी प्रकरणों का उल्लेख करके ही संतोष करूंगा।

देश की आर्थिक अवस्था का विश्लेषण करने तथा "महायुद्ध के बाद के औपनिवेशिक शोषण" के (Post-war colonial exploitation) तरीकों का जिक्र करने के पश्चात् मैंने निम्नलिखित उपसंहार दिया था:—

"इस नये मार्ग पर साम्राज्यशाही बड़ी सावधानी से बढ़ेगी, क्योंकि यह 'महायुद्ध के बाद के संकट' (Post-war crisis) से उसे मुक्त भी कर सकता है और उसका विनाश भी। इस नयी नीति का अभिप्राय होगा, हिन्दोस्तान का 'अनुपनिवेशीकरण (डि-कोलोनाईजेशन)', जिसे आहिस्ता आहिस्ता एक पूर्णतः अधीन राष्ट्र (Dependency) की स्थिति से डोमिनियन-स्टेटस की ओर बढ़ने दिया जायगा। भारतीय धनी वर्ग एक शक्तिमान प्रतिद्वन्द्वी के रूप में निरन्तर दबाये जाने के बदले, सम्राज्यशाही पूंजी के नेतृत्व में देश की आर्थिक उन्नति में साझीदार बनाया जायगा। एक पिछड़े हुए कृषि-प्रधान मुल्क की जगह हिन्दोस्तान एक आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र बनेगा—"स्वतन्त्र ब्रिटिश राष्ट्रों (?) के संयुक्त राज्य (Commonwealth) का एक सदस्य।" हिन्दोस्तान अनुपनिवेशीकरण की स्थिति में इस वजह से है, कि महायुद्ध के बाद के पूंजीवादी-संकट से बाध्य होकर ग्रहण की हुई यह साम्राज्यशाही नीति, औपनिवेशिक शोषण के पुराने तरीकों को त्याग कर नये ढंग तथा नये तरीकों को अपनाती है। उत्पादन की

वे शक्तियां जिनके स्वाभाविक विकास की संभावनायें अबतक बन्द थीं, प्रतिबन्ध-मुक्त की जाती हैं। राष्ट्र के आर्थिक ढांचे की बुनियाद (basis of national economy) ही बदल जाती है। पुराने वर्ग-सम्बन्धों (class-relations) के स्थान में नये वर्ग-सम्बन्ध खड़े होते हैं। देश के मौलिक उद्योग—कृषि में, इनक़लाब पैदा हो जाता है। ....

"देश की आर्थिक जिन्दगी में स्थानीय धनिकों को अधिकाधिक प्रधानता हासिल होती है। आर्थिक क्षेत्र में इन परिवर्तनों का राजनैतिक परिणाम भी होता है। उत्तरोत्तर अनुपनिवेशीकरण की इस अनिवार्य क्रिया में ही साम्राज्य को विच्छिन्न करनेवाली शक्तियां मौजूद रहती हैं।

भारतीय धनीवर्ग पूर्ण औपनिवेशिक दमन की चक्की से बरी होता है। अपने आर्थिक आधार को स्थायित्व प्रदान करने तथा हिन्दोस्तान में अपनी स्थिति मजबूत करने के ख़याल से, ब्रिटिश साम्राज्यशाही एक ऐसी नीति अख्तियार करने को मजबूर होती है जो भारतीय धनीवर्ग को कुछ रियायतें दिये बगैर कार्य्यान्वित नहीं हो सकती। ये रियायतें राष्ट्रवादी धनिकों को जीत के स्वरूप नहीं मिलतीं। ये साम्राज्यशाही की अनिच्छापूर्ण किन्तु कृतज्ञता-जनक देन हैं। इसलिये अनुपनिवेशीकरण की क्रिया "राष्ट्रवादी धनिकों की क्रान्तिकारी शक्ति के ह्रास" (de-revolutionisation of the nationalist bourgeoisie) की क्रिया के समानान्तर चलती है।"

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट होगा—(निस्सन्देह, सिर्फ पक्षपात विहीन पाठकों को)–कि 'अनुपनिवेशीकरण' शब्द का इस्तेमाल एक नई गति की ओर संकेत करने के लिये केवल फिलहाल के लिये, तथा धनी वर्ग के सम्बन्ध में सिर्फ सापेक्षिक रूप में, किया गया है—जो कि समूची आबादी के बहुत छोटे अंश हैं। यह कहीं नहीं कहा गया है कि इस नई गति का असर सम्पूर्ण जन समुदाय पर पड़ता है। और यह अर्थ तो खींच-तान कर भी नहीं निकल सकता कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही की मंजूरी से भारतीय जनता के आजाद होने की तनिक भी संभावना है। बल्कि, इसके विपरीत, यह साफ लफ्जों में कहा गया है कि धनिकों की स्थिति में 'थोड़ी तरक्की होने देने की नीति' कुल राष्ट्र के शोषण को तीव्रतर बनाने की योजना का परिणाम है। किन्तु तो भी, यही वह फांसी का तख्ता है जिसके सहारे कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के छठें विश्व-कांग्रेस के सम्मुख मैं लटकाया गया।

अब कुछ उस आकस्मिक स्नेह के बारे में मैं कहना चाहता हूं जो कुसीनेन के कथनानुसार राष्ट्रवादी धनिकों के प्रति मुझमें अचानक पैदा हो गया है। यहां भी, इन्टरनैशनल के द्वितीय कांग्रेस (१९२०) के बाद की मेरी सारी हरकतें कुसीनेन के कथन की असत्यता को प्रमाणित करेंगी। द्वितीय कांग्रेस में औपनिवेशिक क्रान्तिकारी आन्दोलन के सम्बन्ध में धनीवर्ग के रुख के प्रश्न पर लेनिन से मेरा मत-भेद था। इस सम्बन्ध में मेरे विचार उस थिसिस में मौजूद हैं जो लेनिन के तैयार किये हुए थिसिस के पूरक रूप से

(Supplementary to those drafted by Lenin) कांग्रेस में स्वीकृत हुआ था। जो लोग मुझे मेरे अपने ख़यालों तथा कार्यों के आधार पर आंकना चाहते हैं उनसे मैं केवल यह प्रार्थना करूंगा कि वे मेरे लेखों को पढ़ें। ऊपर कहे हुए प्रस्ताव में सितम्बर १९२७ में मैंने लिखा था:—

"ये सभी बातें मिलकर भारत के राष्ट्रवादी धनिकों की गति का निश्चय करती हैं। अब वे एक क्रान्तिकारी-ताकत नहीं रह गये हैं। केवल भारत की आन्तरिक स्थिति के ही खयाल से नहीं, वरन वर्तमान विश्व स्थिति के विचार से भी, भारतीय धनीवर्ग क्रान्ति-विरोधी शक्तियों के साथ जुड़ गया है। यह हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई का—(जिसका उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद हो)—न नेतृत्व करता है और न कर सकता है, तथा उसमें भाग भी नहीं लेता।......हिन्दुस्तान की क्रान्ति को अभी बुर्जुआ प्रजातन्त्र के कार्यक्रम की पूर्ति अवश्य करनी है; किन्तु अब यह प्रश्न बुर्जुआ क्रान्ति का कदापि नहीं रह गया है, क्योंकि पूंजीवादी समाज की सीमा को तोड़ कर ही इसे सफलता मिलेगी।"

इस प्रकार की स्पष्ट उक्ति की विद्यमानता में भी इन्टरनैशनल कार्य-समिति की १० वीं बैठक मुझे इस आधार पर इन्टरनैशनल से बाहर करती है कि मैंने राष्ट्रवादी धनिकों से सहकारिता की अवसर-वादी नीति (opportunist policy of a block with the nationalist bourgeoisie) की ताईद की। प्रत्यक्षतः, इन्टरनैशनल के वर्तमान नेताओं को उसके आम सदस्यों के ज्ञान का बड़ा ओछा

खयाल है। १०वीं बैठक में एक नया इलजाम मेरे विरुद्ध खड़ा किया जा सका—ब्रैन्डलर के अनुयायी 'विश्वासद्रोहियों' (जर्मनी के कम्यूनिस्टपार्टी का विरोधी दल) के पत्रों में लेख लिखने का। इस जुर्म ने शासनारूढ़ गुट्ट का कार्य सहल कर दिया। यह खोज–पूछ करने की जरूरत नहीं हुई कि क्या लिखा गया; सिर्फ यह वस्तु कि उक्त विरोधी दल के पत्रों में कुछ लिखा गया, लेखक को अपराधी प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हुई।

कुसीनेन ने छठें विश्व-कांग्रेस द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव तथा उसके बल पर अपनाई गई घोर क्षतिपूर्ण, परा-वामपक्षीय (Ultra-leftist), संकीर्ण तथा ट्राट्रस्कीवादी नीति की मेरी आलोचना का उत्तर देने की कुछ हलकी कोशिश की थी। किन्तु वस्तुत: उसने मेरी आलोचना का जवाब नहीं दिया। ऐसा शायद वह कर भी नहीं सकता था—कारण, मेरी आलोचना में सिर्फ उन बातों का, उन तथ्यों का उल्लेख था जिनसे यह स्पष्ट हो जाता था कि छठें कांग्रेस का प्रस्ताव परिस्थिति की गलत समझ पर अवलम्बित है। कुसीनेन ने अपने समर्थन में मेरे लेख से उद्धरण नहीं पेश किये, बल्कि मेरी बातों को विकृत रूप में रखा। बैठक के सम्मुख उसने यह कह कर काम चलाया कि "मेरे लेख में वैसा उसने पढ़ा था ! जर्मन विरोधी दल के एक पत्र में मैंने यह बात बतलाई थी कि ठीक उस मौके पर जब कि स्वराज पार्टी पब्लिक सेफ्टी बिल के सम्बन्ध में साम्राज्यशाही की निरंकुशता का धारा-सभा के जरिये विरोध कर रही थी, कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के एक घोषणापत्र में "साम्राज्यशाही का नाश हो",

"स्वराज-पार्टी का नाश हो" इत्यादि नारे लगाये गये थे। वैसे समय में स्वराजपार्टी के विनाश का नारा लगाने के अनौचित्य का उल्लेख करने का मेरा आशय स्वराजपार्टी को कम्यूनिज्म का हामी बतलाना नहीं था। इसके विपरीत, मैंने वर्षों तक स्वराज पार्टी के क्रान्ति-कारी रोल के प्रति कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के नेतृत्व-प्राप्त व्यक्तियों के भ्रम का निराकरण किया था। इस बारे में भी मैं सबूत के लिये लिखित कागजातों का ही हवाला दूंगा। वैसे दुर्भाग्यपूर्ण मौके पर वैसा नारा देने की अपनी विषम भूल को सही सिद्ध करने में विफल होकर, कुसीनेन स्वराज-पार्टी के प्रति अवसरवादी भ्रान्ति (opportunist illusion) रखने का मुझ पर आरोप करता है। उदाहरणार्थ, वह यहां तक घोषित करता है कि मैंने 'स्वराजवादियों' को अब 'स्वाधीनतावादी' स्वीकार कर लिया है। यदि किसी राजनैतिक बहस के चलाने की विधि में वह ईमानदार रहता तो वह ऐसी औंधी घोषणा कभी नहीं कर बैठता—कारण किसी स्थान पर भी इसके लिये कोई बुनियाद नहीं है। राष्ट्रवादी धनीवर्ग की सुलह करनेवाली वृत्ति का जनता के सामने सफल स्पष्टीकरण सिर्फ मूर्खतापूर्ण और उत्तेजक नारों के लगाने से नहीं हो सकता। इसके लिये "कम्यूनिस्टों" को वर्ग-विभाजन (Class differentiation) की नीति अपनानी होगी। पेटी-बुर्जुआ * जनता (फटेहाल बाबू वर्ग) को, बड़े धनी-मानी लोगों के सुधारवादी नेतृत्व के

* पेटी-बुर्जुआ, निम्न मध्यम-श्रेणी के लोगों को कहते हैं जो दिनों दिन गरीब होते जा रहे हैं।—लेखक।

खिलाफ, उनके विद्रोह में मदद देनी होगी—यद्यपि यह बात सही है कि यह विद्रोह अक्सर कमजोर और डांवाडोल होगा।

ठीक इसी सम्बन्ध में इन्टरनैशनल का वर्तमान कार्यक्रम वास्तविकता से बहुत दूर चला जाता है। संकीर्ण विचारिता से अभिभूत होकर, पेटी-बुर्जुआ जन समुदाय की लड़ाई से अपने को जुदा कर लेने का परिणाम यह होता है कि वे फेसिज्म की तरफ अग्रसर होने लगते हैं। कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के भारत-सम्बन्धी विशेषज्ञों के लिये यह उत्तम होगा कि वे परिस्थिति की इस गम्भीरता को अनुभव करें। संयुक्त-मोर्चे की लेनिनवादी नीति के प्रयोग से पेटी-बुर्जुआ जनता का यह स्वतन्त्रता-संघक्रान्ति की उन्नति के लिये एक शक्तिशाली अस्त्र बन जाता। चीन के तजरबे की यह एक कीमती नसीहत है। मेरे विरुद्ध कुसीनेन की असंगत और झूठे प्रचार से, इस दुखद तथ्य में कोई फर्क नहीं पड़ता, कि ऐन उस मौके पर जब पेटी-बुर्जुआ जनता राष्ट्र की क्रान्तिकारी लड़ाई में उपयुक्त नेतृत्व पाने के लिये मजदूर-वर्ग की तरफ आ रही थी, हिन्दुस्तान के नौजवान और अनुभव-हीन कम्यूनिस्टों को अपने सीमित दायरे में चुपचाप बंद हो जाने का हुक्म दिया गया।

कुसीनेन संभवतः पेटी-बुर्जआ जनता की क्रान्तिकारी शक्ति से इनकार नहीं कर सका, किन्तु तो भी उसने उनकी संस्था से तटस्थता कबूल की और मजदूरों को भी उनसे कोई संस्थागत सम्बन्ध रखने की इजाजत नहीं दी। उलटे इसी संकीर्णता

की मेरी आलोचना का अब यह प्रवंचनापूर्ण अर्थ निकाला जा रहा है कि मैंने "समूचे धनी-वर्ग ("Entire Bourgeoisie") से अवसर-वादी सहयोगिता की" नीति चाही थी।

छठें कांग्रेस ने मुझपर सोशल डेमोक्रैटिक विचार रखने का आरोप किया है, किन्तु मेरे अभाग्यवश इन्टरनैशनल के समक्ष वे कागजात नहीं रखे गये जिनसे मेरा यह जुर्म साबित होता हो। मैं स्वयं कांग्रेस में मौजूद नहीं रहने के कारण अपनी सफाई नहीं दे सका और न यही कह सका कि वस्तुतः मेरे क्या ख्याल हैं। कांग्रेस की रिपोर्ट और प्रस्तावों के प्रकाशित होने के तुरत बाद ही मैंने अपने विचारों का एक विस्तृत वक्तव्य इन्टरनैशनल की कार्य-समिति के सम्मुख पेश किया। वक्तव्य में कुसीनेन की रिपोर्ट और उसके आधार पर स्वीकृत कार्यविधि की आलोचना भी थी। अन्तर्राष्ट्रीय कार्य-समिति ने उस वक्तव्य को प्रकाशित क्यों नहीं किया ? इसी में यदि मेरी अवसरवादी पथ-भ्रष्टता का प्रमाण है, तो इसका प्रकाशन मुझे दोषी साबित करने के लिये पर्याप्त होगा। यह लेख भी काफी लम्बा है। इसीलिये मैं स्वयं इसे प्रकाशित करने में असमर्थ हूं—जिससे कि इन्टरनैशनल को सच्ची बातों का ज्ञान होता और विभेद की मुख्य समस्याओं का भी स्पष्टीकरण होता। किन्तु वर्तमान स्थिति में, यह विश्वास करना क्या युक्ति-संगत नहीं होगा कि इन्टरनैशनल के मौजूदा नेताओं ने उस वक्तव्य को इसलिये दबा लिया कि उसमें दी हुई दलीलों तथा तथ्यों की सचाई से वे इनकार करने में असमर्थ थे ?

मुझ पर गुमराह होने के जो दो मुख्य आरोप हैं, वे परस्पर विरोधी हैं। जबतक कोई पागल न हो जाय, तबतक दोनों विचारों का एक साथ हामी नहीं हो सकता। यह कहना सोशल डेमोक्रैटिक पथ-भ्रष्टता नहीं है कि भारतीय राष्ट्रवादी पूर्ण औपनिवेशिक दमन की स्थिति से मुक्त हो रहे हैं। मैं तो वस्तु-स्थिति के सिर्फ एक लक्षण की तरफ संकेत कर रहा हूं। "अनुपनिवेशीकरण" शब्द का प्रयोग तो एक गौण प्रश्न है। एक मार्क्सवादी को तथ्य की तरफ जाना चाहिये। प्रचलित शब्दों की खाल उधेड़ना तो बेसूद होगा। छठें कांग्रेस के सामने असल विचारणीय बात यह थी कि महायुद्ध के बाद के पूंजीवादी-ह्रास (Capitalist decline) के समय में भी औपनिवेशिक शोषण के रूप और कायदे वे ही हैं जो महायुद्ध के पहले के पूंजीवादी विस्तार और सामृद्धि के दिनों में थे, या उनमें तबदीली हुई है। मेरा कथन यह है कि वे समान नहीं हैं; उनमें अन्तर पड़ा है। छठें कांग्रेस में भारतीय प्रश्न पर जो बहस हुई थी उसकी आलोचना में पेश किये गये अपने वक्तव्य में—जिसे इन्टर-नैशनल की कार्य समिति ने दबा रखा है—इस को मैंने पूर्णतः प्रमाणित किया है। जब मैं इस दृष्टिकोण को मानता हूं, तो इसकी संभावना ही नहीं हो सकती कि राष्ट्रवादी धनिकों के साथ मैं सहयोग करने की ताईद करूं—जबतक मेरा मतलब एक क्रान्ति-विरोधी ऐक्य कायम करने का नहीं हो जाय; और सौभाग्यवश यह अभियोग मुझ पर कभी नहीं लगाया गया है। जो मेरा प्रस्ताव था, और अब भी मैं जिसका समर्थक हूं, वह यही कि हिन्दोस्तान की

मौजूदा हालत में कम्यूनिस्टों को चाहिये कि मजदूर-वर्ग के नेतृत्व में दलित और शोषित जन-समुदाय का एक विशालतम संयुक्त-मोर्चा कायम करने में अग्रसर हों। इस मोर्चे का कार्य्यक्रम क्रान्ति-वादी प्रजातंत्रीय होना चाहिये, जिससे लड़ाई एक साथ ही दो मोर्चों पर—एक साम्राज्यशाही तथा दूसरा देशीय-धनिकों (native bourgeoisie) के खिलाफ—लड़ी जा सके। छठें कांग्रेस से मंजूर कोई भी प्रस्ताव सिद्धान्ततः इस प्रकार के संयुक्त-मोर्चे का विरोध नहीं करता, किन्तु कम्यूनिस्टों को किसी भी बहु-वर्गीय (multi-class) पार्टी में शामिल होने का निषेध करके कार्यतः वह ऐसा करता है। उक्त प्रस्ताव अनेक ज्वलन्त अन्तर्विरोधों (contradictions) से भरा हुआ है। एक तरफ तो यह ऐलान किया जाता है कि समूचे राष्ट्र का साम्राज्यवादी शोषण तीव्रतर होता जा रहा है, और दूसरी तरफ इस का भी समर्थन होता है कि राष्ट्रवादी धनी-वर्ग क्रान्ति-विरोधी है। यदि पहली बात सही है तो राष्ट्रवादी धनिकों ने साम्राज्यशाही के विरुद्ध लड़ाई को त्यागा क्यों? प्रत्यक्षतः ही, साम्राज्यशाही राष्ट्रवादी धनी-वर्ग को औपनिवेशिक दोहन (exp-loitation) की क्रिया में कुछ स्थान देती जा रही है। यदि आज भी वे पहले की ही तरह दबे हुए हैं, और यदि उनकी स्थिति में कोई उन्नति होने की आशा नहीं है, तो निश्चय ही वे अब भी उसी प्रकार क्रान्ति-समर्थक रहेंगे। अस्तु, इन्टरनैशनल के मौजूदा नेताओं की उग्र उक्तियों के पीछे, पहले की अवसरवादिता की छाया वर्तमान है। परा वाम-पक्षीय (ultra-leftist) नीति, कठोर क्रान्तिकारी परीक्षणों में

पड़कर कभी भी अवसरवादिता में पतित हो जा सकती है। भारत-वर्ष का कल्पित सोवियट गणतंत्र यदि उग्रता-व्यंजक शब्दों के इस्ते-माल से ही प्राप्त नहीं हो सकेगा, तो संभव है नीति परिवर्तित होकर सीधे दूसरे छोर पर पहुंचे और "राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी धनी वर्ग" के साथ संयोग की ताईद होने लगे।

मुझ पर जो दोषारोपण किये गये हैं वे मिथ्या हैं। मेरा अपराध यही है कि मैं स्वतन्त्र-विचारिता को अपना हक समझता हूं। किन्तु इन्टरनैशनल की वर्तमान नाजुक हालत में इसे सहन नहीं किया जाता। मुझे तबतक "विश्वासद्रोही" घोषित नहीं किया गया तथा इन्टरनैशनल से अलग करने की जरूरत नहीं हुई, जबतक मैंने अपना मतभेद प्रकट नहीं किया। खामोश रहने का प्रतिबन्ध मुझपर डाला गया; चुप रहने का आदेश हुआ। दूसरे शब्दों में यदि मैंने अपनी आवाज उठाने की हिम्मत नहीं की होती तो स्वतन्त्र विचारिता के अक्षम्य अपराध के कारण, मैं सदैव के लिये विस्मृति के गढ़े में फेंक दिया जाता। किन्तु एक क्रान्तिकारी का कर्त्तव्य कभी-कभी अनुशासन के संकीर्ण दायरे का उल्लंघन करने को मजबूर होता है। मैं एक ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया गया था कि इन्टरनैशनल के वर्तमान नेतृत्व के खिलाफ—जो कि इस का विनाश करने पर तुला है—विरोधी दल (Opposition) में शरीक होना मेरी क्रान्तिकारी जिम्मेवारी थी।

मैं छठें कांग्रेस के सिर्फ भारत-सम्बन्धी प्रस्ताव से ही नहीं, बल्कि सभी प्रस्तावों से विरोध रखता हूं। यदि भूल सिर्फ एक

प्रश्न पर ही होती तो शायद रुकने की आवश्यकता थी कि कदाचित समय आने पर इसे सुधार लिया जाय। किन्तु भारत सम्बन्धी ग़लती एक बड़ी भूल का सिर्फ छोटा अंश है। अतएव चुप बैठ जाना अनुचित है। इन्टरनैशनल एक संकटापन्न अवस्था में है। इसका प्रत्यक्षीकरण उसके नेतृत्व की बनावट और उसकी कार्य्य-विधि से होता है।"*

* इस लेख को कामरेड राय ने कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल से अपने अलग किये जाने के तुरत बाद लिखा था जिसका यूरोपीय पत्रों में विस्तृत प्रकाशन हुआ था। थोड़े से शब्दों में कामरेड राय और इन्टरनैशनल के शासनरूढ़ दल के विभेद का वर्णन है और उन कारणों की भी व्याख्या की गई है जिनकी बुनियाद पर कामरेड राय का मनमाना बहिष्करण हुआ था।

यह खुशी की बात है कि धीरे धीरे अब कामरेड राय के दृष्टिकोण को इन्टरनैशनल ने बहुतांश में सही माना है और उसके आधार पर अपनी नीति निर्धारित की है। यह लेख मेरठ कम्युनिस्ट षड़यन्त्र केस में भी पेश किया गया था—लेखक।

जर्मनी में दो साल

यह सच है कि रूस से कामरेड राय की लम्बी गैरहाजरी का फायदा उठाकर बहुत से हिन्दोस्तानियों ने कोमिनटार्न में उनके खिलाफ एक खास वायुमण्डल पैदा कर दिया था। एआ टेनडुलकर (Aya Tandulker), पाल सेफर (Paul Scheffer) प्रभृति व्यक्तियों ने खुलेआम हिन्दोस्तान और यूरोप में कामरेड राय के खिलाफ प्रचार आरम्भ किया। ये सज्जन बाद को स्काटलैण्ड यार्ड (ब्रिटिश सी० आइ० डी०) के सदस्य निकले।

जो कुछ हो इन्टरनेशनल से कामरेड राय के अलग होते ही यूरोप में एक हलचल मच गई। साम्राज्यवादी समाचार एजेन्सियों के मार्फत यह खबर रेडियो द्वारा ब्राडकास्ट हुई। ब्रिटेन तथा अन्य साम्राज्य-वादी राष्ट्रों में इस समाचार पर खुशियां मनाई गईं। लण्डन टाइम्स में तो बड़े बड़े हरूफ में निकला—Fall of the Moscow Agent (मास्को एजेन्ट का पतन)। बहुत दिनों तक उसमें लेख-

माला प्रकाशित होती रही जिसमें राय के साथ साथ लेनिन की भी कड़ी आलोचना की गई।

साम्राज्यवादी-प्रेस तो राय को बदनाम कर ही रहे थे। मास्को के इशारे पर चलनेवाले कम्यूनिस्टों ने भी राय को प्रतिगामी इत्यादि कह कर बदनाम करना आरम्भ किया। इन तूफानों के बीच राय पहाड़ की तरह स्थिर थे। किसी की परवा न कर वे अपने कार्य्यों में संलग्न रहे। इन विषयों पर जब एक बार यूरोप के एक प्रेस-प्रतिनिधि ने उनसे प्रश्न किया तो उन्होंने हंसते हुए उत्तर दिया कि "उन लोगों को सब कुछ करने दो। मुझे उसकी परवा नहीं। आज नहीं तो कल लोगों को सच्चाई मालूम ही हो जायेगी।" सोवियट यूनियन तथा कोमिनटार्न के सम्बन्ध में उन्होंने यह कहा कि "कितना भी मतभेद मुझसे और कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल से हो, मैं उसकी हर हालतों में रक्षा करने को तैयार रहूंगा। सोवियट-यूनियन की रक्षा करना संसार के प्रत्येक मजदूरों का फर्ज है। मुझसे इण्टरनैशनल का मतभेद अल्पकालिक है। कुछ दिनों के बाद वह खत्म हो जायेगा। इन्टर-नैशनल से अलग होकर भी मैं कम्यूनिस्ट आन्दोलन से अलग नहीं रह सकता।"

हुआ भी ऐसा ही। उन्होंने एक मिनट के लिये भी चैन न लिया। वे कोमिनटार्न को सच्चे लेनिनवादी रास्ते पर लाने का प्रयत्न करने लगे। फैसिज्म के खिलाफ तथा कम्यूनिज्म की स्थापना के लिये उन्होंने भीषण आन्दोलन आरम्भ किया। इस बार उनके

राजनैतिक कारवाइयों का केन्द्र जर्मनी ही बन गया। स्वस्थ होने के बाद भी वे मास्को नहीं लौटे।

लौटते कैसे? वहां स्टालिन-नीति के खिलाफ कोई बोल भी न सकता था। पार्टी के अन्दर भी बहस या स्वतंत्र-विचार की गुंजाइश नहीं थी।* छठें कांग्रेस के बाद इन्टरनैशनल ने ऐसा रुख अख्तियार किया था कि दुनिया के हर देश में कम्यूनिस्ट पार्टी नपुंसक बनती जा रही थी। लिखा जा चुका है कि लाखों की संख्या में लोग पार्टी से हट रहे थे। कम्यूनिस्ट आन्दोलन के बड़े बड़े नेता जो इन्टरनैशनल के आरम्भ से उसमें शामिल थे, बहिष्कृत कर दिये गये। कामरेड राय को ही नहीं, जर्मनी के प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट नेता ब्रैन्डलर (Brandler), अगस्ट थाल्ह-मर (August Thalhmier) तथा अमेरिका के प्रसिद्ध नेता, जे लवस्टोन (Jay Lovestone) प्रभृति विश्व-विख्यात कम्यू-निस्टों को भी इन्टरनैशनल से अलग हो जाना पड़ा। स्थिति ऐसी हो गई कि कम्यूनिस्टों के अन्दर एक बहुत बड़ा दल पैदा होगया जो इन्टरनैशनल की नई नीतियों के विरुद्ध था। कामरेड राय ने सर्व श्री ब्रैन्डलर, थाल्हमर इत्यादि नेताओं की सहायता से ऐसे कम्यूनिस्टों को एक सूत्र में बांधा। एक नई अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट संस्था कायम की गई। यह संस्था Communist (Opposition) Party के नाम से प्रसिद्ध है,—जिसकी शाखायें संसार के प्रत्येक देश में स्थापित हैं।

---

* "........no inner party democracy in the C. I."
—Bertrand Wolfe.

अभी तक कम्यूनिस्ट आन्दोलन में सिर्फ दो शाखायें थीं। एक के नेता स्टालिन थे और दूसरे के ट्राट्सकी। छठें कांग्रेस के बाद कामरेड राय, ब्रैन्डलर, लवस्टोन के नेतृत्व में एक तीसरी धारा पैदा हुई। किन्तु इस तीसरी धारा में एक विशेषता थी।—ट्राट्सकी की भांति यह दल कोमिनटार्न को प्रतिगामी या क्रान्तिविरोधी नहीं समझता था और न यह एक अलग 'चौथे इन्टरनैशनल' का ही संगठन करना चाहता था। इस पार्टी का ध्येय यही था कि वह कोमिनटार्न को सच्चे लेनिनवादी रास्ते पर लावे तथा उन नई नीतियों को छोड़ दे जिस कारण इन्टरनैशनल जनता के सम्पर्क से अलग हट रहा था। यह एक अल्पकालिक संस्था थी और इसकी आवश्यकता तभी तक थी जबतक कोमिनटार्न अपनी पुरानी नीति फिर से कबूल न कर ले। अतएव यह कहना कि कामरेड राय कोमिनटार्न के खिलाफ थे या हैं, एक मिथ्या प्रचार है।

और मांगों के अलावा उस संस्था (International Communist Opposition) की तीन मुख्य मांगे थीं:—

(१) कोमिनटार्न की ओर से राष्ट्रीय विभाग के कम्यूनिस्ट पार्टियों को आर्थिक सहायता तब तक हर्गिज न दी जाय, जबतक इसकी कोई खास आवश्यकता न हो। ऐसा होने से कम्यूनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में नौकरशाहीयत (beaurocracy) की बू आने लगती है। लोकप्रिय आन्दोलन के लिये बाहर की मदद की कोई अधिक आवश्यकता नहीं हो सकती। रूस से मदद लेने का कभी

कभी ऐसा असर होता है कि अपने देशों की परिस्थिति के अनुकूल प्रोग्राम नहीं बनाकर कार्यकर्ता रूसी नेताओं के आदेशों पर चलने को वाध्य होते हैं जिन्हें भिन्न राष्ट्रों की वस्तु-स्थिति का कुछ भी परिचय नहीं होता।

(२) प्रत्येक देश के कम्यूनिस्टों को ऐसी नीति (tactical line) काम में लाने की स्वतंत्रता हो जिसे वे वहां की वस्तु-स्थिति के अनुकूल समझें। हां, बन्धन सिर्फ यह रहे कि वैसी नीतियां कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के उद्देश्य और प्रोग्राम के आधार पर ही हों। प्रत्येक देश की परिस्थिति भिन्न होती है। सिर्फ रूस के दृष्टिकोण से संसार के कुल देशों का प्रोग्राम नहीं बन सकता। रूस में कम्यूनिस्टों के हाथ राजनैतिक-अधिकार आ चुका है। वहां की क्रान्ति सफल हो चुकी है। दूसरे देशों में अभी तक वह अवस्था नहीं आई है।

(३) इन्टरनैशनल से निकाले गये व्यक्तियों को फिर से उसमें शामिल कर लिया जाय और पार्टी के अन्दर बहस करने की पूरी आजादी हो।

इस पार्टी ने प्रत्येक देश में प्रशंसनीय काम किया। एक ओर इसने कोमिनटार्न की खतरनाक नीति का विरोध किया और दूसरी ओर फेसिज्म के विरुद्ध जबरदस्त मोर्चा खड़ा किया। प्रत्येक देश में पार्टी की अखबारें निकलती थीं। इसका केन्द्रीय मुख्य पत्र जर्मनी से निकलता था। कामरेड राय इसके प्रधान सम्पादक चुने गये थे। यूरोप के मजदूर-आन्दोलन तथा एशिया के पराधीन-

राष्ट्रों की तहरीक के विषयों पर कामरेड राय के लेख विशेष स्थान रखते हैं। यह उन्हीं के लेखों का असर था कि इस पार्टी की मर्यादा बढ़ी और धीरे धीरे लोग इस ओर आकृष्ट होने लगे। बड़े बड़े विद्वानों ने उनकी दलीलों को कबूल किया और उस पार्टी के महत्व से वाकिफ हुए। मजदूरों को भी Communist-Opposition का सच्चा मकसद मालूम हुआ। वे हजारों की संख्या में इसमें शामिल होने लगे।

राय सिर्फ सम्पादक ही नहीं थे। जर्मनी के मजदूर-आन्दोलन में उनका स्थान बहुत ऊंचा था। वहां के कामगार उन्हें अपना मुख्य नेता मानने लगे थे। वहां के कम्यूनिस्ट तथा मजदूर-आन्दोलनों में कामरेड राय का बढ़ता हुआ प्रभाव जर्मनी के पूंजीपतियों को नापसंद था। मजदूर-आन्दोलन का संचालन ऐसे क्रान्तिकारी रास्तों से हो रहा था कि लोहा तथा टीन व्यवसाय के बड़े बड़े पूंजीपति एक बार भयभीत हो उठे। यहां तक कि जर्मन-पूंजीपतियों के एक मुख-पत्र—"Lokal-an-Zeiger"— ने अपने अग्रलेख में जर्मन-सरकार से यह मुतालबा किया कि राय को जर्मनी से बाहर निकाल दिया जाय। उनके वहां रहने से क्रान्तिकारी-आन्दोलन के उभड़ने की आशंका थी। इसके बाद एक political refugee के रूप में भी राय का जर्मनी में रहना मुश्किल था। रूस से निकल जाने के बाद कोई भी ऐसा स्थान न था जहां वे सुरक्षित रूप से ठहर सकें। किसी देश की सरकार उन्हें अपने यहां ठहराने को तैयार न थी।

इन भीषण कठिनाइयों के बावजूद वे अपना काम करते ही गये—कभी छिप कर और कभी खुलेआम। जर्मन मजदूर आन्दोलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट आन्दोलन के अलावा हिन्दोस्तान के प्रश्न ने भी उन्हें व्यस्त रक्खा। जहां तक सम्भव था उन्होंने हिन्दोस्तान के लिये जर्मनी में आन्दोलन मचाया। समय-समय पर उनके बड़े महत्वपूर्ण लेख निकलते रहे जिसमें हिन्दोस्तानी-आन्दोलनों का विश्लेषण और उसके ऊपर वैज्ञानिक प्रकाश रहता था।

१९२९ का जमाना हिन्दोस्तान के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा। देश के कोने कोने में राष्ट्रीय-आन्दोलन का दौरा था। इनक़लाब-जिन्दाबाद के नारों से दिशाएं गूंज रही थीं। नौजवान आगे बढ़ने को बेचैन थे। भगत सिंह, यतीन्द्रनाथ दास, विनय कुमार इत्यादि उतावले नवयुवक हिंसात्मक-क्रान्ति के जुर्म में गिरफ्तार थे। सब से अधिक महत्वपूर्ण बात यह थी कि जनता के दबाव से कांग्रेस को 'पूर्ण-स्वराज्य' का प्रस्ताव मंजूर करना पड़ा था। इसके लिये कामरेड राय बहुत दिनों से आन्दोलन कर रहे थे। उस अवसर पर उन्होंने जर्मनी में ही एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी जिसे हिन्दोस्तान भी भेजा गया। पुस्तिका का नाम था "The lessons of the Lahore Congress." * और उसमें हिन्दोस्तान की राजनैतिक अवस्था

---

* यह पैम्फलेट श्री तैयब शेख (जो उस समय सेन्ट्रल यूरोप के हिन्दोस्तान एसोशियेसन के मन्त्री थे) तथा कई और व्यक्तियों के नाम से प्रकाशित हुआ था। तैयब शेख इन दिनों एक राजनैतिक जुर्म में फरार हैं। १९३५ में वे कलकत्ता मजिस्ट्रेट के वारंट पर बम्बई में गिरफ्तार हुए

का विश्लेषण था। उसमें यह बतलाया गया था कि पूर्ण-स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास करके कांग्रेस ने बहुत आगे कदम बढ़ाया है किन्तु सिर्फ इस प्रस्ताव से कुछ नहीं हो सकता यदि उसे प्राप्त करने के लिये क्रान्तिवादी मार्ग अवलम्बन न किया जाय। उसमें राष्ट्रीय-क्रान्ति का तफसील में प्रोग्राम दिया गया था और यह अपील की गई थी कि उसी नक्शे को सामने रख कर स्वाधीनता की लड़ाई आगे बढ़ाई जाय। इसी पुस्तिका में उन्होंने हिन्दोस्तान के लिये संघ-बद्ध प्रजा-तन्त्र की स्थापना, देशी राज्यों तथा जमीन्दारी प्रथा का नाश (बिना मुआवज़े के), किसानों के कर्ज की मंसूखी, खानों तथा बड़े बड़े व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण, मजदूरों को संगठन कायम करने की स्वतन्त्रता, उनकी हालतों का सुधार, अल्प-संख्यक दलों की रक्षा, प्रेस, प्लेटफार्म तथा संगठन की स्वतन्त्रता, अनिवार्य्य निःशुल्क शिक्षा, हथियार रखने की स्वतन्त्रता इत्यादि प्रत्येक विषय पर तफसील में लिखा था और यह जोर दिया था कि बिना आर्थिक बुनियाद पर आन्दोलन को खड़ा किये हम आजादी की लड़ाई को मजबूत कर ही नहीं सकते। यह पुस्तिका हिन्दोस्तान में भी हज़ारों की संख्या में बंटी थी।

हिन्दोस्तान में उन दिनों बेचैनी थी, क्रान्तिकारी जोश था। जनता के दबाव से कांग्रेस को अपना ध्येय पूर्ण-स्वराज्य रखना पड़ा

थे। कलकत्ता लाये जाने के समय उन पर सख्त पहरा था और वे हथकड़ियों में जकड़े थे। कहते हैं कि इतना होने पर भी वे रास्ते से ही लापता हो गये —लेखक।

था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में नमक-कानून तोड़ने का बड़ा ही शक्तिशाली आन्दोलन खड़ा हो गया। किन्तु सुधारवादी नेतृत्व के कारण आन्दोलन आगे बढ़ न सका। साम्राज्यवाद ने सन्धि चाही। राउण्ड-टेबिल-कान्फरेन्स में कांग्रेस का निमन्त्रण हुआ। लाहौर के पूर्ण-स्वराज्य वाले प्रस्ताव का यह अर्थ था कि राउण्ड-टेबिल-कान्फरेन्सों के चक्कर में हम न फंसे। किन्तु ऐसा नहीं हुआ।

साम्राज्यशाही उस जन-आन्दोलन की क्रान्तिकारी शक्तियों से वाकिफ थी और भयभीत थी। उसने आन्दोलन को कुचलना आरम्भ किया। लाखों निहत्थे जेलों में ठूस दिये गये। गिरफ्तारी और भयानक जुल्मों का चारो ओर साम्राज्य था। हजारों की संख्या में बिना मुकदमे के नौजवानों को अनिश्चित काल के लिये जेलों में बन्द कर दिया गया। कितने नवयुवक फांसी के तख्तों पर झूल गये। देश का शासन कानूनों के बदले आर्डिनेन्सों से होने लगा। यह अत्याचार हिन्दोस्तान में उस समय हो रहा था जब इङ्गलैण्ड में लेबर पार्टी की हुकूमत (Labour Government) थी और उसके प्रधान मन्त्री थे श्री रामजे मेक्डोनाल्ड।

ठीक उन्हीं दिनों यूरोपीय अखबारों में यह प्रकाशित हुआ कि १२ मई १९३० को समाजवादी-मजदूर-इन्टरनैशनल (Socialist Labour International) * के कार्य्यकारिणी की मीटिंग बर्लिन में होने वाली है। ब्रिटिश लेबर पार्टी इस इण्टरनैशनल की एक शाखा थी और फलतः उसके नुमाइन्दे इन्टरनैशनल की कार्य्यकारिणी

* इसे आमतौर पर सेकेण्ड इन्टरनैशनल कहा जाता है।

के सदस्य थे। मीटिंग में शामिल होने के लिये वे ब्रिटिश नुमाइन्दे भी बर्लिन में आने वाले थे जिन्हें जर्मन सोशल-डेमोक्रैटिक पार्टी की ओर से सार्वजनिक-स्वागत किया जाने वाला था। कामरेड राय ने सोचा कि लेबर-गवर्नमेंट द्वारा हिन्दोस्तान में किये जानेवाले जुल्मों के विरोध करने का यह अनुकूल अवसर है। उन्होंने यूरोप के तमाम हिन्दोस्तानियों तथा उनके राष्ट्रीय अन्दोलन के प्रति सहानुभूति रखने-वालों को इकट्ठा किया। यह तय हुआ कि द्वितीय-इण्टरनैशनल में शामिल होने के लिये जब इङ्गलैण्ड के लेबर पार्टी के नुमाइन्दे आवें तो ब्रिटिश सरकार की उस नीति का सख्त विरोध किया जाय जो हिन्दोस्तान में लागू किया गया है। उसके खिलाफ प्रदर्शन किये जायं और लेबर पार्टी की यह पोल खोली जाय कि जो सरकार इङ्गलैण्ड के कामगारों के प्रतिनिधित्व का दावा करती है, वह हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन को इस प्रकार क्यों कुचल रही है। राय के प्रयत्नों के फल-स्वरूप बर्लिन में ब्रिटिश प्रतिनिधि के खिलाफ एक बहुत बड़ा प्रदर्शन संगठित हुआ। उसी अवसर पर सेकेण्ड इन्टर-नैशनल के कार्य्यकारिणी के पास एक खुली-चिट्ठी भी लिखी गई। उसका सारांश यों है—

"१६२८ में सोशलिस्ट लेबर इन्टरनैशनल की स्टट्गार्ट वाली सभा में यह प्रस्ताव पास हुआ था कि वह सभा पीड़ित औपनिवेशिक देशों को और ख़ास कर हिन्दोस्तान के लोगों को आजादी हासिल करने में सहायता देगी। इस संस्था की एक मुख्य शाखा ब्रिटिश-लेबर-पार्टी है जिसके हाथ में आज ग्रेट-ब्रिटेन की सरकार है। उसी

पार्टी की आज्ञा से हिन्दोस्तान का साम्राज्य-विरोधी युद्ध कुचला जा रहा है। कांग्रेस की संस्थाओं पर रोक लगाई जा रही है। लोग अपने प्राथमिक जनसत्तात्मक अधिकारों (elementary democratic rights) से, प्रेस, प्लाटफार्म तथा संगठन कायम करने की आजादी से वंचित किये जा रहे हैं। हिन्दोस्तान 'आर्डिनेन्स' द्वारा शासित हो रहा है। हजारों पुरुष और स्त्रियां, यहां तक कि महात्मा गांधी भी पकड़ कर जेल भेज दिये गये हैं।

हिन्दोस्तान के लोग केवल इसलिये सताये जा रहे हैं कि उन्होंने गोलमेज कान्फरेन्स (Round Table Conference) के उस फन्दे का विरोध किया है जिससे उन पर साम्राज्यशाही का चंगुल और भी मजबूत होने वाला है और क्योंकि वे समझते हैं कि उनके राजनैतिक भाग्य के बनाने में बृटिश-पार्लामेन्ट का कुछ भी अधिकार नहीं है। हिन्दोस्तान की जनता साम्राज्यशाही के गोलमेज-कान्फरेन्स वा वैसे किसी कमीशन द्वारा बनाये गये विधान को हर्गिज कबूल नहीं करेगी। एक ही शासन-विधान जो वह स्वीकार कर सकती है वह बालिग मताधिकार द्वारा चुनी गइ संयुक्त राष्ट्रीय सभा (Constituent Assembly) द्वारा बनाया गया होगा।

यदि आप समाजवाद के सच्चे हिमायती हैं तो ब्रिटिश लेबर पार्टी को मजबूर करें कि वह जल्द से जल्द आर्डिनेन्सों को हटा ले, राजनैतिक कैदियों को छोड़ दे (जिसमें हिंसात्मक अपराध में गिरफ्तार किये जानेवाले भी शामिल हों), सारे जालिम कानूनों को

हटा दे और हिन्दोस्तानियों के लिखने, बोलने और संगठन कायम करने की स्वतंत्रता को लौटा दे।"

यह खुली-चिट्ठी श्री एम. एन. राय तथा अन्य हिन्दोस्तानियों के नाम से प्रकाशित हुई थी। चिट्ठियों की हजारों प्रतियां, जिनका अनुवाद जर्मन-भाषा में था उन ८०, ००० कामगारों के बीच बांटी गई जो अपने नेताओं के स्वागत के लिये एकत्रित हुए थे।

सोशल-डेमोक्रैटिक पार्टी के आम-सदस्यों पर इस पत्र का अच्छा असर हुआ। किन्तु पार्टी के सुधारवादी नेतागण हिन्दोस्तानियों की इस करतूत से क्रोधित हो उठे। पार्टी के स्वयंसेवकों * को प्रदर्शन करनेवाले हिन्दोस्तानियों पर ललकार दिया गया। फल यह हुआ कि वे हिन्दोस्तानियों के जुलूस पर टूट पड़े। जुलूस बहुत लम्बा था और क्रान्तिकारी नारों के साथ बर्लिन की सड़कों पर आगे बढ़ रहा था। जर्मन स्वयं-सेवकों ने जुलूस पर बुरी तरह से हमला किया। उनके झण्डे छीन लिये गये। उन तख्तियों को फाड़ डाला गया जिनमें Long live Free India, Long live the Revolution, Down with British Imperialism, स्वाधीन भारत की जय, इनकलाब-जिन्दावाद, ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का नाश हो लिखा था। प्रदर्शनकारी हिन्दोस्तानी बुरी तरह घायल कर दिये गये। यदि वहां के कामगार बीच में पड़ कर हिन्दोस्तानियों को बचाते नहीं तो उनकी खैरियत न थी। मजदूरों

* **सोशल डेमोक्रैटिक पार्टी के स्वयंसेवकों को** Reich-Banner Kammands **(रीच-बैनर-केमैण्डस्) कहा जाता है।**

को हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति सहानुभूति थी। अपने पार्टी के लीडरों की इच्छा के प्रतिकूल भी वे हिन्दोस्तानियों के व्याख्यान में शामिल हुए। आखिर जर्मन पुलिस वहां भी पहुंच गई और उन घायल हिन्दोस्तानियों को गिरफ्तार कर हिरासत में भेज दिया।*

बर्लिन में कई हिन्दोस्तानी भी थे जो इस प्रदर्शन में शामिल नहीं हुए। कुछ तो ऐसे थे जो जर्मन Foreign Office के दबाव से डर गये थे। दूसरा दल था मि० नामव्यर (Mr. Nambier) का जिन्होंने प्रदर्शनकारियों की शिकायत की और उन्हें पूंजी-पतियों की संस्था—राष्ट्रीय-कांग्रेस का एजेण्ट बतलाया। वे अपने को अति उग्र (Ultra-leftists) बतलाते थे। शर्म की बात यह थी कि इन दोनों दलों ने राष्ट्रवादी हिन्दोस्तानियों के खिलाफ वोट देकर सेन्ट्रल-यूरोप के हिन्दोस्तान-एशोसियेसन को प्रदर्शन में भाग लेने से रोका। अभी तक हिन्दोस्तान-एशोसियेसन यूरोप के प्रवासी हिन्दोस्तानियों की प्रतिनिधि-संस्था मानी जाती थी। किन्तु इस घटना के बाद वह सिर्फ उन्हीं भारतवासियों की संस्था रह गया जिनका ध्येय यूरोप में मौज उड़ाना था। एसोशि-येसन के सेक्रेटरी ने भी उस संस्था से इस्तीफा देते हुए यह वक्तव्य दिया था कि ऐसी संस्था की कुछ भी आवश्यकता नहीं जो हिन्दो-

* जर्मन-पुलिस के प्रेसिडेन्ट जर्मन सोशल-डेमोक्रेटिक पार्टी के कार्य्यकारिणी के सदस्य थे —लेखक।

स्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन न करे और उसकी महत्वा-काक्षाओं का विरोधी हो।

हिन्दोस्तान-एसोशियेसन की इस हरकत से एक ऐसी संस्था के संगठन की आवश्यकता महसूस हुई जो हिन्दोस्तान के स्वाधीनता आन्दोलन का समर्थन करे और उसके लिये आन्दोलन जारी रखे। श्री एम. एन. राय की राय के मुताबिक राष्ट्रवादी नौजवानों ने जर्मनी में राष्ट्रीय-कांग्रेस की शाखा कायम करने की कोशिश की। उन दिनों पं० जवाहरलाल जी कांग्रेस के प्रेसिडेन्ट थे। उनकी अनुमति प्राप्त करने के बाद राष्ट्रीय-कांग्रेस की शाखा जर्मनी में कायम की गई।

इसके बाद ही श्री राय के मशविरे पर राष्ट्रीय कांग्रेस की जर्मन-शाखा की Organising Committee (संगठन कमेटी) तथा जर्मनी के ट्रेड-यूनियनों के प्रतिनिधियों की एक सम्मिलित सभा बर्लिन में की गई। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय-आन्दोलन को समर्थन करने तथा उसके विरोधी प्रचारों को रोकने के लिये एक विशेष कमेटी की स्थापना हुई। इस प्रकार हिन्दोस्तान के राष्ट्रीय-आन्दोलन के पक्ष में तथा ब्रिटिश-साम्राज्यशाही के खिलाफ सारे यूरोप में आन्दोलन खड़ा किया गया। अमेरिका में भी कामरेड राय के प्रयत्न से वैसा आन्दोलन आरम्भ हुआ।

ठीक उन्हीं दिनों यूरोप के कम्यूनिस्ट पत्रों में सनसनीखेज खबरें छपीं। शोलापुर तथा चटगांव की घटनाओं को ऐसा रंग कर बतलाया गया मानों हिन्दोस्तान में मजदूर-क्रान्ति हो गई और

सोवियट-राज कायम हो गया। राय जानते थे कि ऐसी बातें सरासर ग़लत हैं। राष्ट्रीय-क्रान्ति के प्रश्नों को हल करके ही कोई देश सोवियट-क्रान्ति के युग में प्रवेश कर सकता है। हक़ीक़त भी यही थी। चटगांव और शोलापुर की घटनाओं का सम्बन्ध कम्यूनिस्ट-आन्दोलन से तनिक भी नहीं था। बहादुर बंगाली क्रान्तिकारियों ने चटगांव के फौजी अस्त्रागार को लूट लिया था। फ़ौजी सिपाहियों से खुलेआम युद्ध भी किया था। किन्तु उनमें से एक भी कम्यूनिस्ट नहीं था। वे सब राष्ट्रवादी थे। वही हालत शोलापुर के विद्रोह की थी। एक पूरे दिन तक वह शहर कांग्रेस के स्वयंसेवकों के हाथों में रहा। विद्रोह के जुर्म में फांसी पड़नेवाले नौजवान, मालापेक्स, शेट्टी और कुर्बान हुसैन कम्यूनिस्ट नहीं, कांग्रेसी थे। सच्चाई तो यह है कि मजदूरों के हड़ताल को वा किसानों के विद्रोह को ये कम्यूनिस्ट इस प्रकार से रंग कर बतलाते थे कि मानों हिन्दोस्तान में मज़दूर-क्रान्ति (Proletarian Revolution) का समय आ गया। परिस्थिति के इन ग़लत अन्दाज़ों का फल था कि हिन्दोस्तान के कम्यूनिस्ट जन-आन्दोलन के साथ आगे बढ़ न सके। इन्हीं ग़लत अन्दाज़ों के कारण थर्ड-इन्टरनैशनल को ग़लत नीतियां अख़्तियार करनी पड़ी थी। १९३० में कामरेड राय ने इन्हीं विषयों पर एक मेनिफेस्टो लिखा था जिसमें राष्ट्रीय-क्रान्ति तथा लाल-क्रान्ति का अन्तर बतलाया था और साम्राज्यवादी युग में भारतीय-क्रान्ति के प्रोग्राम पर प्रकाश डाला था।

× × ×

चीन के विषय में तो लिखा ही जा चुका है। क्रान्ति की असफलता के बाद कम्यूनिस्टों ने कुछ पहाड़ी स्थानों पर किसानों की सहायता से कब्जा कर लिया था। वे उसी को सोवियट कहते थे और वहां की किसान-सेना को लाल-सेना। वे यह नहीं समझ पाये थे कि चीन में अभी प्रजातन्त्रीय क्रान्ति की आवश्यकता है जिसके बाद ही समाजवादी-क्रान्ति का युग तैयार हो सकता है। वास्तव में चीन की कम्यूनिस्ट-पार्टी मजदूरों की पार्टी थी ही नहीं। उसमें किसान ही शामिल थे।

किसान भी कम्यूनिस्ट-पार्टी में शामिल हो सकते हैं किन्तु व्यक्तिगत-रूप से। किसान-वर्ग कम्यूनिस्ट-पार्टी में प्रवेश नहीं कर सकता। जिस पार्टी के अधिकांश सदस्य ही किसान हैं, वह पार्टी अपना कम्यूनिस्ट रूप कहां तक कायम रख सकती है? उसकी रूप-रेखा ही बदल जायगी। चीन की पार्टी वैसी ही थी। उसे मजदूरों की क्रान्तिकारी पार्टी कहना ग़लत है।

चीन का प्रश्न सचमुच बड़ा टेढ़ा था। उसके विषय में बहुत सी किताबें लिखी गई थीं। कम्यूनिस्ट लेखकों ने लाल-चीन की प्रशंसा का पुल बांध दिया था। किसी ने उसके प्रश्नों का विश्लेषण नहीं किया था। कामरेड राय ने, अपने व्यक्तिगत तजुरबों के आधार पर, १९३० ई० में चीन के जटिल-प्रश्नों पर एक पुस्तक लिखी—"Revolution and Counter-Revolution in China." संसार के बड़े बड़े विद्वान इसे चीन के विषय पर

सर्वश्रेष्ठ पुस्तक मानते हैं *। यह पुस्तक जर्मन-भाषा में उन्होंने लिखी थी। अफ़सोस की बात है कि अभी तक उसका अनुवाद अङ्गरेजी वा हिन्दी में नहीं हो सका है।

इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद ही कामरेड राय को अमेरिका की कम्यूनिस्ट पार्टी (Majority-Group) की ओर से निमन्त्रण मिला। वहां के मजदूर कामरेड राय के अलौकिक विशेषताओं से वाक़िफ़ थे। उनकी कोशिश थी कि राय अमेरिका के मजदूर-आन्दोलन की रह-नुमाई अपने हाथों में लें और पूंजीवाद के ख़िलाफ़ उस शोषित वर्ग के स्वतंत्रता-आन्दोलन में उनकी मदद करें। किन्तु इधर हिन्दोस्तान,—उनका प्यारा स्वदेश, जिसे उन्होंने १५ साल पहले छोड़ा था—उन्हें बुला रहा था। अभी तक उन्होंने विदेश से ही उसके लिये जो कुछ बन पड़ा, किया था। हिन्दोस्तान अब उनकी मौजूदगी चाहता था। राय ने इसे सोचा। अमेरिका जाने का इरादा उन्होंने छोड़ दिया। किन्तु हिन्दोस्तान में पैर रखते ही उनकी गिरफ्तारी निश्चित थी। हिन्दोस्तान की सरकार अभी भी उन्हें गिरफ्तार करने पर आमादा थी। कानपुर और मेरठ षड्यन्त्र के मामलों में उन्हें ही प्रधान व्यक्ति बतलाया गया था। राय यह जानते थे किन्तु स्वदेश के प्रति कर्त्तव्य का तकाजा भी तो था। १९३० के अन्त में वे गुप्त-रूप से हिन्दोस्तान में प्रवेश करने की तैयारियां करने लगे।

*"It was the most remarkable and brilliant contribution to the political literature of modern age. Indeed Roy had shown therein the road to liberation in China"
—Herr Heniz Muller.

स्वदेश में फिर—

२१ जून १९३१ का दिन था। अखबारों में बड़े बड़े अक्षरों में यह निकला कि प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री एम एन. राय बम्बई में गिरफ्तार कर लिये गये। किसी को इसका इल्म भी न था कि वे हिन्दोस्तान में मौजूद हैं। एकाएक ऐसी खबर पाकर लोग स्तम्भित हो गये।

कामरेड राय कब, कैसे और किन अवस्थाओं में हिन्दुस्तान पहुंचे, इसके सम्बन्ध में आज नहीं लिखना ही अच्छा होगा। हम इतना ही जान लें कि वे कई महीनों से हिन्दोस्तान में थे और छद्म वेश में घूम घूम कर क्रान्तिकारी संगठनों का जाल बुन रहे थे। आज उस पार्टी की शाखायें देश के कोने कोने में फैल गई हैं। कम्यूनिस्ट आन्दोलन के इस विशेष विचार-धारा को हिन्दोस्तान में 'रायइज़्म' कहा जाता है।

पं० जवाहरलाल जी की आत्म-कथा से यह भी पता चलता है कि वे करांची-कांग्रेस में विद्यमान थे। पुलिस को किसी

प्रकार पता चल गया था कि राय हिन्दोस्तान में ही मौजूद हैं। महीनों तक उनकी गर्म-खोज होती रही। देश के भिन्न शहरों में एम. एन. राय होने के सन्देह में कई व्यक्ति गिरफ्तार हुए। कुछ समय तक तो राय पुलिसवालों के लिये भूत बने हुए थे। दिन रात पुलिस उन्हें पकड़ने को हैरान रहती।

एक अंधेरी रात के तीन बजे हथियार बन्द पुलिस ने बम्बई के मजदूर बस्ती के निकटवाले एक होटल को घेर लिया जिसमें वे अभी सो रहे थे। अपने हाथों में पिस्तौल संभाले वे सारे पुलिस अफसर उस कमरे में घुस पड़े और उन्हें गिरफ्तार कर लिया। यह गिरफ्तारी सात वर्ष पहले के वारंट पर हुई थी, जब १९२४ में कानपुर बोलशेविक षड़यन्त्र केस के सम्बन्ध में उन पर मुकद्दमा चलाया जाने वाला था। करीब ग्यारह दिनों तक वे पुलिस की हिरासत में रक्खे गये। इस अरसे में देश के भिन्न शहरों में बहुत सी गिरफ्तारियां हुईं। सैकड़ों मकानों की तलाशियां हुईं। जिस पर कुछ भी सन्देह हुआ कि उनका कामरेड राय से सम्बन्ध था वे गिरफ्तार कर लिये गये। उन गिरफ्तार व्यक्तियों में अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस तथा नौजवान-भारत सभा के कई सदस्य थे। एक यूरोपीय (स्विटज़रलैण्ड) महिला, मिसेज़ गेसलर (Mrs. Geissler) भी, जो उनके साथ हिन्दोस्तान आई थी, गिरफ्तार कर ली गई।

कामरेड राय चुपचाप बम्बई से कानपुर लाये गये जहां उनपर सम्राट की ओर से मुकद्दमा चलाया जाने वाला था।

उनके ऊपर सम्राट की ओर से ये अभियोग लगाये गये थे कि—

(१) सन १९२१ के आरम्भ से १९२४ के अन्त तक एम. एन. राय ने हिंसात्मक-क्रान्ति द्वारा सम्राट (King Emperor) को ब्रिटिश-हिन्दोस्तान की सत्ता से वंचित करने का षड़यन्त्र किया।

(२) जब एम. एन. राय यूरोप में थे सन १९२१ और १९२४ के बीच वे हिन्दोस्तान के कई अन्य व्यक्तियों से मिलकर हिन्दोस्तान में कम्यूनिज़्म के प्रचार का प्रयत्न कर रहे थे और उनका लक्ष्य था हिन्दोस्तान में किसान और मजदूरों से संचालित कम्यूनिस्ट-राज्य कायम करना।

१९३१ के १ली अगस्त को वे खुली अदालत में मजिस्ट्रेट के सन्मुख पेश किये गये। अपनी ओर से वे खुद बहस कर रहे थे। अदालत में विचित्र समा थी। एक ओर तो सशस्त्र फौजी सिपाहियों का राय के चारों ओर कड़ा पहरा था। दूसरी ओर असंख्य जनता ब्रिटिश-राज के इस बाग़ी-कैदी के प्रति श्रद्धाञ्जली अर्पण करने के लिये एकत्रित थी। श्री राय के पक्ष में जनता के इस प्रदर्शन से भयभीत होकर मजिस्ट्रेट ने दूसरे दिन से जेल के भीतर ही मुकद्दमें की सुनवाई का प्रबन्ध किया। मजिस्ट्रेट ने उन्हें अपने वक्तव्य पढ़ने तक की इजाज़त न दी और मुकद्दमें को सेशन-सुपुर्द कर दिया।

सेशन का मुकद्दमा ३ नवम्बर, १९३१ को आरम्भ हुआ। मुकद्दमा क्या था, सरासर धांधली थी। जेल में उन्हें अपने वकीलों से मिलने की भी इजाज़त नहीं थी। अपनी ओर से उन्हें गवाह भी पेश करने का हुक्म न था। बिना किसी प्रकार का आर्डिनेन्स लगाये ही उन-पर इतनी अधिक सख्ती थी कि खुद I. P. C. की परवा नहीं की गई। राय ने इस मुकद्दमें के नाटक में भाग लेना अस्वीकार कर दिया।

जज का कोर्ट भी जेल के भीतर ही बैठा। राय ने उसके सामने आने से इनकार कर दिया। वे जबरदस्ती कोर्ट के सामने लाये गये। फिर भी उन्हें अपने वक्तव्य देने की आज्ञा न मिली। साम्राज्यवादी जज का मत था कि—"अभियुक्त वक्तव्य के ज़रिये राजद्रोह प्रचार करना चाहता है। फलतः इसकी इजाज़त नहीं मिल सकती।" दो असेसरों ने जज के इस हरकत का विरोध भी किया और उन्होंने धारा १२१ A. I. P. C. (राजद्रोह) के मुताबिक राय को निर्दोष बतलाया। किन्तु साम्राज्यवाद को इसकी क्या परवा। उसे तो किसी प्रकार भी राय को जेल भेजना था। ९ जनवरी, १९३२ के दिन उन्हें १२ साल कालापानी की सख्त सज़ा मिली।

जेल में उनकी सख्तियों का अन्त न था। विचाराधीन कैदी की दशा में ही उनपर बहुत कड़ी निगरानी थी। वे अपने सम्बन्धियों से भी नहीं मिल सकते थे। रामज़े मैकडोनाल्ड, फेनर ब्राकवे, जेम्स मैक्सटन, लैन्सबरी इत्यादि पार्लियामेंट के मेम्बरों के पास भेजे हुए उनके तार भी रोक लिये गये।

भारतीय नैशनल कांग्रेस के प्रेसिडेन्ट के पास पत्र लिखने की भी इजाज़त उन्हें नहीं मिली। हिन्दोस्तान, यूरोप और अमेरिका से भेजी गई अखबारें और पुस्तकें भी उन्हें नहीं दी जाती थीं। पं० जवाहरलाल नेहरू को भी उनसे जेल में मुलाकात करने का हुक्म न मिला। वे साधारण कैदी की पोशाक में रक्खे गये थे। उनके पैरों में दिन-रात लोहे की बेड़िया पड़ी रहती थी। हिन्दोस्तान के वीर सन्तानों की ऐसी दशा! और, सिर्फ इस अपराध के लिये कि वह देश की आजादी चाहता है!

यह एक साधारण कैदी का भी अधिकार है कि जज के सन्मुख वह अपना वक्तव्य दे सकता है—वह लिखित हो वा जुबानी। राय को यह अधिकार भी प्राप्त न हुआ। जज को खौफ था कि अपने वक्तव्य की आड़ में राय खुल्लम-खुल्ला राजद्रोह का प्रचार करेंगे। वह लिखित वक्तव्य जिसे राय पेश करने वाले थे अपने ढंग की एक अनोखी चीज है। *पराधीन मुल्कों के इतिहास में किसी भी राजद्रोह के कैदी ने वैसा निर्भीक, साहसपूर्ण और शानदार वक्तव्य आज तक नहीं दिया है।* वह एक ख़ासा राजनैतिक साहित्य है जिसमें अङ्गरेजों की वर्बरता, साम्राज्यवाद का विश्लेषण, राष्ट्रीय क्रान्ति की आवश्यकता इत्यादि विषयों पर बड़ी अच्छी रौशनी है। ब्रिटिश-साम्राज्यवाद की वैसी कड़ी आलोचना शायद और कहीं है ही नहीं। यह वक्तव्य किसी प्रकार जेल से बाहर लाया गया और पुस्तकों के रूप में छपकर बंटा। हिन्दोस्तान में यह पुस्तक 'My Defence' (मेरी सफाई) के नाम से प्रकाशित हुई।

जो शायद आज भारत-सरकार द्वारा जब्त है। विदेशों में भी इस पुस्तक की बड़ी खपत हुई। अमेरिका में ये किताब 'I accuse' के नाम से प्रकाशित हुई। इसकी चर्चा करते हुए अमेरिका के एक प्रोफेसर ने लिखा था—"····ब्रिटिश न्यायाधीशों का जैसा निर्भीक उत्तर उन्होंने लिखा है वह भारतीय स्वतंत्रता का बीज साबित होगा····" *

अफसोस की बात है कि पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अभी तक निकला नहीं है। वक्तव्य का कुल हिस्सा यहां देना सरासर असम्भव है। उसके दो-एक उद्धरण यहां दिये जाते हैं।

"उत्पीड़ित जनसमुदाय और शोषित वर्गों के लिये यह वाध्य नहीं है कि वे शासक शक्ति के नैतिक सिद्धान्तों का समादर करें। विदेशी सत्ता के द्वारा भारतीयों के सर्वमान्य अधिकार का अपहरण किया गया है। चूंकि उसे हड़पनेवाले विदेशी बल-प्रयोग द्वारा अपने को अधिकारारूढ़ रखते हैं, भारतीय जनता भी इसके लिये मजबूर है कि वे अपने सर्वमान्य अधिकार को ले लेने के लिये बल-प्रयोग का आश्रय ले। सर्वदा ही किसी जालिम शक्ति को एकमात्र इसी तरीके से उलटा जाता है। इस क्रिया में बल-प्रयोग का आश्रय लेना अपराधपूर्ण नहीं। इसके प्रतिकूल, भारत में ब्रिटिश सेना द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली बन्दूक अपराध की एक चीज

---

* "............the scathing answer he wrote to hurl at his British Judges is the seed from which the Indian freedom shall grow............"

है। यही चीज जब साम्राज्यवादी सरकार के खिलाफ इस्तेमाल की जाती है तो पुण्य की वस्तु हो जाती है। भारत के उत्पीड़ित जनवर्ग के हाथ में ये हथियार उस औपनिवेशिक दासत्व की जंजीर तोड़ने के हथौड़े होंगे जिसने मानव समाज के पांचवें भाग को जकड़ रखा है।" *

× × × ×

"............क्या वर्त्तमान भारत सरकार का कोई भी वैधानिक आधार है ?...........ब्रिटेन के बादशाह ने भारत में किस प्रकार सम्राट-पद को प्राप्त किया ? ब्रिटिश ताज की मातहती को भारतीयों ने स्वीकार कब किया ?

---

* "The oppressed people and exploited classes are not obliged to respect the moral philosophy of the ruling power. The sovereign right of the Indian people is usurped by foreign power and as the foreign usurpers maintain themselves in power by force, the Indian people are obliged to use force to recover their sovereign right. A despotic power is always overthrown only in this way. The force employed in this process is not criminal. On the contrary, the gun carried by the army of the British Govt. of India is an instrument of crime. It becomes an instrument of virtue when it is turned against the Imperialist State. Weapons in the hands of the oppressed masses of India will be so many hammers to break the the chain of a Colonial slavery binding one-fifth of the human race."

मेरी धारणा है कि ब्रिटिश ताज की मातहती में भारतीय नहीं हैं। इसलिये जिस कानून के अनुसार मेरे ऊपर अभियोग लगाया गया है वह आजकल के सभ्यतानुमोदित अर्थों में कानून का कोई मतलब ही नहीं रखता।…………भारत की ब्रिटिश हुकूमत को भारतीयों की तरफ से पैरवी करने का कोई अधिकार नहीं प्राप्त है। यह लूट पर टिकी उस साम्राज्यशाही की मेशीन है जो हिंसा के सहारे देश पर लादी गई है। जब तक कि इस विदेशी गुलामी को हटा न दिया जायगा तब तक भारतीयों को उन्नति, समृद्धि और स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। मेरे ऊपर लगाया गया अभियोग बेमतलब है। यह मुकद्दमे की कार्रवाई एक किस्म की हिंसा है।" *

× × × ×

---

* "…………Has the present Government of India any Constitutional basis ?………How did the British King acquire his sovereignty in India ? When did the Indian people swear allegiance to the British crown ?

I maintain that the people of India owe no allegiance to the British Crown. Therefore the law under which I am charged has no force of law in the modern civilised sense of the term………The British Govt. of India hold no power of attorney from Indian people. It is an instrument of predatory Imperialism foisted upon this country by violence. There can be no progress, prosperity and liberty for the Indian people until this foreign domination is overthrown. The charge against me is absurd. The trial is a form of violence………"

[राजद्रोह का सिद्धान्त, गैरकानूनी

"भारतीय कानून में राजद्रोह का सिद्धान्त गैरकानूनी ढंग से और जबरदस्ती घुसाया गया है, क्योंकि ब्रिटिश-ताज का भारत में कोई वैधानिक स्थान नहीं है। क्लाइव की धांधागर्दी और जालसाजी, वारेन हेस्टिंग्स की लूट, वेलेजली की घृणित कूटनीति, दूसरे हेस्टिंग्स का जुल्म और सब से बढ़कर डलहौसी की भूमि-हड़पन्त की बातें ऐसी दलीलें हैं जो किसी भी वैधानिक दावे को रद्द कर देती हैं। लेकिन भारत सरीखे मूल्यवान उपनिवेश में ब्रिटिश-ताज को खड़े रखने के लिये दूसरा कोई वैधानिक पांव भी नहीं है।*

प्राचीन ग्रीक दार्शनिकों के इन उपदेशों के आधार पर कि *निर्दय शासक का खात्मा कर देना पाप नहीं पुण्य है,* यूरोप के वर्तमान लोकतंत्र राज्यों के संस्थापक विद्रोह के पवित्र अधिकार का सबसे अधिक समर्थन करते थे। अङ्गरेज दार्शनिक जान लौके, डेविड ह्यूम आदि, विद्रोह के पवित्र अधिकार के उपदेशकों में अग्रणी रहे हैं। सब से पहले इंगलैंड में ही इस अधिकार पर लड़ा गया।

---

*The doctrine of treason is smuggled into the Indian law surreptitiously because the British Crown has no constitutional position in India. Adventures and forgeries of Clive, robberies of Warren Hastings, unscrupulous deplomacy of Wellesly, *depredations* of another Hastings and finally the land-grabbing of Dalhousie are very damaging arguments against any constitutional claim. But the British Crown has no other constitutional leg to stand upon in its valuable Indian domains.

इङ्गलैण्ड की उस महान क्रान्ति के दौरान में एक बादशाह का सिर-च्छेद कर दिया गया और दूसरे का भी अन्त हो गया। क्रान्ति द्वारा भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करने पर जोर देने का आरोप मेरे ऊपर किया गया है।................

चार्ल्स प्रथम पर मुकद्मा चलाने और उसे फांसी देने की मांग करते हुए लडलो के उद्गार थे कि "बादशाह की तरफ से हमारे अधिकारों पर आक्रमण होने और खुलेआम हमारे कानून और शासनविधान की अवज्ञा करने से ही युद्ध शुरू हुआ।" आज जब कि मेरे ऊपर मुकद्मा चलाया जा रहा है, किसी भी भारतीय की ओर से लडलो के उन्हीं स्मरणीय शब्दों का गुंजाया जाना—जिनका कि ब्रिटेन के इतिहास में प्रमुख स्थान है—उचित ही होगा। *

* Drinking deep in the fountain of the teachings of the ancient greek philosophers that it was no crime but honour to destroy a despot, the founders of the modern democratic states of Europe passionately preached the sacred right of revolt. The English philosophers, John Locke, David Hume were among the illustrious pioneers who preached the sacred right of revolt. It was in England that the right was first asserted. A king was beheaded and another disposed in the process of that great revolution in England. I am accused of having advocated the freedom of Indian people through a revolution...............

Demanding the trial and execution of Charles the First, Ludlow exclaimed, "The war has been occasioned by invasion on our rights and open breach of our law and constitution on the king's part." Charged as I am, any Indian would be justified to retort in these memorable words of Ludlow which constitute a very important landmark in the history of England.

"उत्पीड़ित और शोषित भारतीयों के लिये *क्रांन्ति का ही कानून* एकमात्र कानून है—स्वतंत्रता के लिये क्रान्तिकारी युद्ध का शानदार कानून। इस एकमात्र कानून का जिसका ही वर्तमान स्थिति में हिन्दोस्तानी पालन कर सकते हैं, भारत के साम्राज्यवादी शासक प्रतिदिन उल्लंघन करते हैं। मेरी गिरफ्तारी और पेशी इसके लिये मिसाल है। मुझपर कोई अपराध मढ़ना घाव पर नमक छिड़कना है। मैं यहां इस प्रकार के किसी बेमानी अभियोग और गुस्ताखी भरे आरोपों के खिलाफ सफाई देने के लिये नहीं खड़ा हुआ हूं। मैं यहां भारत की ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ समस्त सभ्य संसार के न्यायालय में मनुष्य समाज के पंचमांश पर अवाध अत्याचार करने, हमारी मातृभूमि को लूटने और हर तरह से हमारी प्रगति को रोकने का मुकद्दमा पेश करने के लिये खड़ा हुआ हूं।" *

---

* " ......the only law for the oppressed and exploited people of India is *the law of revolt*—the majestic law of revolutionary struggle for freedom. The Imperialist rulers of India violate every day this only law that the people of India can observe under the present condition. My arrest and trial represent an instance of such violation of law. To accuse me of any offence is to add insult to injury. I stand here not to answer any such absurd charge and insolent accusation. I stand here to indict the British Govt. of India at the bar of the civilised world for wanton aggression against one-fifth of human race, for robbing our land, for obstructing our progress in every sense."

"हम दिल्ली में पार्लियामेन्ट का एक दिखावटी ढांचा खड़ा कर देने से सन्तुष्ट नहीं हो सकते, जिसका शासन-सूत्र वेस्ट-मिन्स्टर में हो। यदि एक भारतीय वायसराय के द्वारा भी ब्रिटिश ताज का शासन चलाया जाय तो हम उसे मंजूर नहीं करेंगे। हम स्वयं अपना विधान बनायेंगे; परन्तु यह लन्दन के किसी गोल-मेज कान्फरेन्स में नहीं, बल्कि स्वत्व प्राप्ति के हमारे जंग के सिलसिले में ही होगा। ब्रिटिश ताज हमारे इस अधिकार से हमें वंचित करना चाहता है इसलिये हिन्दोस्तान में वैधानिक शासन कायम करने के लिये ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध क्रान्तिकारी लड़ाई का संघटित करना जरूरी हो जाता है। लड़ाई हमारी ओर से नहीं छेड़ी जा रही है। इसे तो ब्रिटिश सम्राट ने ही भारतीय जनता पर अपना शिकंजा दृढ़ रखने के लिये जारी रखा है। भारतीयों को तो आत्म-रक्षा के लिये लड़ना है। यदि हिन्दोस्तान को पूर्ण आजादी हासिल करनी है और अपने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू में निर्बाध उन्नति करनी है तो इसे भी, उन बहुत से देशों की भांति जो आज की सभ्यता के अग्रणी हैं क्रान्ति का पथ अवलम्बन करना होगा।"

× × × ×

"We cannot be satisfied with a puppet parliament at Delhi eventually set up by the dispensation of the sham at Westminster. Nor shall we recognise the sovereignty of the Br. Crown even if some day it will be exercised through an Indian Viceroy. We will make

"मैंने १६२१ से १६२४ के अन्दर जो प्रचार कार्य किया वह क्रान्तिकारी तो जरूर था, परन्तु षड़यन्त्र उसे बिलकुल ही नहीं कहा जा सकता। मेरी प्रतिपत्ति यह थी कि हिन्दोस्तान की तरक्की साम्राज्यवादी प्रभुत्व से उसके मुक्त होने पर ही मुनहसर है। यह मुझ पर जुर्म लगानेवाले प्रमाणित करें कि बात ऐसी नहीं। उन्हें यह भी साबित करना चाहिये कि साम्राज्यवादी शोषण के कारण भारतीय जनता का विकास अवरुद्ध नहीं है। मेरा यह दृढ़ विचार है कि विदेशी विजेता स्वेच्छापूर्वक हमारा मुल्क नहीं छोड़ेंगे। ब्रिटिश सरकार इसका सुबूत दे कि मेरा कथन मिथ्या है। फिर भी मैंने ब्रिटिश सरकार को शासनच्युत करने के लिये षड़यन्त्र नहीं किया। शासन का अधिकार तो उनके पास है ही नहीं।

---

our own constitution, not at any Round-Table-Conference in London but here in India in the midst of the struggle for the assertion of our right to self-determination. The Br. Crown presumes to deprive us of this inalienable right. So, the way to the establishment of a constitutional regime in India lies unavoidably through a revolutionary war against the British King who has usurped power in India. We are not making a war. It is levelled against the Indian people by the British king. The Indians must fight in self-defense. Should the Indian people have democratic freedom and unrestricted progress in all branches of their national life, they must travel the road of revolution just as it has been done by all the peoples who stand at the ban of modern civilisation.

विजय और दूसरों का स्वत्वापहरण करना जब वे अपना हक समझते हैं, तो विद्रोह और आत्मनिर्णय तो हमारा अधिकार है ही। *

× × × ×

"जो कुछ भी मैंने कहा और किया है उसका लौके, ह्यूम, बेन्थम, बैगहौट, डाइसी तथा ब्लैकस्टोन प्रभृत्ति भी समर्थन करते हैं। अतः तबतक मुझे सजा नहीं दी जा सकती जबतक इन अंग्रेज राजनैतिक दार्शनिकों तथा विधान-शास्त्र विशारदों के लेखों को राजद्रोहात्मक, क्रान्तिकारी तथा शासन-विरोधी कहकर जब्त नहीं कर लिया जाय। तो भी, मैं जानता हूं, दण्डित मुझे किया ही

* The propaganda I carried on between 1921-24 was undoubtedly revolutionary but it had absolutely nothing to do with conspiracy. I maintained that the progress of the Indian people was conditional upon their freedom from Imperialist domination. It is for my prosecutors to prove that it is not so, that the imperialist exploitation does not block the progress of the Indian masses. I also express the opinion that the foreign conquerors would never leave our country voluntarily. Let the British Government prove that my opinion is wrong. I did not however conspire to deprive the British king of the sovereignty which he does not possess. *Theirs is the right of conquest and usurpation, ours is the right of revolt and self determination.*

जायगा। क्योंकि मैं तो उस प्रणाली का एक शिकार हूं जो दमन और हिंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानती।"*

× × × ×

"मैं स्वयं तो कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के विश्व-कांग्रेस में शामिल होने के पहले भी कम्यूनिस्ट था। केवल हिन्दोस्तान ही नहीं, अपितु दूसरे पराधीन मुल्कों के राष्ट्रीय आन्दोलन के तजुरबे ने मुझे अनिवार्यतः कम्यूनिज्म का हामी बना दिया था। एक कम्यूनिस्ट होने की वजह से मैं इन्टरनैशनल का सदस्य बना और तदनुसार मैंने काम किये; किन्तु मेरे कार्य मुख्यतः भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रेरक की हैसियत से हुए।

भारत की वर्त्तमान परिस्थिति में कम्यूनिस्ट पार्टी को निश्चय ही राष्ट्रीय आन्दोलन का अधिनायकत्व करना है। स्वाधीनता-आन्दोलन के नेतृत्व का भार ग्रहण करना कम्यूनिस्टों का कर्तव्य है। मैंने इस कर्तव्य की पूर्ति के लिये सदैव ही राष्ट्रीय कांग्रेस में एक प्रगतिशील पक्ष के संगठन की ताईद की, ताकि राष्ट्रीय कांग्रेस

* ....I Justify what I have held and done on the unchallengable authority of Locke, Hume, Bentham and Begehot, Dicey and even Blackstone. You cannot punish me unless you proscribe the writings of these English political philosophers and constitutional lawyers as seditious, revolutionary and treasonable. I may be punished nevertheless. I am the victim of a system which knows no other than the law of coercion and violence.........

साम्राज्यशाही के खिलाफ युद्ध का एक क्रान्तिकारी अस्त्र बन जाय। मैंने तो ऐतिहासिक विकास की क्रिया को कुछ तीव्रतर करने की कोशिश भर की। जिस अपराध का मुझ पर आरोप लगाया गया है वह हिन्दोस्तान के इतिहास का स्वतः एक प्रकरण है। अतएव जिस प्रकार गंगा की धारा को अपने उद्गम स्थल पर लौट जाने की आज्ञा देना हास्यास्पद है, उसी प्रकार इतिहास के स्वाभाविक विकास पर भी कोई गम्भीरता पूर्वक अपना फैसला देने नहीं बैठ सकता।*

---

* Myself personally had been a Communist before I attended the World Congress of the Communist International. Experience in the nationalist movement, not only in India but also in other subject countries gradually led me to-wards Communism......Being a convinced Communist, I was a member of the C. I. and acted as such but my actions were primarily the actions of a pioneer of the Communist party of India.

Under the given conditions of India, the Communist Party must rise as the storm-troop of National Revolution. The duty of the Communist Party is to stand in the fore-front of the National Freedom. I tried to perform this duty by persistently advocating.........the transformation of the National Congress into an organ for the revolutionary struggle against Imperialism by promoting the crystallisation...... ..of a radical wing...... I tried to help the process of historical development. The offence I am alleged to have committed represents a chapter of the history of India. You cannot sit in

कम्यूनिस्ट ब्रिटिश सम्राट को राज्यच्युत करने के लिये षड़यन्त्र नहीं करते। वे तो खुल्लमखुल्ला इस स्व-गृहीत शासन को चुनौती देते हैं तथा इस मिथ्यावाद को नष्ट करने के लिये पद-दलित तथा शोषित जन-समुदाय का आह्वान तथा उनका संगठन करते हैं। यह कोई जुर्म नहीं है।

.... इस साम्राज्यशाही न्यायालय से मुझे अपराधी करार दिया जा सकता है। किन्तु जो बीज मैंने बोये हैं वे सफल होकर रहेंगे और हिन्दोस्तान की पीड़ित जनता उनकी सार्थकता को सिद्ध करेगी।"*

Judgment upon history any more than you can order the Ganges to go back to its source.

* The Communists do not conspire to deprive the British king of his sovereignty in India. They openly challenge the self-assumed sovereignty and call upon and organise the oppressed and exploited people to end this fiction. This is no offence.........

".........I may be convicted by this Imperialist Court but the seeds I have sown will bear fruit and I will be vindicated by the Indian people."

बरेली सेन्ट्रल जेल—

२५ अप्रेल, १९३३। उस दिन एलाहाबाद हाईकोर्ट में दर्शकों की अपार भीड़ थी। कामरेड राय के मुकद्दमे की अपील जस्टिस टाम के बेंच में पेश होनेवाली थीं। ब्रिटिश-सरकार के इस बाग़ी अभियुक्त के प्रति जनता की श्रद्धाञ्जली और प्रदर्शन को रोकने के लिये कोर्ट में चारो ओर बन्दूकों और संगीनों के साथ सिपाहियों का कड़ा पहरा था। सी. आई. डी. हर जगह तैनात कर दिये गये थे। जनता कामरेड राय को देखने को आतुर थी।

एक बन्द 'लारी' में हथियारबन्द सिपाहियों के बीच, लोगों ने उन्हें उतरते देखा। छः फीट लम्बा जवान ! एक साधारण क़ैदी का वेश ! पैरों में सख़्त बेड़ियां ! आगे-पीछे, अगल-बगल, सशस्त्र पुलिस ! अपने प्रिय नेता को ऐसी अवस्था में देख जनता ने पराधीनता की मज़बूरियों को महसूस किया। कितनी आखों से बरबस आंसू निकल रहे थे और कितनी से चिनगारियां।

मुकद्दमे का भी विचित्र दृश्य था। कोर्ट में तिल रखने का स्थान न था। फिर भी वातावरण बिलकुल शांत था। जज के सामने अभियुक्त द्वारा भिन्न भिन्न भाषाओं में लिखी बहुत सी पुस्तकें पेश थीं। बहुत सी चिट्ठियां और चिट्ठियों के फोटोग्राफ भी सरकार की ओर से पेश किये गये थे जिस से यह साबित करने की कोशिश की जा रही थी कि वे सम्राट के शासन को उलट देना चाहते थे और उसके लिये षड़यन्त्रकारी कार्य्यों में लगे थे। राय की ओर से बहस कर रहे थे डी. सान्याल तथा डा० काट्जू जो आज संयुक्त-प्रान्त के मिनिस्टर हैं। कई दिनों तक बहस चलती रही। २ मई १९३३ को हाईकोर्ट ने फ़ैसला सुना दिया। फ़ैसला बहुत लम्बा है। जस्टिस टाम ने जो फ़ैसला लिखा था उसके कुछ उद्धरण यों हैं:

"अभियुक्त मानवेन्द्रनाथ राय पर भारतीय दण्ड विधान के १२१ ए० धारा (राजद्रोह) के मुताबिक कानपुर के सेशन-कोर्ट में मुकद्दमा चला था। एडिशनल सेशन-जज ने उन्हें १२ साल क़ैद की सज़ा दी है। उनके ख़िलाफ अभियोग यह है कि १९२१ के आरम्भ से १९२४ के अन्त तक उन्होंने हिंसात्मक-क्रान्ति द्वारा सम्राट के (हिन्दोस्तान की) शासन-सत्ता को अन्त करने का षड़यन्त्र किया। उनके ख़िलाफ यह भी अभियोग है कि उन्होंने, १९२१ से १९२४ के बीच जब वे यूरोप में थे, अन्य व्यक्तियों के सहयोग से भारतवर्ष में कम्यूनिज़्म का प्रचार कराया। इससे उनका उद्देश्य हिन्दोस्तान में किसान और मज़दूर द्वारा संचालित कम्यूनिस्ट-सरकार कायम करना था। कम्यूनिस्ट-शासन की

स्थापना, वे बर्तमान बैधानिक शासन प्रणाली तथा सम्राट की शासन-सत्ता को हिंसात्मक-क्रान्ति द्वारा उखाड़ कर, करने वाले थे।

"अपने इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये वे और उनके साथी देश के तमाम क्रान्तिकारियों, आतंकवादियों तथा कांग्रेस के बाम-पक्ष वाले लोगों की एक संस्था बनाने वाले थे। संस्था का उद्देश्य जन-क्रान्ति था। देश-व्यापी हड़ताल और सम्भवतः चौरी-चौरा, मोपला-विद्रोह तथा पंजाब-काण्ड के समान हिंसात्मक उथल-पुथल मचाने का भी आयोजन था। इसी उद्देश्य से अभियुक्त ने हिन्दोस्तान के षड़यन्त्रकारियों से सम्बन्ध स्थापित किया। वे भारतीय-शासन को क्रान्ति द्वारा उखाड़ फेंकने के सतत् प्रयत्न में थे। वे खुद हिन्दोस्तान आने से लाचार थे क्योंकि यहां आने पर गिरफ्तारी का भय था। फलतः हिन्दोस्तान के क्रान्तिकारियों के पास उन्हें आवश्यक पत्र लिखने की ज़रूरत महसूस हुई।............ये चिट्ठियां खुफ़िया-विभाग की निगरानी से बच न सकीं। बहुत सी चिट्ठियां जब्त कर ली गईं और बहुतों का फोटो लेकर भेज दिया गया।

१९२३ के आरम्भ में भारत-सरकार, इन चिट्ठियों तथा अन्य कागज़ातों के ज़रिये इस निर्णय पर पहुंची कि अभियुक्त, अपने अन्य साथियों के साथ सम्राट की शासन-सत्ता उलटने के षड़यन्त्र में मशगूल हैं। उनके सहयोगी नलनी-भूषण दास गुप्त, मोहम्मद शौकत उस्मानी, मुज्जफ्फर अहमद, अमृत डांगे तो गिरफ्तार कर लिये गये। २० मई १९२४ को उन लोगों को चार-चार साल कैद की सजा मिली। १९२४ में राय हिन्दोस्तान में नहीं थे..........

उसी पुराने १९२४ के वारंट पर वे २१ जुलाई १९३१ को गिरफ्तार किये गये।·········९ जनवरी, १९३२ को सेशन-जज ने उन्हें १२ साल कालापानी की सज़ा दी है।·········अभियुक्त के ख़िलाफ़ जितने सबूत हैं वे सब काग़ज़ी हैं। उनमें से प्रधान ये हैं :—

(१) हिन्दोस्तान में अभियुक्तकी भेजी हुई चिट्ठियां।

(२) अभियुक्त के पास भेजे गये हिन्दोस्तान के क्रान्तिकारियों के पत्र।

(३) अभियुक्त की लिखी पुस्तकें, ख़ास कर। (1) One year of Non-Co-operation, (असहयोग का एक वर्ष)।
(2) India in Transition, (भारत-संक्रांति काल)।
(3) What do we want ? (हम क्या चाहते हैं ?)।
(4) India's problem and its solution. (भारत का मसला और उसका हल)।

मिसिल (Exhibit) नं० ५: इस पत्र को अभियुक्त ने मास्को से डांगे के पास लिखा था जहां पर वे "कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल" की सभा में मशगूल थे। पत्र में इन्टरनैशनल तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में उन्होंने यों लिखा था :

"कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल का अधिवेशन भली भांति गुज़र रहा है।·········हमलोग कांग्रेस कार्य्यक्रम के मुख्य अङ्ग, पूर्वीय मसले पर बहुत सी प्रारम्भिक सभायें कर रहे हैं। सिर्फ यहीं पर कोई, न केवल पाश्चात्य मज़दूर-आन्दोलन का बल्कि पूर्वीय गुलाम-देश में क्रान्तिकारी-आन्दोलन का, सच्चा विश्लेषण पा सकता है। यह बहुत

बुरा है कि हमलोगों का आन्दोलन जो औपनिवेशिक राष्ट्रीय आंदोलनों में बहुत ज़ोरदार है, इस क़दर अलग-सा रहे।.........सभी कम्यूनिस्टों तथा समाजवादियों को चाहिये कि वे सारी क्रान्तिकारी शक्तियों को एकत्र कर एक जन-संगठन कायम करने की चेष्टा करें।.........निःसन्देह, ऐसी संस्था की सामाजिक बुनियाद मज़दूर तथा किसान होंगे और उसका राजनैतिक नेतृत्व गरीब जनता के सच्चे संरक्षक कम्यूनिस्टों तथा समाजवादियों के हाथ होगा।.........कम्यूनिस्ट नाम से संबन्धित किसी भी राजनैतिक संस्था को सरकार नहीं बर्दाश्त कर सकती। अतः दो प्रकार की संस्थाओं, एक कानूनी और दूसरी ग़ैरकानूनी—की अत्यावश्यकता है। केन्द्रीय-कम्यूनिस्ट पार्टी को चाहिये कि क्रान्तिकारी राष्ट्रीय-लड़ाई के लिये जन-संगठन-निर्माण में तत्परता से काम ले।"*

---

* The Congres is well on the way.........We are having numerous preliminary conferences on the Eastern question which is one of the principal points on the agenda. It is only here that one can get a true perspective not only of the working class movement in the West, but also of the revolutionary movement in the Eastern subject countries. It is too bad that our movement, which is the most powerful of the colonial National movements, should remain so isolated.........All Communists and Socialists should attempt to form a mass party embracing all the true revolutionary element............ Of course, the social-basis of this party will be the workers and peasants and the political direction of the

मिसिल नं० ६; इसमें कई पत्र थे जिनमें से एक "अखिल-भारतवर्षीय कांग्रेस के गया-अधिवेशन को लिखा गया था। पत्र के अन्तिम भाग में यों लिखा है—

भ्रातृत्व के अभिवादन के साथ, चतुर्थ इन्टरनैशनल कम्यूनिस्ट कांग्रेस का प्रेसिडियम, सेक्रेटरी हम्बर्ट ड्रोज़। (With fraternal greetings, Presidium of the Fourth Congress of the C. I., Secretary, Humbert Droz) इससे साफ पता चलता है कि यह पत्र कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल के प्रेसिडियम के बहस मुहाबसे के बाद लिखा गया था। अभियुक्त खुद प्रेसिडियम के एक मुख्य सदस्य थे। पत्र सरासर राजद्रोहात्मक तथा लोगों को क्रान्ति के लिये उभाड़ने वाला है। उसमें लिखा है :—

वे ओछे तरीके जिनके द्वारा ब्रिटिश-साम्राज्यवाद भारतीय जनता का जीवन-रक्त चूस रहा है, सर्वविदित है। उनकी ज़ोरदार निंदा नहीं हो सकती, न मामूली निंदा का कोई व्यावहारिक मूल्य ही होगा। हिन्दोस्तान में ब्रिटिश-राज्य की स्थापना तथा उसका

---

party should be in the hands of the Communists and Socialists who alone can be the custodians of the interest of the toiling masses.................no powerful political party with a Communist name will be tolerated by the Government........Hence the necessity of a dual organisation—one legal and another illegal. The Communist nucleus should take a very active part in the formation of a mass party for revolutionary nationalist struggle........

परिचालन पाशविक शक्ति से है। अतः उसका विनाश हिंसात्मक क्रान्ति से ही होगा। भारतीय जनता को हिंसात्मक उपायों को काम में लाना चाहिये जिनके बिना यह विदेशी सत्ता, जो हिंसात्मक नींव पर अड़ी हुई है, कदापि नहीं उखाड़ फेंकी जा सकती। हिन्दुस्तानी एक महती क्रान्तिकारी लड़ाई में संलग्न हैं। अतः कम्यूनिस्ट इन्टर-नैशनल संपूर्णतः उनके साथ है। ······ इण्डियन नैशनल कांग्रेस को स्पष्टतः घोषणा कर देनी चाहिये कि उसका प्रोग्राम भारत में विदेशी नियंत्रण से मुक्त प्रजातन्त्रीय-जनराज्य स्थापित करना है। प्रतिक्रियावादी तथा राजभक्त भूमिपतियों के विरुद्ध ग़रीब बाग़ी किसानों का नेतृत्व करने से एक तो कांग्रेस का प्रवेश जनता में पूर्ण रूप से हो जायगा दूसरे ब्रिटिश-राज्य के पिठ्ठुओं पर सांघातिक हमला होगा। देशी सैनिक जो भारत में ब्रिटिश-राज्य कायम रखे हुए हैं, किसानों में से भर्त्ती किये जाते हैं। अतः कृषक-क्रान्ति का प्रोग्राम उन सैनिकों को आजादी की लड़ाई की तरफ आकर्षित करेगा। ········

ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का नाश हो! आज़ाद हिन्दोस्तान ज़िन्दाबाद!

* The infamous methods by which the British Imperialism sucks the life blood of the Indian people are well-known. They cannot be condemned too-strongly, nor will simple condemnation be of any practical value. Br. Rule in India was established by force and is maintained by force; therefore it can and will be over

"इस पत्र के विषय में और लिखना ही फ़िजूल है। राजद्रोह के लिये इस से बढ़ कर और क्या सबूत हो सकता है ?..................... सेशन कोर्ट के सन्मुख अपने वक्तव्य में अभियुक्त ने ह्यूम और बेन्थम का हवाला दिया है और यह बतलाने की कोशिश की है कि अंगरेजी सरकार को क्रान्ति के ज़रिये अन्त कर देना अनुचित नहीं है। ह्यूम और बेन्थम के लेख और उनके विचार विज्ञ-समाज में कितना ही पुरअसर और आकर्षक क्यों न हों, अभियुक्त को भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की ओर भी ध्यान देना चाहिये था *

---

thrown only by a violent revolution. The people of India must adopt violent means, without which the foreign domination based upon violence cannot be ended. The people of India are engaged in this great revolutionary struggle. The C. I. is whole heartedly with them ... ..."The National Congress should categorically declare that its political programme is the establishment of a Democratic Republic completely independent of any foreign control......By leading a rebellious poor peasantry against the re-actionary and loyalist landed aristocracy, the Congress will on the one hand strike its roots deeply into the masses and on the other, will assail the very bedrock of Br. Rule. The native army which maintains Br. Domination in India is recruited from among the poor peasantary. So a programme of agrarian revolution will win the native troops to the cause of national freedom..............Down with Br. Imperialism: Long live the Free people of India,

* The writings of Hume and Bentham are quite irrelevant to the present issue however weighty the opinion of these philosophers may be in acedemic matters.

जैसे राजनैतिक दार्शनिकों (political philosophers) के सिद्धान्त हैं वैसे ही भारतीय दण्ड-विधान के भी तो हैं।

"अभियुक्त का कहना है—

"मेरी यह धारणा है कि भारत में अंगरेजी सरकार—बहुत ही ज़ालिम और अत्याचारी रही है और हिन्दोस्तानियों को इस से कोई फायदा नहीं हुआ है। अतः ह्यूम और बेन्थम के मतानुसार हिन्दोस्तान के वर्त्तमान सरकार के विरुद्ध शस्त्र धारण करना ज़रा भी अनुचित नहीं होगा। मेरा यह विश्वास है कि ब्रिटिश-सरकार के प्रति भारतीय-जनता का कोई कर्त्तव्य नहीं है।"*

"अभियुक्त के इन वक्तव्यों पर अधिक लिखना फ़िजूल है।....

इन सबों पर विचार करते हुए मैं अभियुक्त को I.P.C. के १२१-A के अनुसार दोषी समझता हूं।..........."

Having decided to go beyond the stage of acedemic discussion it was necessary that the apellent should have regard not merely to the attractive doctrines of political philosophers but to the mundane matter of fact provisons of the Indian Penal Code.

*"I hold that the Br. Government of India has been an enormous tyranny and oppression for the Indian masses and it has never been of advantage to them. So the people of India are fully justified on the authority of Hume to take up arms against the present Govt. I maintain that the people of India owe no allegience to the Br. Crown."

"अभियुक्त के आयोजन की, सफलता से देश में हड़ताल, सशस्त्र बलवा, हिंसात्मक-क्रान्ति हो जाती जिससे लोगों के जान और माल पर खतरा पहुंचता..........अपने निर्वासन-काल में उन्होंने मास्को की heady wine पी है। वे इन्टरनैशनल के पूर्वीय-विभाग के प्रधान बनाये गये और वे इस आशा में थे कि उनकी रहनुमाई में भारतीय क्रान्ति होगी और मज़दूर राज (Dictatorship of the proletariet) कायम होगा..........उनके साथियों को १६२४ में चार-चार साल की सख्त कैद की सज़ा मिली थी। ....किन्तु चुंकि अभियुक्त ही उस षड्यन्त्र के प्राण तथा परिचालक थे,* मेरी राय है कि उन्हें ६ साल सख्त कैद की सजा मिले।.........."

"अभियुक्त की अपील खारिज"।

× × × × ×

इस प्रकार श्री मानवेन्द्र राय के मुकद्दमे का अभिनय समाप्त हुआ और वे बरेली सेन्ट्रल जेल में भेज दिये गये। कहना नहीं होगा कि इसके बाद ही उनकी रिहाई के लिये देश विदेशों में ज़ोरों का आन्दोलन शुरू हुआ। कामरेड राय अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता थे। फलतः हिन्दोस्तान ही में नहीं, संसार के कोने कोने में सभायें हुई, जुलूस निकले और उनके 'बिना किसी शर्त की रिहाई', के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास हुए। यूरोप और अमेरिका में तो इस आन्दोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। हर जगह उनकी रिहाई की मांगें

---

* "his was the moving spirit and master mind."
—Justice Thom

पेश हुई। हैमवर्ग में २०,००० मजदूरों के प्रदर्शन हुए। शिकागो (U.S.A.) में १५,००० कामगारों ने ब्रिटिश-राजदूत के दफ्तर के चारो ओर बहुत ही प्रभावशाली प्रदर्शन किया और उनकी ओर से ब्रिटिश-सरकार के नाम एक खुली चिट्ठी प्रकाशित हुई जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि कामरेड राय जल्द से जल्द रिहा कर दिये जांय। इन प्रदर्शनों और सभाओं के विषय में प्रसिद्ध जर्मन इतिहासकार एडवर्ड फूश लिखता है:—

"............श्री मानवेन्द्रनाथ राय की गिरफ्तारी तथा उनकी रिहाई-सम्बन्धी आन्दोलन से हिन्दोस्तान का प्रश्न संसार के सामने पहले से कहीं अधिक साफ और महत्वपूर्ण हो गया है।"

खास इङ्गलैण्ड में स्वतंत्र मजदूर-पार्टी (Independent Labour Party) की ओर से कामरेड राय की रिहाई के लिये कई प्रदर्शन हुए। बड़े बड़े साहित्यकों, वैज्ञानिकों और विद्वानों में इस विषय पर बड़ी खलबली मची। विश्व-विख्यात वैज्ञानिक प्रो० आइन्सटीन ने राउण्ड टेबिल कान्फरेन्स में कामरेड राय की रिहाई की मांग पेश की थी और लिखा था कि "राय जैसे महान् व्यक्ति को जेल में रखना किसी भी राष्ट्र के लिये शर्म की बात है।"

संसार का यह शक्तिशाली लोकमत भी कामरेड राय को साम्राज्यवादी जेल की कालकोठरी से अलग नहीं रख सका। जेल में उन्हें दिन-रात बन्द रहना पड़ता। उनका जेल-जीवन सख्तियों का जीवन है। जेल में जाते ही उनका वजन घट गया। वे बीमार पड़ गये। बरेली का भीषण गर्म जल-वायु उनके अनुकूल न था। फिर भी

सरकार को कुछ भी परवा न थी। वे कलेजे की एक सख्त बीमारी से लाचार हो गये थे। उनके मित्रों ने सरकार से यह प्रार्थना की कि बाहर के किसी डाक्टर से उनका इलाज हो। सरकार को यह भी मंजूर न था।

इसके अतिरिक्त जो दूसरी कठिनाई थी वह और भी सख्त थी। उनके पढ़ने-लिखने के सामान पर भी कड़ा रोक था। वैज्ञानिक तथा दार्शनिक पुस्तकों के लिये भी पूरी आजादी न थी। किसी विषय पर कुछ लिखने या नोट उतारने या पुस्तकों के उद्धरणों को अंकित करने के लिये पेन्सिल तक रखने की सुविधा न थी। इसके सम्बन्ध में और अधिक न लिख कर हम शिकागो के एक प्रसिद्ध पत्र का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिससे पाठकों को उनकी तकलीफों का अन्दाज लगेगा। अखबार के विद्वान सम्पादक ने यों लिखा था:—

"कामरेड राय ने हमलोगों के पास मदद के लिये एक स्पष्ट अपील भेजी है। जैसा कि उनके पत्र के कुछ अंश से प्रकट होता है जो नीचे उल्लेखित है, ब्रिटिश-साम्राज्यवादी अधिकारियों ने उनका जेल-जीवन आपद-ग्रस्त बना कर मामूली शिष्टाचार का उल्लंघन किया है :—

कामरेड राय लिखते हैं :—

"अब एक नई किन्तु सब से बुरी और अप्रत्याशित आफ़त मेरे सर आ गिरी है। मैं लिखने की सुविधाओं से, जो बिलकुल ही सीमित थे, वञ्चित कर दिया गया हूं। सादे कागज, कलम और पेंसिल भी रखने की इजाज़त नहीं। केवल इस खत

को लिखने के लिये कलम मिली है और जैसे ही लिखना समाप्त होगा, मुझे लौटा देना पड़ेगा ! वैज्ञानिक ढंग पर किसी भी विषय का सुचारु रूप से अध्ययन असंभव है। इसने मेरी अग्नि-परीक्षा को और भी असहनीय बना दिया है। मेरे जेल-जीवन के तीसरे वर्ष की अग्नि-परीक्षा का यह किसी भी तरह सुखांत नहीं।"

सभी मजदूर-संस्थायें, विज्ञ-जमातें तथा संसार के विज्ञान और कला से संबंधित सुविख्यात व्यक्तियों से अपील है कि वे कामरेड राय के विरुद्ध किये गये इस महान अत्याचार का घोर विरोध करें और कड़े विरोध-पत्र, वाशिंगटन में स्थित ब्रिटिश-राजदूत के पास भेजें।

कामरेड राय का केस अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का है, अतः यह एक सब से बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय सवाल होना चाहिये।

—वर्कर्स एज (संयुक्त राज अमेरिका)

सितम्बर १५, १९३४

इन विपरीत परिस्थितियों के बावजूद श्री राय ने जेल में जितनी किताबें लिखीं वे वैज्ञानिक तथा दार्शनिक विषयों पर अनमोल हैं। जस्टिस सुलेमान के नये वैज्ञानिक सिद्धान्त का खण्डन उन्होंने जेल में ही किया था। उन पुस्तकों में से मार्क्सवाद बनाम कांग्रेस-समाजवाद (Marxism vs. Congress-Socialism), फेसिज्म इस्लाम का एतिहासिक रोल', 'हम लोगों का मतभेद' (Our Differences) आदि पुस्तकें छप चुकी हैं।

जेल की चहारदिवारी के भीतर रहकर भी उन्होंने किस प्रकार अपना सम्बन्ध बाहरी जगत् से बनाये रखा, जेल की कालकोठरी के अन्दर से भी वे किस प्रकार बाहरी आन्दोलनों को संचालित कर रहे थे, वह एक अलग कहानी है जिसे कई कारणों से यहां लिखा नहीं जा सकता। वह भविष्य के इतिहासकारों के लिये दिलचस्प विषय होगा।

इस परिच्छेद को खत्म करने के पहले पं० जवाहरलाल नेहरू का वह वक्तव्य देना अनुचित न होगा जो उन्होंने श्री राय के सम्बन्ध में उन दिनों लिखा था—

"सन् १९२७ के नवम्बर में मेरा उनसे पहले पहल मास्को नगर में परिचय हुआ। मैं उनके विषय में बहुत कुछ सुन चुका था और भारतीय मसले पर उनकी शानदार किताब को पढ़ा भी था। अतः इस मुलाकात की प्रतीक्षा को मैं उत्सुकता से देख रहा था और इसमें मुझे निराशा भी नहीं मिली। छः फीट लम्बा और सुडौल शरीर—वे भारतीय मानवता के प्रतीक थे। उनका दिमाग तीव्र और चौकन्ना था और कुछ ही मिन्टों के वार्तालाप ने उनकी

I met him first in Moscow in November 1927. I had heard a great deal about him, and read his brilliant book on the Indian problem. And so I looked forward with interest to this meeting and I was not disappointed. Six feet tall and well built, physically he was a fine specimen of Indian humanity. Intellectually he was alert and keen and even a few minutes' conversation

असाधारण क्षमता का प्रभाव मुझ पर डाल दिया था। प्रत्यक्षतः वे एक दिमागी पुरुष थे बल्कि कुछ उससे भी बढ़कर। वे कर्मशील मनुष्य थे और सदा अपने विचारों को अमल में लाने की कोशिश करते थे। उसके लिये वे उपयुक्त अवसर के उपयोग की ताक में तैयार रहते थे। अर्थशास्त्र, राजनीति और जीवन-समस्या के विषयों पर, वे मार्क्स की विचारशैली के कायल थे, और अपने विचारानुसार उस महान कार्य्य में संलग्न थे। उन्हें अपनी बुद्धि पर विश्वास था। वे ऐसे व्यक्ति नहीं थे जो दूसरों के पीछे आंख बन्द कर चुपचाप चलें। मैं उनसे प्रभावित हुआ था। प्रत्यक्षतः वे मुझसे प्रभावित न हुए। इस अरसे में उन्होंने मेरे और मुझ जैसों के ऊपर अनेक तीव्र आलोचनात्मक लेख लिखे जिसमें उन्होंने मुझे

---

impressed me with his unusual ability. He was obviously a man of intellect and yet he was something more. He was a man of action also trying always to fit in his action to his thought and ever eager to seize any opportunity that might offer itself. Firmly convinced of the Marxist view of economics and politics and life he was devoted to the great cause as he conceived it. But he had the pride of intellect also and he was not of the sort that follows another blindly and without questioning. I was impressed by him. Evidently he was not impressed by me. During the years that followed, he wrote many an article in bitter criticism of me and my kind when he dubbed me with considerable truth as petty bourgeois. He used hard words which stung but the

पेटीबुर्जुआ बतलाया। उन्होंने चुभनेवाले कटुशब्दों का व्यवहार किया, किन्तु उस क्षणिक मिलन का संस्मरण मेरे मानस पटल पर ताजा बना रहा और आज भी हृदय में उनके लिये मधुर स्थान मौजूद है।

कई वर्ष बीत गये। सन् १९३१ में एक दिन मैं यह देख कर विस्मित हो गया कि जो आगन्तुक मुझे खोज रहा था वह और कोई नहीं, एम. एन. राय ही थे। मैंने उनके आने की उम्मीद न की थी। मुझे इसका भी पता न था कि वे हिन्दोस्तान में हैं। पर मैंने उन्हें तुरन्त ही पहचान लिया और देख कर हर्षित हुआ। पन्द्रह वर्षों के बाद विचित्र परिस्थितियों में वे स्वदेश लौटे। वे उन लोगों में से हैं जिन्हें अङ्गरेजी सरकार नफरत से देखती है। उनके भारत लौटने का निश्चित अर्थ था—कारागार और यन्त्रणा।

---

memory of our brief meeting remained fresh in my mind and I retained a partiality and a sort corner in my heart for him.

Years passed. One day in 1931, I was surprised to find that a stranger, who called on me was none other than M. N. Roy. I had not expected him. I did not even know that he was in India. But I recognised him immediately and was delighted to meet him. He had come back to his homeland, after a long absence of about 15 years, under strange circumstances. He was one of those who were bitterly disliked by the British authorities and a return to India meant, almost certainly, prison and suffering. He knew this full well and yet he came. He had disagreed on some grounds of policy

वे इसे जानते थे और फिर भी वे आये। सोवियट यूनियन में उनका किसी ख़ास विषय पर, नीति और युक्ति को लेकर स्टालिन-गुट से मतभेद होगया था। किन्तु वहां कोई भी खुले मतभेद का स्वागत होना मुश्किल था। इसलिये उन्होंने रूस छोड़ दिया। किन्तु वे चुपचाप बैठने वाले आदमी न थे। प्रतिभा और कर्मशील मनुष्य की सारी संचित शक्तियों ने उन्हें स्वदेश की ओर प्रेरित किया यद्यपि इसका बदा हुआ भाग्य वे जानते थे। वह भाग्यफल उन्हें हिन्दोस्तान लौटने के कुछ ही महीने बाद मिला। हमलोगों में से कोई भी उनके लिये कुछ कर न सका। फिर भी मैं उनके लिये कुछ करना चाहता था और यह व्यक्त करना चाहता था कि उनके प्रति मेरा सम्मान कैसा है। मैं उनकी डिफेंस-कमेटी में शामिल हुआ यद्यपि मैं जानता था कि हिन्दोस्तान में वर्तमान समय में ऐसी कमेटियों से कुछ लाभ नहीं और मुझे उनमें विश्वास भी नहीं था। आज वे

---

and tactics with the predominent Stalin-group in the Soviet Union and any pronounced disagreement was not welcomed there. So he left Russia. But he was not the man to remain idle. All the pentup energy of the man of intellect and action pushed him inevitably to his homeland though he knew the fate that awaited him there. That fate met him some months after his return. None of us could do much for him and yet I wanted to be of some service to him, to show some how in what regard I held him. I joined this Defence Committee because of this desire of mine, though I knew that such Committees are of little real use in India at present and I had little

बरेली-सेन्ट्रल जेल में पड़े हुए हैं और ढाई वर्षों से उसमें सड़ रहे हैं। वे बीमार हैं और कहा जाता है, कि भयानक रोग से पीड़ित हैं। वे सालों से गर्म जलवायु से अनभ्यस्त थे फिर भी उन्हें उत्तरी भारत के गर्म जलवायु को जेल की दुःखद परिस्थितियों में झेलना पड़ा। वे उन सामान्य सुविधाओं से भी वंचित हैं जो हम में से कुछ को मिलती थीं। और मालूम पड़ता है कि किताबों वा लिखने की सामग्रियों पर भी कठोर नियन्त्रण है। दिमागी काम करनेवालों के लिये यह विकटतम परीक्षा है।

और इस प्रकार वे क्षीण हो रहे हैं। और उनका उज्जवल यौवन काल जिससे आशायें प्रस्फुटित हो चुकी थीं, आज गिरता नजर आ रहा है। *वर्तमान युग के भारत के योग्यतम और वीरतम सन्तान की ऐसी गति !* हमलोग पौरुषेय बल में गरीब हैं और

---

faith in them. Today he lies in Bareilly Central Prison and for nearly two years and a half he has been in gaol. He is ill and is said to suffer from a serious constitutional disease. For long unused to a hot climate, he has had to endure the terrible summer heat of Northern India in the hard painful surroundings of a prison. The usual facilities which were granted to some of us in prison are denied to him and it appears that even books and writing materials are severely restricted. For an intellectual that is the hardest trial of all.

And so he wastes away. And his bright young life which had already shown such promise slides downhill

उनलोगों के जीवन की बर्बादी आखों से देखना शोकमय है जिन्हें देश के लिये बहुत कुछ कर दिखाने की योग्यता और क्षमता है। दूसरी ओर वे लोग हैं जिनमें न तो कोई प्रतिभा, आदर्श या अच्छी भावना है फिर भी वे सत्ता और सामर्थ्य के आसन पर मौजूद हैं।

to the brink. *Such is the fate of one of the bravest and ablest of India's sons of the present generations.* We are poor enough in human material and it is tragedy to see the waste of the lives of those who have the ability and capacity to do so much for the country, while others whom, nobody can accuse of possessing any intellect, ideals or even decent feelings occupy the seats of power and authority. —Jawaharlal Nehru

सातवां विश्व-कांग्रेस

सातवें विश्व-कांग्रेस के अधिवेशन में असाधारण विलम्ब किया गया। १६२८ के बाद सात वर्षों तक विश्व-कांग्रेस का अधिवेशन हुआ ही नहीं। राय, ब्रैन्डलर, लवस्टोन प्रभृति बहुत से कम्यूनिस्टों ने, जो आरम्भ से ही कम्यूनिस्ट-इन्टरनैशनल के प्रमुख सदस्य थे इसके खिलाफ आवाज उठाई। उन्हें विश्वास था कि सातवां कांग्रेस इन्टरनैशनल की गलत नीतियों को सुधार लेगी। किन्तु शासनारूढ़-स्टालिन-गुट बेपरवाह अपनी नीति को अमल में ला रहा था। उसके भयंकर परिणामों के नतीजों से लाचार होकर १६३५ में सातवें कांग्रेस का अधिवेशन बुलाया गया। छठें कांग्रेस की आत्मघातक बाईं-नीतियों को इसने बदल डाला।

छठें विश्व-कांग्रेस का खतरनाक असर यूरोपीय आन्दोलनों पर ही नहीं, औपनिवेशिक देशों पर भी हुआ। कम्यूनिस्टों की बाईं रुख से उनकी ताकत बिलकुल कमज़ोर हो गई थी और वे जन-आन्दोलन से अलग हो गये थे।

१९२७ में क्रान्ति-विरोधी ताकतों की जीत के बाद चीन की कम्यूनिस्ट पार्टी मृत-प्राय हो चुकी थी। बची-बचाई कमज़ोर कम्यूनिस्ट-पार्टी के बल पर ही चीन में सोवियट-राज का स्वप्न देखा जा रहा था। पहाड़ी देशों में वहां की लाल-सेना वर्षों तक गुरिल्ला-जंग में व्यस्त रही है। फिर भी कुछ सफलता नज़र नहीं आई।

कामरेड राय ने १९२९ में इस नीति का विरोध किया था। साफ शब्दों में उनकी ये चेतावनी थी कि "ये वामपक्षी नीति असफल रहेगी। चांग-काई-शेक जैसा क्रान्ति-विरोधी तानाशाह गुरिल्ला-जंग से नहीं उखड़ सकता। उसके लिये सारे देश में शक्तिशाली जन-आन्दोलन की आवश्यकता है. जो चीन की मौजूदा स्थिति में 'राष्ट्रीय-सभा' और 'प्रजातन्त्र-क्रान्ति' की पुकार पर ही खड़ा हो सकता है।" वर्षों के कड़ुए अनुभवों के बाद कम्यूनिस्ट पार्टी को अपनी बाईं-नीति बदलनी पड़ी *।

छठें कांग्रेस की नीति के असर से हिन्दोस्तान भी बच न सका। अभी तक कामरेड राय की नुमाइन्दगी में कम्यूनिस्ट लोग भारतीय नेशनल कांग्रेस में शामिल होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग ले रहे थे। मजदूर आन्दोलन में भी उनका प्रभाव था। किन्तु सोशल-फैसिज़्म के सिद्धान्त ने सब कुछ चौपट कर दिया।

* ......'I recommended that course of action in 1929. At last the Communists seem to have learned from bitter experience. Better late than never."—M. N. Roy (My Experienes in China).

अखिल भारतवर्षीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस अभी तक मजदूरों की सर्वमान्य संस्था थी। इसके नेता भी प्रगतिशील विचारों के थे। किन्तु मास्को के फतवे पर कम्यूनिस्टोंने अपनी अलग संस्था लाल ट्रेड यूनियन, कायम की। ट्रेड-यूनियन कांग्रेस को उनलोगों ने क्रान्ति–विरोधी संस्था करार कर दिया। बड़े बड़े मजदूर नेताओं को जिन्होंने अपनी जिन्दगी का बड़ा हिस्सा मजदूर-आन्दोलन में बिताया था, 'पूंजीपतियों के दलाल' पुकारा जाने लगा। मजदूर-आन्दोलन में, जिसका हिन्दोस्तान में अभी श्रीगणेश ही हुआ था, विभेद पैदा करने की कोशिश की गई।

ट्रेड-यूनियन को एकाएक बोलशेविक बनाने के प्रयत्न का नतीजा यह निकला कि लाल ट्रेड-यूनियन सिर्फ कागजों की ही चीज रह गई। उस में मजदूर शामिल न हुए। उतावली कम्यूनिस्ट पार्टी मजदूर-आन्दोलन के सम्पर्क से अलग हो गई।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस यहां के कौमी आन्दोलन का शक्तिशाली मोर्चा था। देश में इसकी इज्जत थी और जनता इसे ही एकमात्र साम्राज्य विरोधी मोर्चा मानती रही है। अभी तक कम्यूनिस्टों की नीति यही थी कि वे उसमें शामिल रह कर उसे प्रतिगामी प्रभावों से अलग रखने की कोशिश करते थे। उनका प्रयत्न यह रहता था कि कांग्रेस धीरे धीरे क्रान्तिवादी रास्तों पर आगे बढ़े। किन्तु छठें कांग्रेस के बाद भारतीय कम्यूनिस्टों ने कांग्रेस को 'पूंजीपतियों और जमिन्दारों की जमायत' करार कर दिया। वे लोग उससे अलग होकर यह प्रचार करने लगे कि कांग्रेस हिन्दोस्तान की स्वतंत्रता

चाहनेवाली संस्था नहीं है। वह जनता को धोखे में रखने तथा उनके शोषण को और भी तीव्र करनेवाली, भारतीय धनी-वर्ग की संस्था है।"

कम्यूनिस्टों की रफ्तार ऐसी हुई कि महात्मा गांधी को तो वे खुलेआम गालियां देते ही थे, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री सुभाषचन्द्र बोस जैसे कांग्रेस के उग्रवादी नेताओं को भी अपने घोषणापत्र में वे किसान और मजदूरों का दुश्मन बतलाने लगे। आम जलसों में वे इन वाम-पक्षी नेताओं को फैसिस्ट, देश का दुश्मन और क्रान्ति–विरोधी बतलाते थे। जवाहरलाल जी के विषय में यह प्रचार किया जाता था कि वह ऊपर से समाजवादी बातें करते हैं किन्तु भीतर ही भीतर पूंजीपतियों से मिले हैं।*

कांग्रेस तथा इसके नेताओं के प्रति कम्यूनिस्टों का कैसा घृणास्पद व्यवहार था यह आज किसी को विश्वास भी नहीं हो सकता। उनकी सभाओं में कांग्रेस के तिरङ्गे झण्डे को जलाने तक का प्रदर्शन होता था।

*"The bourgeois National Congress is not fighting for the masses not even its so-called left section. The representative of the left, Jawaharlal, Bose are even worse than the right and its representative Gandhi, for the latter is atleast frank in his confession that he is against the peasants and the workers. The former said empty phrases and try to confuse the issues ....it has and will consistently oppose the revolution."

—Manifesto of the Communist Party of India (March 1933)

कहने का तात्पर्य्य यह है कि देश की सब से बड़ी राजनैतिक संस्था, कांग्रेस से अलग होकर वे राष्ट्रीय–आन्दोलन की शक्तिशाली धारा से दूर हट गये। देश के राजनैतिक जीवन में उनका तनिक भी स्थान न रहा।

कांग्रेस के सम्बन्ध में श्री एम. एन. राय का मत था कि "यह हर्गिज प्रतिगामी नहीं है और न धनिकों की संस्था ही है। कांग्रेस वस्तुतः जनता की क्रान्तिकारी संस्था है किन्तु इसका नेतृत्व प्रतिगामी है और फलतः उस पर क्रान्ति-विरोधी प्रभावों का जमघट है। फिर भी कांग्रेस के गर्भ में ही क्रान्तिवादी शक्तियां वर्तमान हैं। इसलिये मौजूदा परिस्थिति में कम्यूनिस्टों का यह फर्ज है कि कांग्रेस के इस जन-आन्दोलन में शरीक होकर उसके बांये पक्ष को मजबूत करें और धीरे धीरे उसे क्रान्तिवादी वसूलों पर आगे बढ़ावें। कांग्रेस तभी शक्तिशाली संस्था बन सकेगी। कम्यूनिस्टों की ताकत भी उसमें शामिल हुए बगैर नहीं बढ़ सकती। चीन का अनुभव इसका ज्वलन्त प्रमाण है।"

राय के ये विचार बिलकुल लेनिनवादी थे। कम्यूनिस्टपार्टी ने इस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। बात यह थी कि छठें कांग्रेस के समय हिन्दोस्तान के बहुत से कम्यूनिस्ट मेरठ जेल में बन्द थे। उन्हें भी वस्तुस्थिति का ज्ञान न था। जो बाहर थे, उन्होंने मास्कों के फतवे को बिना सोचे–समझे ग्रहण कर लिया। जन-सम्पर्क से अलग होकर भी वे जन-क्रान्ति का असम्भव स्वप्न देख रहे थे। उनकी राजनैतिक पुकार थी।——' मजदूर-राज

(Dictatorship of the Proletariate) तथा सोवियट की स्थापना।" कामरेड राय ने बतलाया कि 'हिन्दोस्थान में अभी तक बुर्जुआ-डेमोक्रेटिक क्रान्ति का ऐतिहासिक स्टेज बाकी है जिसके बिना हम समाजवाद का ख्वाब भी नहीं देख सकते। फलतः हिन्दोस्तान की मौजूदा परिस्थिति में 'विधान निर्मात्री परिषद' (Constituent Assembly) का स्लोगन ही क्रान्तिवादी आन्दोलन को तीव्रतर बनाने के लिये उपयुक्त हो सकता है।"

इस मत के लिये कामरेड राय को इन कम्यूनिस्टों से हजारों गालियां सुननी पड़ी। उन्हें खुलेआम विश्वासद्रोही लिखा जाता था। किन्तु राय स्थिर थे। वे जानते थे कि वस्तुस्थिति से अलग होकर सुनहले आदर्श भी फिजूल रह जाते हैं। उनका सब से बड़ा मतभेद कम्यूनिस्टों से यह था कि वे लम्बे लम्बे स्लोगन और प्रोग्राम न देकर ऐसा ही प्रोग्राम सामने रखते थे जो जनता के अनुकूल हों और जो उनकी तात्कालिक मांगों के आधार पर बने हों।

कुछ वर्षों के बाद कामरेड राय की बात ठीक उतरी। इन्टरनैशनल ने अपनी गलती महसूस की। स्टालिन और डिमिट्राफ के नेतृत्व में सातवें विश्व-कांग्रेस ने पुरानी नीति बदल डाली। लाल-ट्रेड-यूनियन तोड़ डाले गये। कांग्रेस में शामिल होने का आदेश किया गया। 'विधान निर्मात्री परिषद' के स्लोगन को भी उपयुक्त माना गया। जिन सिद्धान्तों के लिये ये कम्यूनिस्ट महाशय राय को गालियां देते थे, एक एक करके मंजूर कर लिये गये। हम इसी से समझ सकते हैं कि हिन्दोस्तान का सच्चा कम्यूनिस्ट कौन है ?

अफसोस की बात है कि हिन्दोस्तान के ये कथित कम्यूनिस्टों (जो अपने को स्टालिनवादी कहते हैं) ने कम्यूनिज्म को एक खास dogma समझ लिया है और स्टालिन को उसका महन्थ। उनमें इतनी विचार-स्वाधीनता नहीं है कि हिन्दोस्तान की खास परिस्थिति में आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिये अपना स्वतंत्र प्रोग्राम रख सकें। वे हर विषय में मास्को के फतवे का आंख मूंद कर इन्तजार करते हैं। *राय कम्यूनिस्ट आन्दोलन में अन्तर्राष्ट्रीय नेतृत्व के विरोधी नहीं हैं किन्तु वे मास्को-गुट का ग्रामोफोन बन रहना नहीं चाहते। वैसा होने से हम जन-सम्पर्क से अलग हो जाते हैं जिससे अन्त में कम्यूनिस्ट-आन्दोलन पर धक्का लगने की सम्भावना रहती है।*

सातवें विश्व-कांग्रेस का सब से बड़ा महत्व यह है कि उसने हिन्दोस्तान के अनुभव हीन ग्रामोफोन कम्यूनिस्टों की गलतियों को कबूल किया। उसके विषय में उपनिवेशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों पर अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए श्री वांग-मिंग (Wang-Ming) ने कांग्रेस में यों कहा था—

हिन्दोस्तान एक पुराना (classical) उपनिवेश है जहां मजदूरों की संख्या ज्यादा है ओर वर्गभेद भी आगे बढ़ा हुआ है। चीन और ब्राजील के विषयों पर बोलते हुए मैंने बतलाया था कि जनता की मांगों की बुनियाद पर संस्थायें कायम करने में तथा एक निर्भीक साम्राज्य-विरोधी मोर्चा तैयार करने के लिये जन-संगठन

स्थापित करने में, वहां के कम्यूनिस्टों को काफी सफलता मिली है। किन्तु इतना मैं अवश्य कहूंगा कि हिन्दोस्तान की हालत कुछ और ही है।

हिन्दोस्तान के हमारे साथी बहुत दिनों तक *वामपन्थी गलतियों* के भयानक शिकार हुए हैं। उन्होंने भारतीय कांग्रेस द्वारा संगठित वा उससे सम्बन्धित किसी भी जनता के प्रदर्शन में भाग नहीं लिया। उन हिन्दोस्तानी कम्यूनिस्टों में इतनी ताकत भी नहीं थी कि वे स्वतंत्र रूप से जनता की एक जोरदार साम्राज्यविरोधी आन्दोलन संगठित कर सकें। अतएव वे हिन्दोस्तानी कम्यूनिस्ट अभी तक जन-सम्पर्क तथा साम्राज्यविरोधी जन आन्दोलन से अलग ही रहे।...............अपनी संकुचित नीति तथा साम्राज्यविरोधी युद्ध से अपने को अलग रख कर कम्यूनिस्टों की छोटी छोटी दलबन्दियों ने वस्तुतः जनता के ऊपर गांधीवाद तथा राष्ट्रीय-सुधार-वादियों के प्रभाव को कायम रखने में मदद की। अभी हाल में ही अखिल-भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी ने ....अपनी संकीर्णताजन्यमूलों को सुधारने की कोशिश की है और संयुक्त साम्राज्यविरोधी मोर्चा कायम करने के प्रयत्न की ओर कदम उठाया है। फिर भी हमारे नवजवान हिन्दोस्तानी साथियों ने संयुक्त मोर्चे की नीति में भयङ्कर नासमझी का काम किया है। इसका प्रत्यक्ष मिसाल तो यह है कि पिछले साल दिसम्बर में राष्ट्रीय कांग्रेस से संयुक्त मोर्चा कायम करने के प्रयत्न में हमारे हिन्दोस्तानी कामरेडों ने ऐसे शर्त पेश किये थे—

(१) भारतीय किसान-मजदूरों के सोवियट प्रजातन्त्र की स्थापना।

(२) जमिन्दारों की सारी जमीने, बिना किसी मुआवजे के जब्त।

(३) आम-हड़ताल का मुख्य कार्य्यक्रम।

हिन्दोस्तानी साथियों की ओर से ऐसे मांगों को पेश करना तो संयुक्त मोर्चे की नीति को विच्छिन्न करने का प्रदर्शन करना है। हां, अब उनलोगों ने अपना रास्ता कुछ सुधारा अवश्य है।

हिन्दोस्तान के कम्यूनिस्टों को लोकप्रिय मांगों के बुनियाद पर एक विस्तृत साम्राज्यविरोधी मोर्चा के लिये प्रोग्राम बनाना चाहिये।

जितनी सफलता के साथ हमारे हिन्दोस्तानी साथी चीन और ब्राजील के कम्यूनिस्ट पार्टियों के तजरुबों से फायदा उठायेंगे, भारतीय परिस्थिति की मौजूदा वास्तविक स्थिति का खयाल रखते हुए जितना दृढ़ता और उदारता (flexibly) से साम्राज्यविरोधी संयुक्त मोर्चे की नीति काम में लाई जायगी, उतनी ही अधिक कामयाबी की आशा है इस सम्बन्ध में मैं भारतीय कम्यूनिस्टों का ध्यान सातवें विश्व-कांग्रेस के आदेशों की ओर दिलाना चाहता हूं।......

" ... यह आवश्यक है कि बढ़ती हुई साम्राज्यवादी शोषण और निर्दय गुलामी के खिलाफ तथा देश की आजादी हासिल करने और साम्राज्यवादियों को निकाल बाहर करने के लिये स्वतंत्रता आन्दोलन में अधिक से अधिक जनता को शामिल किया जाय। राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा संचालित साम्राज्यविरोधी मांगों की

बुनियाद पर राष्ट्रीय सुधारवादी तथा राष्ट्रीय क्रान्तिवादी संगठनों में संयुक्त मोर्चा स्थापित करना भी जरूरी है।"

..........हिन्दोस्तान के साथियों का अब यह फर्ज है कि वे अपने कार्यों से यह साबित करके दिखला दें कि कम्यूनिस्ट लोग भारतीयों की आजादी की लड़ाई में सब से आगे हैं।"*

यह बात मार्के की है कि सातवें कांग्रेस का फैसला कामरेड राय के उस मशहूर पत्र से प्रभावित हुआ था जिसे उस समय उन्होंने कांग्रेस को भेजा था।† ये मौजूदा नीति बिल्कुल राइस्ट है जिसका इन्टर-नैशनल ने छ वर्ष पहले घोर विरोध किया था।‡

इतना होने पर भी आज राइज्म और हिन्दोस्तान के कम्यू-निस्टों में कई खास भेद हैं जिससे ये दो कम्यूनिस्ट धारायें अभी तक एक नहीं हो सकी हैं। ये कम्यूनिस्ट अपनी पुरानी Ultra-leftist (उग्र-बाम पक्षी) आदतों से इस कदर लाचार हैं कि सातवें

---

*Extract from the report of Wangming on the Revolutionary movement in the Colonies in the Seventh World Congress of the C. I.

†यह पत्र अभी हाल ही में प्रकाशित कामरेड राय की किताब Our Difference (हमलोगों का मतभेद) में निकली है।

‡"........The VII Congress of the C. I. in 1934, fully adopted my point of view condemned six years ago by the VI Congress. Since then, all the antiques of Communist activity have been discarded, in theory and the present line is completely Royist..........."

—M. N. Roy.

कांग्रेस के नये तरीकों को वे अभी कार्य्यान्वित नहीं कर सके हैं। उन्होंने मार्क्सिज्म को धर्म के समान स्थिर समझ लिया है। राय इसे कबूल नहीं करते। मार्क्सिज्म जीवन की एक जागृत और उगती हुई (growing & ever-changing) फिलासफी है। प्रत्येक देश में और भिन्न भिन्न परिस्थितियों में इसकी लकीर टेढ़ी-मेढ़ी होकर चलती है। मार्क्सवादियों की योग्यता इसी में है कि वे परिस्थिति को उसके वास्तविक रूप में देखते हैं और उसके अनुकूल ही अपना कार्य्यक्रम निश्चित करते हैं। आज यदि सच पूछा जाय तो सातवें विश्व-कांग्रेस की नीति राइस्ट ही कार्यान्वित कर रहे हैं।

हिन्दोस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी अभी तक सिर्फ एक प्रोपेगैण्डीस्ट-ग्रूप का काम करती रही है। किन्तु अब तो ऐसा वक्त आगया है कि हमें जनता का क्रान्तिवादी राजनैतिक मोर्चा तैयार करना होगा। परिस्थिति के अनुकूल हमें अपनी नीति निर्धारित करनी होगी। यही कारण है कि राय ने कांग्रेस के भीतर रह कर ही काम करना उचित समझा। क्योंकि जनता कांग्रेस के साथ है। क्रान्तिकारी शक्तियां कांग्रेस में मौजूद हैं। कांग्रेस से अलग रहना क्रान्ति से अलग रहना है और उन वास्तविक क्रान्तिवादी शक्तियों को प्रतिगामी नेतृत्व के हाथों में छोड़ देना है। सातवें-विश्व कांग्रेस के बाद कम्यूनिस्टों ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रति अपने ख्याल तो बदल दिये और उसके भीतर काम करना भी मंजूर किया, किन्तु वे कांग्रेस को

साम्राज्यविरोधी युद्ध का एक-मात्र मोर्चा अभी भी नहीं मानते। वे कांग्रेस के बाहर वह साम्राज्य विरोधी मोर्चा तैयार करना चाहते हैं, जो किसान-सभा, विद्यार्थी-संघ, मजदूर-सभा तथा कांग्रेस इत्यादि का मिल कर बनेगा। इसलिये वे कांग्रेस से बाहर का ही काम अधिक पसंद करते हैं। इस सम्बन्ध में राय का मत यह है कि जब ब्रिटिश-साम्राज्यवाद तथा भारतीय राष्ट्रीयता की दो सेनाएँ अपने जीवन-मरण के युद्ध में भिड़नेवाली हैं, यह अनुचित है कि हम भारतीय राष्ट्र-क्रान्ति की ताकतों को भिन्न-भिन्न झण्डों के नीचे संगठित करें।

जेल के बाहर—

अपनी सजा की पूरी अवधि समाप्त कर १६३६ के नवम्बर के अन्त में कामरेड राय जेल से निकले। करीब बीस वर्षों के निर्वासन और कारावास के बाद वे हिन्दोस्तान के राजनैतिक रंग-मंच पर हाजिर हो सके। उस समय से आज तक भारतीय क्रान्ति की सफलता के लिये वे जैसा अनवरत प्रयत्न कर रहे हैं वह हमलोगों के सामने है।

उनकी रिहाई पर सारे देश ने उनका स्वागत किया। एकाएक सबों के दिल में ये आशा जागृत हुई कि देश का नेतृत्व अब क्रान्तिकारी ढंग से होगा। नौजवानों में जोश था। कामरेड राय ने परिस्थिति का अध्ययन किया और देश के सामने राष्ट्रीय प्रजातन्त्रीय क्रान्ति (National Democratic Revolution) का एक विस्तृत प्रोग्राम रक्खा। पहली बार उन्होंने फैजपूर कांग्रेस के मंच से डेमोक्रेटिक-क्रान्ति की आवश्यकता बतलाइ। फैजपूर का उनका व्याख्यान कांग्रेस के इतिहास में एक विशेष स्थान रखता है।

उसके सम्बन्ध में तथा डेमोक्रैटिक क्रान्ति के विषय पर उनके लेखों, व्याख्यानों और विचारों का इस छोटी पुस्तक में बयान करना असम्भव है। इस किताब में राइज्म (मार्क्सवाद का औप-निवेशिक रूप) तथा उसका कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी, किसान-सभा, साम्राज्य-विरोधी युद्ध और औपनिवेशिक प्रश्नों से क्या सम्बन्ध है, इसके सम्बन्ध में भी नहीं लिखा जा सकता। इस विषय पर कामरेड राय की लिखी अन्य पुस्तकों से ही प्रकाश मिलेगा।

भारतीय स्वराज-आन्दोलन के विषय में आज राय का यह साफ मत है कि हमलोगों का उद्देश्य सिर्फ राजनैतिक स्वतंत्रता नहीं है। राजनैतिक स्वाधीनता तो उस सामाजिक क्रान्ति का एक खास रास्ता है जिससे जनता को सच्ची स्वतंत्रता राज-नैतिक, सामाजिक, आर्थिक—प्राप्त हो सकती है। इसलिये इस साम्राज्यवादी फ्रेम के अन्दर गोरे अधिकारियों के बदले यदि देशी अधिकारियों के हाथों में ही शासन-सूत्र आजाय, तो उससे देश का कुछ फायदा नहीं। हिन्दोस्तान को क्रान्ति की आवश्यकता है।

यह सच है कि बिना समाजवादी क्रान्ति के जनता की हालतों में सच्चा सुधार नहीं हो सकता। किन्तु किसी भी क्रान्ति के लिये उपयुक्त परिस्थिति की आवश्यकता होती है जिस पर किसी खास व्यक्ति का अधिकार नहीं होता और न वह लम्बे लम्बे स्लोगन वा लेक्चरों से पैदा हो सकती है। समाज के विकाश में उसका एक खास स्टेज होता है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि समाजवादी क्रान्ति का स्टेज राष्ट्रीय (बुर्जूआ) क्रान्ति के बाद ही आता है।

कई कारणों से और खास कर विदेशी-हस्तक्षेपों के कारण हिन्दोस्तान बुर्जूआ-क्रान्ति की ऐतिहासिक आवश्यकताओं को पूरा न कर सका। हिन्दोस्तान को अभी उस विशाल सामाजिक-परिवर्तन से गुजरना बाकी है जिसे यूरोप १७ वीं और १८ वीं सदी में ही पूरा कर चुका है और जिसके बदौलत वह आधुनिक-सभ्यता में अग्रणी है। फलतः आज हिन्दोस्तान बिना डेमोक्रैटिक क्रान्ति और कौमी आजादी के समाज का समाजवादी-परिवर्तन नहीं कर सकता।

हिन्दोस्तान की वर्तमान हालतों में उस क्रान्ति की रूप-रेखा यूरोपीय क्रान्ति से भिन्न होगी। इसका नेतृत्व पूंजीपति नहीं कर सकेगा। कारण यह है कि साम्राज्यवाद ने विदेशी-पूंजी में देशी धनिक-वर्ग को एक छोटा साझीदार बना रक्खा है। फलतः भारतीय धनिक-वर्ग का स्वार्थ साम्राज्यवाद से बिलकुल मिल गया है। यही कारण है कि कांग्रेस के जन-आन्दोलन में भी देशी नरेश, बड़े बड़े पूंजीपति और जमींदारों ने अङ्गरेजों का साथ दिया था। अतएव यह जाहिर है कि साम्राज्य-विरोधी जंग में, वर्ग-युद्ध का नकशा ऐसा होगा कि एक ओर साम्राज्यवाद और उसके समर्थक देशी नरेश, पूंजीपति, बड़े बड़े जमिन्दार रहेंगे और दूसरी ओर उन वर्गों (किसान, मजदूर, मध्यम वर्ग, विद्यार्थी, छोटे तिजारती वगैरह) का मोर्चा होगा जो साम्राज्यवाद की जालिम प्रणाली के शिकार हैं।

साम्राज्यविरोधी युद्ध का मोर्चा आज कांग्रेस है। इसलिये प्रत्येक मार्क्सवादी का यह फर्ज है कि वह इस मोर्चे को मजबूत बनावे। यह मोर्चा तबतक मजबूत नहीं हो सकता जब तक

वह प्रतिगामी फिलासफी से मुक्त नहीं हो जाता। कांग्रेस आज प्रतिगामी नेतृत्व के शिकंजे में कैद है। हमें वहां क्रान्तिवादी नेतृत्व कायम करना होगा। इसके लिये यह आवश्यक है कि कांग्रेस का वाम-पक्ष मजबूत बनाया जाय। वाम-पक्ष का प्रभाव डेमोक्राटिक प्रोग्राम के बुनियाद पर ही जम सकता है। उसकी आवश्यकतायें समाजवादी-पार्टी पूरी नहीं कर सकती। वाम-पक्ष तो उन तमाम रैडिकल लोगों का मोर्चा होगा जो राष्ट्रीय-क्रान्ति के हामी हैं और जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध अन्त तक लड़ना चाहते हैं।

कांग्रेस समाजवादी पार्टी इसी मकसद को लेकर आरम्भ हुई थी। पार्टी के सेक्रेटरी श्री जयप्रकाश ने बम्बई के अधिवेशन में यों लिखा था—

"कांग्रेस समाजवादी पार्टी किसी एक दल का संघ नहीं है। वह सिर्फ मजदूरों का भी संघ नहीं है। वह ऐसी राजनैतिक पार्टी है जिसके प्लेटफार्म पर सभी साम्राज्य-विरोधी मिल सकते हैं, और उसका कार्य्य ऐसे सभी लोगों को साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने के लिये मार्ग दिखाना और हिन्दोस्तान में जनता के लिये सच्चा स्वराज्य कायम करना है।"

पार्टी की मौजूदा शकल आज बदल गई है। आज तक उसने कई बार अपना चोंगा बदला है। सच तो यह है कि इसका नाम ही इतना भ्रमात्मक है कि यह एक नये ढंग का 'खिचड़ी सोशलिज्म' मालूम होता है और अभाग्यवश इसका नाम ठीक हिटलर की नैशनल-सोशलिस्ट पार्टी से मिलता-जुलता है। कहने का तात्पर्य्य

यह कि साम्राज्य विरोधी रैडिकल वर्गों का प्लैटफार्म सोशलिस्ट पार्टी नहीं हो सकना।

पार्टी के नेताओं ने अपनी भूल महसूस की। किन्तु उसे सुधारने के बदले उससे भी बड़ी गलती में फंस गये। क्रान्तिकारी आवश्यकता यह थी कि रेडिकल प्रोग्राम के बुनियाद पर कांग्रेस के अन्दर एक मजबूत वाम-पक्ष की रचना की जाय जिसमें सारे क्रान्तिवादियों का सम्मिलित मोर्चा हो। किन्तु पार्टी ने उल्टा ही किया। मेरठ-थेसिस के अनुसार उसने नाम का खयाल ज्यादा किया और उसी के अनुसार वाम-पक्ष के विशाल मोर्चे को संकीर्ण बना दिया। दरवाजा सिर्फ समाजवादियों के लिये ही खुला रहा। वह एक मार्क्सवादी पार्टी बन गई। किन्तु इसे कहां तक मार्क्सवादी कहा जाय, यह भी संदेहात्मक है।

यदि उसे समाजवादी संघ मान भी लें तो यह सिर्फ एक प्रोपेगैन्डिस्ट ग्रुप के रूप में ही रह सकता है। इसके कारण दो हैं। नृशंस साम्राज्यशाही किसी भी मार्क्सवादी पार्टी और उसके प्रोग्राम को बरदाश्त नहीं कर सकती। वह अपना कब्र खुद कैसे खोदेगी? अतः उसको पोशीदा-रूप अख्तियार करना ही पड़ेगा। दूसरा कारण यह है कि समाजवाद मजदूर-वर्ग की फिलासफी है, अन्य वर्गों की नहीं। यहां हिन्दोस्तान का मजदूर हर प्रकार से पिछड़ा हुआ है। न उसकी संख्या में मजबूती है, न उसमें वर्ग-चेतना पैदा हुआ है और न उसे क्रान्तिवादी अनुभव ही है। मार्क्स की परिभाषा के मुताबिक उसे हम सच्चा मजदूर (Proletariat) कह

भी नहीं सकते क्योंकि हिन्दोस्तान के अधिकांश मजदूरों की श्रेणी आधा किसान हैं। ऐसी हालत में समाजवाद किस खेत में पैदा हो सकेगा ? समाजवाद सिर्फ प्रचार द्वारा बुलाया नहीं जा सकता। उसके लिये अनुकूल परिस्थिति (objective situation) चाहिये जो हिन्दोस्तान के औद्योगीकरण हुए बगैर पैदा नहीं हो सकता। औद्योगीकरण के लिये यह आवश्यक है कि किसानों की निर्धनता दूर हो। फलतः भारतीय क्रान्ति का रूप राष्ट्रीय-प्रजातन्त्रीय क्रान्ति वा किसान-क्रान्ति होगा। यदि हम इसे कबूल करते हैं तो कांग्रेस-सोशलिस्ट पार्टी का रोल सिवा प्रोपेगैण्डा के क्या रह जाता है ?

हां, देश में समाजवादी पार्टी की आवश्यकता है किन्तु कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की नहीं। मार्क्सवादी नुक्ते—नज़र से यह हर्गिज युक्ति-संगत नहीं कि मजदूरों का श्रेणी-संघ, क्रान्तिवादी समाजवादी पार्टी, कांग्रेस जैसे बहुवर्गीय तथा सुधारवादी नेतृत्व से आरूढ़ संस्था के अन्दर और उसके अनुशासन में रहे। हां, यह बात दूसरी है कि उसके सदस्य व्यक्तिगत रूप से कांग्रेस में शामिल होकर जन-आन्दोलन को तीव्र करें।

कांग्रेस के भीतर रहकर क्या ये समाजवादी पार्टी गांधी जी के हृदयपरिवर्तन वाले सिद्धान्त में विश्वास करती है और समझती है कि उसके प्रचार से सारा साम्राज्यविरोधी वर्ग समाजवादी हो जायगा ? इस पार्टी के कारण आज समाजवाद के सम्बन्ध में कई टेढ़े-सीधे अर्थ लगाये जा रहे हैं।

कांग्रेस के भीतर समाजवादी पार्टी रहने में सबसे बड़ा हर्ज यह है कि उससे राष्ट्रवादी मोर्चा विच्छिन्न होता है। पार्टी के भीतर पार्टी रहने का यह आवश्यक नतीजा है। इससे वाम-पक्ष का स्वस्थ विकाश और संगठन असम्भव है।

इन सब विषयों पर यहां तफसील में लिखना बेकार है। इस विषय पर कामरेड राय की एक बड़ी सुन्दर पुस्तक (Letters to the C. S. P.) निकली है जिसे उन्होंने जेल में लिखा था। इसमें पार्टी का मार्क्सवादी नुक्तेनजर से विस्तृत विश्लेषण है।

जेल से छुटते ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की ओर से यह प्रयत्न हुआ कि वे पार्टी में शामिल हो जायें। किन्तु वे गलत ढंग पर संगठित पार्टी में शामिल होने को तैयार न थे। आज भी वे एक स्वतंत्र मार्क्सवादी संस्था बनाने के पक्ष में हैं। अपने इन विचारों के कारण उन्हें कटु और असभ्य आलोचनाओं का शिकार बनना पड़ा। कुछ सोशलिस्टों ने तो उन्हें दांया-पक्ष से मिल कर वाम-पक्ष को विच्छिन्न कर देने का आरोप लगाया था। किन्तु समय समय पर जो उत्तर उन्होंने दिये हैं, उससे सबों के मुंह बन्द हैं। और, समय ने तो यह बतला दिया कि कौन सच्चा क्रान्तिवादी है ? कांग्रेस के प्रतिगामी नेतृत्व के खिलाफ तथा क्रान्तिवादी आन्दोलन के पक्ष में आज कामरेड राय की ही आवाज सब से ज्यादा बुलन्द है। कांग्रेस का वाम-पक्ष यदि मजबूत हो सकता है तो राय के ही तरीकों पर, कांग्रेस-सोशलिस्ट झण्डे के नीचे नहीं।

किसानों के विषय में कामरेड राय के विचार सर्व-विदित हैं।

इसे याद दिलाने की आवश्यकता न होगी कि हिन्दोस्तानी राजनीतिज्ञों में वे पहले पुरुष हैं जिन्होंने किसानों की सच्ची मांगों का नारा आज-से १४ साल पहले कांग्रेस में पेश किया था। आज भी वह किसान-क्रान्ति के सबसे बड़े हिमायती हैं। उनका कथन किन्तु यह है कि किसान-आन्दोलन कांग्रेस के झण्डे के नीचे होना चाहिये। ऐसा करने ही से हम कांग्रेस को क्रान्तिवादी संस्था में बदल दे सकते हैं और उसके प्रतिगामी नेतृत्व का खात्मा कर सकते हैं। किसानों की अलग संस्था कायम करने से कांग्रेस की साम्राज्य-विरोधी ताकत क्षीण हो जायगी। दो विरोधी जन-संस्थायें पैदा हो जायंगी जिनका आपस में संघर्ष निश्चित है। वह हिन्दोस्तान के लिये खतरे का दिन होगा। यदि सच पूछिये तो किसानों का श्रेणी-संगठन कायम भी नहीं हो सकता। मजदूरों की भांति उनका वर्ग homogeneous नहीं है। उसमें कई परस्पर-विरोधी तबक्के हैं। फलतः वर्ग-संगठन की बुनियाद पर उनकी अलग संस्था कायम करना वैज्ञानिक ढंग नहीं। यह सिर्फ हिन्दोस्तान की बात नहीं। हम और और देशों से शिक्षा ले सकते हैं।

किसानों की मांगे राष्ट्रीय मांगे हैं। फलतः वह राष्ट्रीय प्लाटफार्म के जरिये ही व्यक्त होना चाहिये। हमें ऐसी कोशिश करनी है कि प्रत्येक प्राइमरी कांग्रेस कमेटी, किसान-कमेटी का काम करने लग जाये।

यह सच है कि कांग्रेस का एक पक्ष किसानों के क्रान्तिकारी आन्दोलन से भयभीत है और उसे तोड़ना भी चाहता है। किन्तु यह

बांये पक्ष की जिम्मेवारी है कि कांग्रेस को क्रान्तिवादी संस्था बना दे। यदि हम दांये पक्ष से घबड़ा कर अलग किसान-सभा कायम करते हैं तो ब्रिटिश सरकार से हम लोग कहां तक लड़ सकेंगे ?

मजदूर-आन्दोलन, आतङ्कवादी-आन्दोलन, हिन्दू-मुस्लिम समस्या इत्यादि हिन्दोस्तान के अन्य गहन प्रश्नों पर कामरेड राय के विचार प्रकट करने का यहां स्थान नहीं। उनके लेखों और पुस्तकों से हम इन मसलों पर उनके दृष्टिकोण से वाकिफ हो सकेंगे। आज सारा देश उनकी ओर गौर से देख रहा है। जेल से बाहर आते ही वे भारतीय राष्ट्रीय-आन्दोलन में कूद पड़े हैं और उस समय से बिना किसी विश्राम के एक निर्भीक योद्धा की भांति आन्दोलन में क्रान्तिवादी प्रगति लाने की अथक परिश्रम में संलग्न हैं। *जमाना धीरे धीरे ये रंग दिखलाने लग गया है कि यदि हिन्दोस्तान को आजाद होना है, यदि भारतीय जनता को सच्ची स्वाधीनता प्राप्त करनी है, यदि हमारे मुल्क को समाजवाद की ओर बढ़ना है तो श्रीमानवेन्द्रनाथ राय के तरीकों को अपनाना ही पड़ेगा।*



कामरेड एम. एन. राय

कामरेड एलेन राय

कामरेड एलेन राय—

यह किताब अधूरी रह जायगी यदि श्री एम.एन. राय की योग्यतम पत्नी श्रीमती एलेन के विषय में न लिखी जाय। अफसोस का विषय है कि जगह की कमी के कारण उनके जीवन की मुख्य घटनाओं का ही संक्षेप में वर्णन किया जा सकेगा। हिन्दोस्तान में उनके थोड़े दिनों के निवास ने ही उन्हें प्रसिद्ध बना दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों पर उनके सारगर्भित लेखों से शायद ही कोई राजनीति का विद्यार्थी अपरिचित हो। यूरोप के क्रान्तिवादी आन्दोलनों से उनका घना सम्बन्ध रहा है आज यह देखकर किसे खुशी न होगी कि श्री मानवेन्द्रनाथ राय के क्रान्तिकारी कार्य्यों में श्रीमती एलेन एक मुस्तैद साथी हैं और उन्हींके साथ कंधा मिला हिन्दोस्तान की आजादी की जंग में भाग ले रही हैं। उनका जीवन कुरबानियों का जीवन है।

एलेन का जन्म एक समृद्धिशाली परिवार में १६०४ में पेरिस में हुआ था। उनके पिता वहां अमेरिका सरकार की ओर

से राजदूत (Consul) थे और पीछे वे संयुक्त-राज्य अमेरिका के ट्रेजरी विभाग के स्पेशल कमिश्नर नियुक्त हुए। एलेन की मां जर्मन थीं। एलेन की बाल्यावस्था में ही उनके पिता की बदली कोलोन (Cologne) में हुई। यह छोटा परिवार वहीं बस गया। वहीं के स्कूल में एलेन की पढ़ाई भी शुरू हुई।

उनका झुकाव संगीत की ओर अधिक था। अतः उन्होंने संगीत का अध्ययन ही आरम्भ किया। संगीत में प्रवीणता प्राप्त करना ही अब उनका एकमात्र उद्देश्य-सा हो गया। विद्यार्थी जीवन के प्रथम करीब १० साल संगीत की शिक्षा में ही बिता। एलेन यूरोपीय गाने तथा प्यानो में बड़ी प्रवीण हो गई।

एकाएक उनके विचार में परिवर्तन आया। प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) की जानकारी प्राप्त करने की प्रवल इच्छा जागृत हुई। संगीत छोड़कर उन्होंने रसायन शास्त्र (Chemistry) और भूगर्भ विद्या (Geology) का अध्ययन आरम्भ किया।

जब वे स्कूल में ही थीं, यूरोपीय महासमर छिड़ गया। इससे उनकी शिक्षा में काफी धक्का पहुंचा। अमेरिकन नागरिक होने के कारण उनके पिता को स्विट्ज़रलैण्ड हट जाने को बाध्य होना पड़ा। मां जर्मन थीं इसलिये उस लड़की को पुलिस की देखरेख में वहीं रहने की इजाज़त मिल गई। एलेन वहां रहने तो लगीं किन्तु उस समय जर्मनी में फैले हुए जिंगो-भावनाओं (Jingo-spirit) से उन्हें बड़ा ही कष्ट हुआ। स्कूल तथा सामाजिक जीवन में, उन्हें इन भद्दी भावनाओं का शिकार बनना पड़ा। इसका उनके दिमाग पर बहुत असर हुआ।

कोलोन का नगर ठीक लड़ाई के मोर्चे के पीछे था। फलतः उस समय वह वीरान और उजड़ी हुई अवस्था में था। तोप, बन्दूक और बम की आवाजों से उसका कोना कोना कांपता था। आस पास के गांवों में भयानक बम वर्षा ज़ारी थी। महायुद्ध के इस घोर कोलाहल के निकट सम्पर्क ने एलेन का भविष्य निश्चित सा कर दिया। उन्हें खामख्वाह राजनीति की ओर झुकना पड़ा।

१६१८ में जब जर्मनी में क्रान्ति आई, तो अन्य लोगों की भांति उनके परिवार वाले मित्र और रिश्तेदार सबके सब भयभीत हो उठे। किन्तु उस कच्ची उम्र में भी एलेन ने क्रान्ति का स्वागत किया। अपने स्कूल में जहां हज़ारों विद्यार्थी थे, अकेली उन्होंने अपनी एक साथी के साथ, क्रान्ति के प्रति खुली सहानुभूति प्रकट की जिसका फल यह हुआ कि उन्हें सब लोग कम्यूनिस्ट कह कर पुकारने लगे। वह अपने अध्यापकों की आखों में खटकने लगीं। फिर भी उन्होंने अपना राजनैतिक कार्य्य ज़ारी रक्खा। प्रोफेसरों के घोर विरोध करते रहने पर भी प्रजातन्त्र के नये कानूनों के अनुसार उन्होंने विद्यार्थी-संघ का संगठन किया। उस समय विद्यार्थियों का बहुमत भी इसके विरुद्ध था। एलेन की इन हरकतों से उनके परिवारवाले नाखुश थे।

महायुद्ध के बाद उनके पिता जर्मनी लौट आये। एलेन की मां की मृत्यु हो चुकी थी। पिता ने इस 'गुमराह लड़की' को सुधारना चाहा। राजनीति से अलग करके घर के कामों में फंसाने की कोशिश की। एलेन को यह कब मंजूर हो सकता था? पिता से

तनातनी शुरू हुई। उन्हें घर भी छोड़ देना पड़ा। इस समय उनकी उम्र कुल अट्ठारह साल की थी। उस समय से आजतक एलेन ने चैन नहीं लिया।

अपना अध्ययन जारी रखने के ख्याल से वह फ्रांकफोर्ट पहुंचीं। वहां उन्हें भयङ्कर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उन्हें अपना अध्ययन जारी रखना था और रोटी के लिये कड़ी मिहनत भी करनी होती थी। उन दिनों लड़कियां दिन दिन भर कड़ा परिश्रम करके भी बहुत कम पैदा कर सकती थीं। इन विपरीत परिस्थितिओं के बीच एलेन क्रान्तिवादी आन्दोलनों के सम्पर्क में आईं। वह अब खुलेआम राजनीति में भाग लेने लग गईं जिससे उनकी पढ़ाई का सिलसिला टूट गया।

फ्रांकफोर्ट के छोटे शहर में उनकी तकलीफ बढ़ती गई। उन्होंने बर्लिन जाने का निश्चय किया। वहां राजनैतिक कार्यों का क्षेत्र भी बड़ा था। १९२७ में वह बर्लिन पहुंचीं और राजनैतिक कार्य्यों में बड़ी तत्परता से भाग लेने लगीं। वहीं वह कम्यूनिष्ट पार्टी में भी शामिल हुई।

बर्लिन में उन्हें अपनी पढ़ाई पूरी कर लेने की इच्छा हुई। अतएव उन्होंने फिर अध्ययन शुरू किया। इसके लिए उन्हें असाध्य परिश्रम करना पड़ा। रात को वह अपने अध्ययन में व्यस्त रहतीं। दिन में उन्हें रोटी के लिये कोई न कोई काम करना पड़ता। ऐसी कठिनाइयों का सामना करते हुए भी उन्होंने दो साल का कोर्स ६ महीने में खत्म किया। किन्तु अभाग्यवश, अधिक परिश्रम के कारण परीक्षा के पहले ही वह बीमार पड़ गईं। किन्तु

फिर भी अपनी योग्यता के कारण उन्हें डिग्री प्राप्त हुई।

अध्यन पूरी कर लेने के बाद एलेन बर्लिन में Russian Trade Delegation (रूसी-व्यवसाय के प्रतिनिधित्व) के सिलसिले में काम करने लगीं। १६२६ में जब कई महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कम्यूनिस्ट पार्टी में मतभेद हो गया था और जब उसका एक पक्ष Ultra-leftism (उग्र वाम-नीति) की पालिसी को खतरनाक समझता था, उन्होंने उस पक्ष से सहानुभूति प्रकट की। फलतः अपने पद से हटा दी गईं। किन्तु फिर भी कई भाषाओं के ज्ञान रहने के कारण तथा उनकी योग्यता और इमानदारी के फलस्वरूप, कई कम्यूनिस्ट संस्थाओं ने उनकी सेवाओं का उपयोग किया।

१६२६ के अन्त में उन्होंने बर्लिन के International Jurists Conference (अन्तर्राष्ट्रीय जूरिष्ट सम्मेलन) में मन्त्री की हैसियत से काम किया। इसके बाद ही उन्हें यूरोपीय किसान-सम्मेलन (European Peasants' Congress) के लिये, जिसकी आयोजना खुद कम्यूनिस्ट इन्टरनैशनल ने की थी, काम करना पड़ा। कान्फरेन्स के बाद ही वह युरोपीय किसान सभा के मन्त्री (Secretary of the Bureau, European Peasants' Council) के पद पर नियुक्त हुईं। १६३२ तक उन्होंने इस पद पर काम किया।

इसके बाद हिटलर के फेसिस्ट आतंक से बचने के लिये उन्हें जर्मनी छोड़ देना पड़ा। यों तो किसान सभा १६३२ के मध्य में ही तोड़ दिया गया था किन्तु गुप्त रूप से अपने क्रान्तिवादी कामों को चालू रखने के लिये वह वहां ठहरी हुई थीं।

हिटलर के आगमन के बाद कम्यूनिस्टों की जर्मनी में गुजर नहीं थी। उन्हें पकड़ पकड़ कर जेलों में ठूसा जा रहा था। कितने गोलियों के शिकार बनाये जा रहे थे। अत्याचार का हद्द था। वैसी विषम परिस्थिति में एलेन को जर्मनी छोड़ना पड़ा। अपने चन्द साथियों के साथ उन्होंने बर्लिन छोड़ देना तय किया। किन्तु ठीक उसी समय वे खूनी फैसिस्टों के हाथ गिरफ्तार हो गईं।

एलेन के सर ये बहुत बड़ी आफत थी। किन्तु बड़ी चालाकी से वह पुलिस को चकमा देकर निकल पड़ीं और सीधे स्ट्राटसबरी (Stratsbury) पहुंची। वहां के मेयर उनके दोस्त थे। उनकी ही अतिथि बन कर वे ढाई महीने रहीं। वहां भी उन्होंने कई सराहनीय कार्य्य किये। फैसिस्ट जुल्म के मुजरिमों को तथा उनलोगों को जिनकी जिन्दगी जर्मनी में फैसिस्ट-राज कायम होने के कारण, खतरे में थी, जर्मन-सरहद के पार, सुरक्षित स्थानों में लाने की कोशिश करती रहीं। उन्होंने बाहर से छपे फैसिस्ट-विरोधी साहित्यों को काफी तायदाद में जर्मनी में गुप्त रूप से प्रचार के लिये भेजवाया। इस खतरनाक कार्य्य को उन्होंने इस खूबी से किया कि सारे समाजवादियों में उनकी बड़ी प्रशंसा हुई।

मई १९३३ में वह पेरिस पहुंचीं। हिन्दोस्तान के लिये रवाना होने के पहले मार्च १९३७ तक वह पेरिस में ही थीं। वहां उन्होंने कई महत्वपूर्ण कार्य्य किये। उन्होंने उस प्रसिद्ध पुस्तक—ब्राउन-बुक, को तैयार करने की कोशिश की जिसमें हिटलर के नृशंस आतङ्कों का नग्न चित्रण और उसके नात्सी-राज के काले कार-

नामों का भण्डाफोड़ है। प्रजातन्त्रवाद के परदे को फाड़ कर, जनता के स्वार्थों के साथ किस प्रकार क्रूर खिलवाड़ हो रहा है, नागरिक-स्वतंत्रता को कैसे रौंदा जा रहा है, इस पुस्तक में उसका अच्छा वर्णन है। उसमें हम फैसिज्म के सच्चे रूप को देख सकते हैं।

हिटलर के जुल्म के शिकारों में कामरेड डीमीट्राफ का नाम उल्लेखनीय है। वे एक जर्मनी के प्रेस-मजदूर और कम्यूनिस्ट थे। बड़े बड़े मुश्किलों से वे जर्मनी में—अपनी जान बचा सके। डीमीट्राफ आज रूस में कोमिनटार्न के उच्च अधिकारियों में से एक हैं।

जर्मनी में उनके प्राणों के भूखे नात्सी आफिसरों की ओर से, उन पर एक प्रसिद्ध मुकद्दमा* चलाया गया था। यह एक बड़ा मशहूर केस था जिसने सारे यूरोप में एक बार भयानक सनसनी पैदा कर दी थी। एलेन ने लिप्ज़िग (Leipzig) में इस प्रसिद्ध मुकद्दमें की रिपोर्ट प्रकाशित कराई तथा लण्डन में Counter-trial का आयोजन किया, जिसमें वहां के बड़े बड़े वकीलों ने भाग लिया था।

वहां उन्होंने अनेकों अन्तर्राष्ट्रीय कान्फरेन्सों के संगठन में काम किया। फैसिज़्म और युद्ध विरोधी विश्व-कांग्रेस (World Congress against Fascism and War), विश्व महिला-सम्मेलन (World's Women's Conference) तथा १६३५ की पेरिस वाली अन्तर्राष्ट्रीय लेखक सम्मेलन (International

*Reichstag-Burning Trial : रिस्टैग (जर्मन पार्लामेन्ट) को जलाने का मुकद्दमा।

Writers' Conference) के संगठन में कामरेड एलेन का मुख्य हाथ रहा है।

इसके अतिरिक्त एलेन के कई महत्वपूर्ण कार्य्य हुए जिससे उनकी ख्याति दिनोंदिन बढ़ती गई। राष्ट्र-संघ की ओर से प्रकाशित वह मशहूर चिट्ठा जिसमें जर्मनी के यहूदियों पर किये गये नात्सियों के अत्याचारों का वर्णन है, श्रीमती एलेन के प्रयत्नों का फल है। आपने उन तमाम प्रगतिशील लेखकों और वैज्ञानिकों की पुस्तकों की जिसे जर्मनी में फैसिस्टों ने जलवा दिये थे, लाईब्रेरी (Library of Burned Books) कायम करने की भी कोशिश की। यह बहुत ही जनप्रिय पुस्तकालय बन गया। याद रहे, इन सारे राजनैतिक कार्य्यों में व्यस्त रह कर भी उन्हें अपनी जीविका के लिये कठिन परिश्रम करना पड़ता था। उनकी कठिनाइयों का अन्दाज हम सिर्फ इससे लगा सकते हैं कि फ्रान्स में विदेशियों को वेतन के साथ नौकरी नहीं मिलती, फिर भी वह अपनी पार्टी (C. P. O.) का काम संभालते हुए अपना और अपने साथियों की रोटी और खर्चे का सवाल खुद अपने परिश्रम से हल करती थीं।

१९३५ में वह फिर सोवियट सरकार की ओर से रूस के बड़े बड़े उद्योगों के लिये (People's Commissariat for Heavy Industries) पेरिस प्रतिनिधि के स्टाफ में बहाल हुईं।

श्री एम. एन. राय से इनकी पहली मुलाकात १९२९ के आरम्भ में हुई थी जब वे मास्को से बर्लिन लौटे थे। छठे विश्व-कांग्रेस के सम्बन्ध में दोनों के मत एक होने से आपस में उनकी मित्रता घनी होगई। वे कई

महीनों तक वहीं एक साथ रहे। इन दिनों एलेन ने राय के साथ कई राजनैतिक पुस्तकों का यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद तथा उसका प्रचार किया।

१९३० के अन्त में जब राय गुप्त रूप से हिन्दोस्तान में प्रवेश करने की तैयारियां कर रहे थे तो प्रबन्ध ऐसा था कि एलेन भी हिन्दोस्तान में उनके साथ मिल जायेंगी। किन्तु राय की गिरफ्तारी से यह सम्भव नहीं हो सका। उन्होंने यहां आने की बहुत कोशिश की, किन्तु राय के मना करने पर वे तबतक हिन्दोस्तान नहीं आईं जबतक राय जेल से बाहर न निकले। इस अरसे में उन्होंने विदेशों में घूम घूम कर राय के छुटकारे के लिये आन्दोलन किया। बड़े बड़े प्रदर्शनों का संगठन किया। इस प्रयत्न में उन्हें विश्व-विख्यात वैज्ञानिक प्रो० आइन्सटाइन (Einstien), आर्थर हण्डरसन (Arthur Henderson), काउन्ट मीकाएल केरोली (Count Mikhael Karolyi), हंगरी के भूतपूर्व प्रेसिडेन्ट जैसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के पुरुषों की सहायता प्राप्त हुई। राय के छुटकारे तथा जेल में उनकी हालत सुधरवाने के लिये इन लोगों ने बड़ी कोशिशें की थीं।

राय की रिहाई के सम्बन्ध में कोशिश करती हुई एलेन इङ्गलैण्ड भी पहुंची थीं। वहां उन्होंने भारत उपसचिव (Under Secretary) से बातें करते हुए यह पूछा कि "राय सिर्फ उन्हीं सब बातों के लिये क्यों इतनी कड़ी सजा भुगत रहे हैं, जिन्हें इङ्गलैण्ड के कितने राजनीतिज्ञ नित्य हाइड–पार्क के लेक्चरों में कहा करते हैं ?"

उप-सचिव का जवाब साफ था। उसने कहा—"हम हाइड-पार्क के आन्दोलनकारियों की परवा नहीं करते। किन्तु राय का वैसा व्याख्यान हिन्दोस्तान में बरदाश्त नहीं किया जा सकता। इससे भीषण खतरे का खौफ है।" रिहाई का प्रयत्न फिजूल था।

इसके बाद एलेन सदा पेरिस ही में रहीं और कम्यूनिस्ट आन्दोलन में भाग लेती रहीं। राय की रिहाई के बाद ही वह १९३७ के मध्य में हिन्दोस्तान पहुंचीं। उस समय से आज तक कामरेड एलेन राय, एक सच्चे क्रान्तिवादी की भांति हिन्दोस्तान की आज़ादी के लिये कठिनतम प्रयत्नों में संलग्न हैं।